कुरमाली साहित्य : विविध संदर्भ

डॉ. एच. एन. सिंह

लोकसाहित्य - प्रेमियों

मर्मज्ञों और मनीषियों

को

सश्रद्ध

समर्पित

— एच० एन० सिंह

उपोद्घात

अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से झारखण्ड में लोकसाहित्य विषयक सामग्रियों का संकलन–सम्पादन–प्रकाशन एक अनिवार्य तत्त्व बन गया है। इसके अतिरिक्त शिष्ट–साहित्य में नई विधाओं पर लेखन–प्रकाशन तो और भी आवश्यक है। उपयोगिता की दृष्टि से कुरमाली में पाठ्य–सामग्रियों का अभाव खटकता है। मेरी पहली छोटी–सी पुस्तक 'कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियाँ' 1978 में प्रकाशित हुई। प्रकाशन–कालावधि में तो भाषा प्रेमियों का ध्यान इस पर नहीं गया। परन्तु, राँची विश्वविद्यालय, राँची में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं के पठन–पाठन के लिए स्वतंत्र विभाग की स्थापना से लोकभाषा–प्रेमियों का लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं के संकलन–प्रकाशन की ओर रूझान बढ़ा। लघुकाय होने के बावजूद इस पुस्तक की उपयोगिता महसूस की जाने लगी। इसी प्रकार मेरा शोध–प्रबंध 'कुरमाली लोककथाओं की कथानक रूढ़ियाँः एक अनुशीलन' जो 2001 में प्रकाशित हुआ एवं अप्रत्याशित लोकप्रिय प्रमाणित हुआ। इसी कड़ी में अपनी 1965 से अबतक प्रकाशित कुछ चुने हुए आलेखों एवं आकाशवाणी राँची से प्रसारित साहित्यिक वार्त्ताओं को प्रस्तुत पुस्तक में स्थान दिया गया है। यों तो विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में मेरे शताधिक आलेख प्रकाशित हुए हैं। परन्तु, इन सभी आलेखों को एक साथ किताबी रूप देना सम्भव नहीं था। परिणाम स्वरूप उन आलेखों को ही पुस्तक में समावेश किया गया है जो कुरमाली भाषा–साहित्य में अध्ययनरत विद्यार्थियों–शोधार्थियों के लिए उपादेय हो। एक बात को स्पष्ट कर देना श्रेयस्कर समझता हूँ कि कुछ शीर्षकों में भले ही समानता दृष्टिगोचर हो, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं।

मेरे आलेखों को किताबी रूप में प्रकाशित करने के लिए जिन महानुभावों का अनुपम योगदान रहा है, उनके नामोल्लेख करना समुचित प्रतीत होता है।

राँची निवासी इं0 रविशंकर प्रसाद सिंह (इलेक्ट्रॉनिक्स एण्ड टेलिकम्यूनिकेशन्स) सम्प्रति लंदन में कार्यरत हैं, ने इस पुस्तक के प्रकाशन में सहायता पहुँचायी है, को हार्दिक धन्यवाद देते हुए उनका आभार स्वीकार करता हूँ। श्री राजा राम महतो, अध्यक्ष, कुरमाली भाषा परिषद्, राँची जो कुरमाली भाषा की पुस्तकें प्रकाशित करने में सतत् प्रयत्नशील रहे हैं, ने प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में विशेष रूचि ली है, असीम धन्यवाद के पात्र हैं। लेखन–कार्य जितना दुष्कर नहीं हैं, उससे अधिक दुष्कर है गृहस्थ–कार्यों से मुक्त होना। मेरे सुपुत्रों

दीपक कुमार एम.ए., एल–एल.बी. एवं प्रदीप कुमार बी.ए. (ऑनर्स) ने पूर्णरूपेण घर के आलकी–चालकी कामों से मुझे बिल्कुल मुक्त रखा। वे धन्यवाद के पात्र ही नहीं; मेरे असीम आशीष के भी अधिकारी हैं। अपनी सुपुत्री सुश्री सुनीता कुमारी सिंह एम.ए., एल–एल.बी. जिन्होंने मेरी सारी सुविधाओं का हर पल ख्याल रखा, को सदैव मेरा स्नेहासिक्त आशीर्वाद।

आज के दिन पुस्तकों का प्रकाशन, जिसका दायरा सीमित हो, कठिन नहीं तो दुष्कर अवश्य है। मेरी विविध समस्याओं में से अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनके निराकरण में श्रीमती मधुमिता (उप समाहर्त्ता) एवं श्री गौरांग महतो (उप समाहर्त्ता) की अहम् भूमिका रही है। मैं उनके दीर्घायु जीवन की कामना करता हूँ।

ऐसा माना जाता है कि पुरूष के सफल होने में नारी की गुरूत्व भूमिका होती है। यह तथ्य मुझ पर भी चरितार्थ होती है। निश्चय ही, आज जो मैं हूँ, जो कुछ कर रहा हूँ, अपनी अर्धांगिनी श्रीमती जानकी देवी का अनन्य योगदान रहा है। उनके सहयोग के बिना मेरी लेखन–गाड़ी का निरन्तर आगे बढ़ पाना कठिन था। उन्होंने गृहस्थी की सभी चिन्ताओं और उत्तरदायित्वों से मुक्त रखकर मुझे सदैव सहयोग किया है। कुरमाली संस्कृति एवं लोकगीतों के अर्थ समझने में मुझे सहायता मिलती रही है। मेरी अनेकानेक शंकाओं और संदेहों का उन्होंने परिहार किया। धन्यवाद और आभार जैसे शब्द उनके लिए न्यून हैं।

श्री विजय कुमार एवं श्रीमती शकुन्तला मिश्रा मेरे लेखन–कार्य के उत्प्रेरक रहे हैं। वे सदैव कुरमाली में लिखने के लिए प्रेरित ही नहीं, बल्कि दबाव भी देते रहे हैं। लेखक इनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता है।

और अन्त में, मेरे अज़ीज़ मास्टर अभिनव अनुराग के यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ जिनके वाक्चातुर्थ और मधुरवाणी ने मेरी लेखनी को जीवंत रखा है।

पूर्ण विश्वास है कि पूर्व की भांति कुरमाली के अध्येता एवं कुरमाली भाषी समाज में इस पुस्तक का अपेक्षित स्वागत होगा।

पौष सक्रांति, 2010 —एच. एन. सिंह

अनुक्रम

विषय		पृष्ठ
1.	कुरमाली भाषा और साहित्य	8
2.	कुरमाली	12
3.	भारतीय आर्य भाषा और कुरमाली	39
4.	कुरमाली साहित्य की प्रवृत्तियाँ	46
5.	कुरमाली साहित्य का सामान्य परिचय	78
6.	कुरमाली लोक–साहित्य	96
7.	कुरमाली के संस्कार गीत	102
8.	छोटानागपुर का कुरमाली संगीत	110
9.	कुरमाली के लोककवि	119
10.	वन के नूपुर	123
11.	कुरमाली का लोक–साहित्य	129
12.	कुरमाली लोकोक्तियों में कृषि–कर्म	136
13.	छोटानागपुर की उपलब्धिः लोकगीतों के परिवेश में	139
14.	छोटानागपुर के सूरः विनन्द सिंह	143
15.	छऊ नृत्य	147
16.	प्रकृति के प्रतिष्ठापक पर्वः सरहूल	151
17.	कुरमाली गद्य साहित्य का विकास	157
18.	कुरमाली के पुरखा जनकविः विनन्दिया	163
19.	संगीत–प्रेमी कुरमाली जनमानस और उनके पारम्परिक नृत्य	170

20. मांदर 175
21. कुरमाली संस्कृति 179
22. पर्व–त्योहारों का सांस्कृतिक मूल्य 183
23. कुरमालीक लोकगीत 190
24. कुरमाली गीत माहान हास्य–व्यंग्य 193
25. कुरमालीकर लोक–नाट्य 197
26. कुरमाली गीत माहान प्रकृति–चित्रण 200
27. कुरमालीक गीत माहान बसंतरितु 206
28. सारहुल 209
29. कुरमाली भासाकर कवि आर साहितकार 211
30. कुरमालीक गीते अलंकार 214
31. चिड़िका 217
32. कुरमाली गीत माहान भाव–सौन्दर्य 220
33. कुरमाली भासाकर बेयाकरन लेखन–परम्परा 225
34. कुरमाली गीत माहान राष्ट्र–भक्ति 229
35. कुरमालीकर चिसः समस्या आर समाधान 235
36. मातृभाषाकर रूप माहान कुरमाली भाषाक अध्ययनकर औचित्य 238

कुरमाली भाषा और साहित्य

कुरमाली भाषा का नामकरण छोटानागपुर की अन्य भाषाओं– मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया की भांति कुरमी जाति के नाम पर हुआ है। यह 'कूर्म' शब्द में 'आली' प्रत्यय लगकर बना है। कुरमाली बंगला, ओड़िया और असमिया की भांति मगधी अपभ्रंश प्रसूत है और इन्हीं की तरह एक निश्चित भाषा है। बिहारी वर्ग की भाषाओं से इसका पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है। इनमें अनेक समानताओं के बावजूद कुरमाली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं जो अन्य मागधी–प्रसूत भाषाओं से पृथक करती है। कुरमाली भाषा की उत्पत्ति कब हुई? इसे सीमा–रेखा में आबद्ध करना कठिन है। लेकिन इतना निश्चित है कि इसके विकास या रूप विधान में कुरमियों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कुरमाली की ध्वनिगत विशेषताएँ, मुहावरें, लोकोक्तियां, सुर, ताल, लय, विविध गीत इसके पार्थक्य के आधारभूत कारण हैं। इसमें लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों और पहेलियों की संख्या बहुल है। कुरमाली लोकसाहित्य में लोकगीतों के बाद लोक–कथाओं, पहेलियों और लोकोक्तियों का स्थान है। इन लोकगीतों, लोक–कथाओं एवं लोकोक्तियों में कुरमाली जीवन की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन विधाओं की विविध रचनाओं से ज्ञात होता है कि कुरमाली साहित्य जितना समृद्ध है, भाव–सौन्दर्य की दृष्टि से भी उतना ही उत्कृष्ट।

कुरमाली के ध्वनि शास्त्रीय विशेषताओं, लोकोक्तियों, मुहावरों, और रचना वैशिष्ट्य को देखते हुए सर जार्ज ग्रियर्सन ने इसे "विचित्र भूभाग के विचित्र निवासियों की भाषा" कहा है।

कुरमाली एक अन्तर प्रान्तीय भाषा है। इसका विस्तार क्षेत्र "उड़िष्य शिखर, नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर" लोकोक्ति से ज्ञात होता हैं। कुरमाली का क्षेत्र राजनीतिक मानचित्र द्वारा परिसीमित नहीं किया जा सकता। यह केवल छोटानागपुर में ही नहीं, बल्कि उड़ीसा में क्योंझर, बोनई, बामड़ा, मयूरभंज, सुन्दरगढ़, पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत पुरुलिया, मिदनापुर, बांकुड़ा, मालदा, दिनाजपुर के सीमावर्ती इलाकों, जो बिहार से सटे हैं एवं छोटानागपुर के राँची, हजारीबाग, गिरिडीह, धनबाद, सिंहभूम एवं भागलपुर के संतालपरगने में भी बोली जाती है। यह भाषा केवल कुरमियों तक ही सीमित नहीं, बल्कि इनके साथ निवास करने वाले अन्य जातियों के भाव–विनियम का भी साधन है।

व्याकरण

कुरमाली भाषा की विभिन्न ध्वनियों के लिए देवनागरी के स्वरों– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ओ, और अं ध्वनियां व्यवहृत होती है। 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण क्रमशः, 'अइ' और 'अउ' होता है। 'ऋ' का उच्चारण 'रि' की भांति होता है।

हिन्दी के स्पर्श व्यजनों में ड. और 'ण' को छोड़कर अन्तस्थ के चारों वर्ण य, र, ल, व, एवं उ म के केवल 'स' और 'र' व्यवहार होता है। इसमें 'श', 'ष' और 'स' में केवल 'स' का प्रयोग होता है। शब्द के प्रारम्भ में 'य' और 'व' ध्वनियां नहीं मिलतीं। अतः 'य' के स्थान पर 'ज' और 'व' के स्थान पर 'ब' ध्वनियाँ मिलती हैं। जैसे– वर–बर, विहा–बिहा, यमुना–जमुना आदि। यहाँ यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ शब्दों में 'ड.' का प्रयोग भी उचित है, यथा– डाड़., उलुड़., आदि।

य, व का उच्चारण शब्द के मध्य अथवा अन्त में वही रहता है। संयुक्त अक्षर 'क्ष' का उच्चारण 'ख' अथवा 'छ' होता है। जैसे – क्षमा–छमा या खमा। 'ज्ञ' का उच्चारण 'गेय' अथवा 'गेयां' होता है। जैसे– ज्ञानी–गेयानी। कुरमाली में संयुक्ताक्षर भी प्रायः नहीं होते। शब्दों में सब अक्षर पृथक–पृथक उच्चारित होते हैं। जैसे प्रभु–परभु। कृपा– किरपा आदि।

मागधी प्रसूत अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की तरह कुरमाली के पुलिंग और स्त्रीलिंग संज्ञापदों के रूपों में कोई परिवर्त्तन नहीं होता। संज्ञापदों के साथ टा, टी, टाइ, टाए, गिला प्रत्यय बहुतायात से व्यवहृत होते हैं। जैसेः– गरूटा, गरूटी, गरूटाई, गरूटाए, गरूगिला आदि।

सर्वनामः

कुरमाली में मोंय, हामें, हमारा, तोंय, तरा, तखरा, तहरा, ओंय, अरा, अखरा, एइ, अहे, एहे आदि पुरूष वाचक सर्वनाम हैं। निजवाचक सर्वनाम में 'आपन' या 'निज' का व्यवहार होता है। कुरमाली में निश्चयवाचक सर्वनाम तीन है– निकटवर्ती के लिए इ, दूरवर्ती के लिए 'उ' और अधिक दूरवर्ती के लिए 'हाउ'।

अनिश्चय वाचक सर्वनाम के लिए 'केवे' किछु, कन, फालना आदि का व्यवहार होता है। जेइं, तेइं जारा, तारा, जाखरा, सम्बन्धवाचक सर्वनाम हैं। कन, किना, काहां, प्रश्नवाचक सर्वनाम है। कुरमाली में कोई अलग आदरसूचक सर्वनाम या शब्द नहीं है। किसी महिला के प्रति आदर का भाव प्रदर्शित करने के लिए मध्यपुरुष के एक वचन रुपों को बहुवचन रुप में व्यवहार करते हैं।

कुरमाली में विशेषण के दो रुप मिलते हैं– लघु और गुरु। जैसे बड़ऽ और बड़का। संज्ञापदों के लिंग विशेषणों में शिथिल हैं। वे अनिवार्य रुप से नहीं आते। जैसे–सुन्दर और सुन्दरी। दोनों रुप चलता है। विशेषणों में स्त्रीलिंग बनाने के लिए पुलिंग विशेषणों के अन्त में इ, आहि, इन, आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे लेका–लेकी, आदिखलाहा–आदिखलाही, कुरमी–कुरमिन, आदि। कभी–कभी अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण बनाने के लिए निश्चित संख्यावाचक शब्द के बाद 'एक' लगाया जाता हैं। जैसे गटा आठेक लग।

कुरमाली भाषा में खेल के लिए पृथक संख्यावाचक विशेषण प्रयुक्त है। जैसे एड़ी, दड़ी, घुरन, चाइल, चमपा, झेइक, सुतेइल, अठई, नमी, बाँड़ी। जबकि दैनिक व्यवहार में हिन्दी के ही संख्यावाचक शब्द व्यवह्त होते हैं। बीस के लिए 'कुड़ी' शब्द प्रचलित है एवं परिमाणवाचक में 'खँड़ी' का व्यवहार होता है।

कुरमाली में पुलिंग और स्त्रीलिंग के लिए क्रिया के एकवचन एवं बहुवचन के भिन्न–भिन्न रुप होते हैं। जैसे–राम जाइस आहे। सीता जाइस आहि। अरा जाहत इत्यादि। क्रियाएँ काल, वचन, एवं पुरुष के अनुसार भिन्न–भिन्न हुआ करती हैं। यही नहीं, कुरमाली में आहे, आहों, आहेइक, हेके, आहिस आदि स्वतंत्र क्रियाओं का व्यवहार होता है। 'आव' प्रत्यय जोड़कर प्रेरणार्थक क्रिया बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

भावों की सूक्ष्माभिव्यक्ति के लिए कुरमाली में अव्यय और अनुकरणवाचक शब्दों की बहुलता है। बेजाइं, दम, दमे, दमतक, दमाट, बा, किमबा, चाहे, नितऽ, चांड़े, ले, रिचिक, इत्यादि अनेक अव्यय हैं। नि ेध के लिए नि, नेहि, ठेपो इत्यादि का व्यवहार होता है।

कारक

कुरमाली में कर्त्ताकारक की कोई विभक्ति नहीं है। कर्म के लिए 'के' करण के लिए–दारा, लेई, केरि, सम्प्रदान के चिह्न–लाइ, लागिन, खातिर, हांतिर, तेहें, लेल, है। आपादान कारक का चिह्न 'ले' है तथा सम्बन्ध कारक के

चिह्न—क, कर, है। अधिकरण कारक के चिह्न 'ऊपर' और 'माहान' हैं। सम्बोधन के लिए— हे, एगो, एरे, हेंहो, एहो विभक्तियां प्रयुक्त होती हैं।

वचन

कुरमाली में बहुवचन के लिए पृथक शब्द नहीं है। बल्कि एकवचन में 'रा', 'गिला', 'गिलिन', 'सभ' प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। हाला, नुड़ा, कुधा, डिंग, पाल, खाता, गठ, झँपेइर, गँछा, धँप, झँप, घउद, समूह के द्योतक शब्द हैं।

लिंग

कुरमाली में चार लिंग मिलते हैं। गोरू, बाछुर, खुखड़ी, उभयलिंग हैं। गाछ, पात, भूइं, खेत, नेदि, पाहाड़, नपुंसक, लिंग है। छोटे प्राणियों को स्त्रीलिंग माने गये हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्राक तिक वस्तुएँ स्त्रीलिंग हैं। हिन्दी का 'हाथी' शब्द स्त्रीलिंग और पुलिंग दोनों रूपों में व्यवहृत होता है। नपुंसकलिंग को टा, टी, प्रत्यय जोड़कर क्रमशः पुलिंग एवं स्त्रीलिंग के रूप में व्यवहृत किए जाते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कुरमाली मागधी प्रसूत है। अतः इसमें तत्सम, तद्भव और अर्द्ध तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। देशज शब्दों को भी कमी नहीं हैं। विदेशी प्रभाव के कारण अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्त्तगाली, अंग्रेजी के शब्द भी कुरमाली में आत्मसात् हो गए हैं। आंचलिक प्रभाव के कारण मुण्डारी, संताली, हो एवं कुड़ुख भाषा के शब्द भी कुरमाली में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। एक उल्लेख्य तथ्य यह है कि कुड़ुख़ भाषा की कुछ क्रियाएँ भी कुरमाली ने ग्रहण की है।

साहित्य

कुरमाली साहित्य परिमाण में जितना समृद्ध है, काव्यगत विविधताओं में भी उतना ही समृद्ध है। साधारणतः कुरमाली साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है— 1. लोक—साहित्य और 2. शिष्ट साहित्य। कुरमाली के गद्य—रूपों में लोक—कथा, कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा पहेलियाँ हैं। काव्यरूप में लोकगीत हैं। लोकगीतों के विविध रूप हैं जो मौसम के अनुसार गाए जाते हैं। इन लोकगीतों में कुरमाली संस्कृति, रीति—रिवाज, विचारधारा, चिन्तन—पद्धति, क भाक—जीवन, धर्म—विश्वास, हास—परिहास, आनन्द—वेदना एवं दार्शनिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं।

अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से कुरमाली साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है– 1. आदिकाल, 2. मध्यकाल और 3. आधुनिक काल। आदिकाल के अन्तर्गत कुरमाली के लोकगीतों–ढप, बिहा, डमकच, सरहूल, नटुआ, डाँइड़धरा, उधवा, जावा, करम, ऐढ़इया, कुँवारी झुपान इत्यादि एवं लोक–कथाएँ, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ हैं जिनके रचियता अज्ञात हैं।

मध्यकाल में कुरमाली के जनकवियों– बरजूराम, नरोत्तम, गौरांगिया, दुर्योधन, पीताम्बर, दीना, रामक भट, उदय, खेपा, बोधा, विनन्द सिंह इत्यादि को रखा जा सकता है।

आधुनिक काल के कवियों में सृष्टिधर, महीपाल, महिम, श्रीकान्त, लखीकान्त, काशीनाथ, अनन्त, केशव, नसीरूद्दीन, मानसिंह, रामेश्वर आदि प्रसिद्ध हैं।

कुरमाली का लोक–साहित्य बहुत ही समृद्ध हैं। गीत अत्यन्त सरस और मर्म–स्पर्शी हैं। कुरमाली लोकगीतों की अत्यन्त गौरवमय परम्परा रही है। कोई भी कुरमाली अनुष्ठान नृत्य एवं गीतों के बिना सम्पन्न नहीं होता। अधिकांश गीत नृत्य गीत हैं। लोकगीतों में ढप, बिहा, डमकच, नटुआ, सरहूल, डाँइड़धरा, उधवा, जावा, करम, सोहराई, कुँआरीझुपान आदि आते हैं।

काल–क्रमानुसार कुरमाली गीतों के वर्ण्य–विषय भिन्न–भिन्न रहे हैं। कुरमाली के लोकगीतों में प्रकृत्ति–चित्रण अधिक मिलता है। प्रकृति की विभिन्न वस्तुएं, पेड़–पौधे, फल–फूल, पशु–पक्षी, झरना, नदी, इत्यादि का बहुत सजीव वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ–

काकर आनगाइं, गाछ दारून रे
सामलता काकर, आनगाइं चाँपा डाइर जे।
भउजिकर आनगाइं, गाछ दारून रे
सामलता, ननदी आनगाइं चाँपा डाइर रे।
कइसन करए, गाछ दारून जे
सामलता कइसन करए चाँपा डाइर जे।
लह–लह करए, गाछ दारून जे
सामलता महऽमहऽ करए चाँपा डाइर जे।

इसी प्रकार करम और विवाह गीतों के अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यहाँ पर एक–दो पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

छटऽ मटऽ दुरुपात, फूले लदबइद गो
बेटी चललाईं ससुर घार गो — करम गीत

ग

आँवरा रे आँवरा डगिया,
डाइरे छाड़ि पाते फर धरे।

ग

कनऽ आमा हरिहर, कनऽ आमा पियर
कनऽ आमा सिंदूर बरन।
राजा बेटाइं धरल आँचर — विवाह गीत

कुरमाली समाज अत्यन्त नृत्य–प्रेमी है। गीत और नृत्य उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। यदि किसी को अखाड़े में नाचने से वर्जित किया जाए तो उसकी मनः स्थिति क्या होती है। इसका वर्णन निम्न गीत में मिलता है–

छटऽ मटऽ आखड़ा, गटा गाँवेक भेंसुरा
नाचे गेले मके छलके ना बने गो।
खावा–दावा करि, साँइझे, जाउँ जदि मनेक रीझे
नाहाइ हेती, मके उठी के बिहाने गो।
एक तो फाटल लुगा, हिंदे–हुँदे गटाइ भुगा
भींजल देखी मके सासे बाखाने गो।
हेंलों गाँवेक बवासीन, केसे के नाचम उठीन
एसन गाँवे बिहा देला कने गो
नाचे गेले मके छलके ना बने।

नायिका अपने माता–पिता को कोसती है कि उन्होंने ऐसे गाँव में विवाह दी जहाँ उसके सभी लोग रिस्ते में भेंसुर हैं। कुरमी–समाज में भेंसुर–बवासीन का सम्बन्ध अस्पर्श्य है। इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण देखिएः–

आसा करी आवली
गावली गीत रे
झँकी दिहा अगली डाँड़िया
बड़ी रीझ लागल दया।
आगुइं–आगुइं गीत गावेइया

ताकर पेछुइं नाचेइया
मइधे त मादरी बाजइया
बड़ी रीझ लागल दया।
आजुका राइंत ना माना करिहा
पिया नाचे लाइ जाइ दिहा।

कुरमी एक कृषि प्रधान जाति है। अतः इनके लोकगीतों में कृषक–जीवन का सजीव चित्रण मिलता है, जैसे–

इति इति जावा, किया किया जावा
जागलों मायं धाना बहुरा।

प्रस्तुत गीत में अंकुरोदय एवं कृषि–कर्म का निर्देश मिलता है। विवाह गीतों में कुरमाली संस्कृति, रीति–रिवाज, सामाजिक व्यवहार, खान–पान, दैनिक कर्म, रहन–सहन का वर्णन मिलता है। कुरमाली समाज में बेटी का महत्वपूर्ण स्थान है। वह परिवार के लिए अभिशाप नहीं समझी जाती। वह घर की शोभा है। उसके चले जाने पर घर की स्थिति उसी प्रकार हो जाती हैं जिस प्रकार फूल के झड़ जाने से वन। प्रस्तुत गीत में इसका कितना सजीव वर्णन हुआ है–

बाबा, बनऽ माझे फूटल धधकी फूला
हायरे, बनऽ शोभी गेला।
बाबा, घारा माझे बेटी रे जनम लेला
हायरे, घारा शोभी गेला।
बाबा, बावे–बासाते फूला झड़ी गेला
हायरे, बनऽ सुइन भेला।
बाबा, डाड़िया फाँदाए बेटी चली गेला
हायरे, घारा सुइन भेला।

कुरमाली के कुआंरीझुपान गीतों में जादू–टोना, तंत्र–मंत्र एवं अन्ध–विश्वास का उल्लेख मिलता है। डाँइड़धरा, ढप इत्यादि गीतों में भाव–सौन्दर्य के साथ–साथ हास्य का पुट भी मिलता है। हमारे लोक कवियों ने जो वस्तुएँ आँखों के सामने पायीं, उसे ही उपमा के रुप में ग्रहण किया। जैसे–

मानुस जनम झींगा फूल रे भाइ
साँइझें फूटे, बिहाने झड़ी जाइ।

तांउ फूल नाचे हाँसे
पिरथिबिक भालऽ बासे
जायेक खने काँदेइ नि रे भाइ।

प्रस्तुत गीत में दार्शनिक भाव झलकता है। मानव–जीवन की तुलना झींगा फूल से की गई।

निकर्षतः कहा जा सकता है कि कुरमाली लोकगीतों में प्रकृति–चित्रण, इतिहास, दर्शन, रीति–रिवाज, जीवन–यापन की पद्धति, तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, सामाजिक सम्बन्ध, पति–पत्नी के प्रेम आदि का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इसके विपरीत कुरमाली लोकगीतों में भक्ति भावना का अभाव मिलता है। अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर के रुप में हैं। प्रारम्भिक काल में गीत संरचना का कोई बंधन नहीं था। फलतः कवियों ने कभी मुक्तक पद्धति का सहारा लिया तो कहीं–कहीं लम्बे–लम्बे गीतों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की। लोकगीतों में लय के द्वारा ही शैलीगत तत्त्व को पृथक किया जा सकता है। कुरमाली लोकसाहित्य में अलंकार और छन्द–विधान पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। कहीं–कहीं स्वतः अलंकारों का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः रस और लय ही कुरमाली लोकगीतों की आत्मा है। कुरमाली के अपने छन्द है, जो गेय है।

कुरमाली के शिष्ट साहित्य का प्रादुर्भाव सन् 1750 ई. से माना जा सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि सन् 1485 ई. के आस–पास चैतन्य महाप्रभु के झारखण्ड प्रदेश में पदार्पण के पश्चात् वैष्णव–भावना का प्रचार–प्रसार हुआ। जनकवियों ने रामायण और महाभारत से कथा–वस्तु लेकर गीतों की रचना कीं। कुरमाली के मध्यकालीन कवियों को वर्ण्य–विषय की दृष्टि से हिन्दी के भक्ति–कालीन कवियों सें तुलना की जा सकती हैं। भक्ति–काल के कवियों ने गुरु को ईश्वर के समकक्ष माना है। भला हमारे जनकवि इनसे पीछे क्यों रहते? विनन्द सिंह का भक्ति–भाव से ओत–प्रोत गीत देखिए–

सिरि गुरु गोंविन्द पदे, करिए उपदेश
बन्दी माता गौरी गनेस,
दया कर सारदा सेस।

ए

बंदऊँ गुरुपद पदम परागा। – तुलसी

ए

चरण कमल बन्दौ हरि राई। — सूर

ग

मन रे परसि हरि के चरण। — मीरा

लगता है, हिन्दी के भक्ति कालीन कवियों के साथ कुरमाली के मध्यकालीन कवियों को एक भावनात्मक सूत्र में बांध दिया गया है। इस काल के कवियों के मुख्य वर्ण्य–विषय रहे हैं– भक्ति, दर्शन, श्रृंगार, प्रकृति–चित्रण इत्यादि।

वर्ण्य–विषय को लेकर विचार किया जाए तो जनकवि विनन्द सिंह की तुलना सूर से की जा सकती हैं। सूर ने गोपियों के विरह की जिन ग्यारह अवस्थाओं का वर्णन किया है, ये सभी दशाएँ विनन्द सिंह के गीतों में मिलती हैं। यहाँ एक गीत पर्याप्त है।

सयने सपने देखी,
पलके ना परे आँखी,
दइ गेला गो दुति छतियाही सेल।
हरि हेरि भेला हारा,
दुनयने बहे धारा,
भिंजी गेला हो दुती साजिया बिछाल।
कहत सेइ बिनन्दिया
कइसे के बाँधब हिया
दये गेला गो दुति मदने जंजाल।

श्रीकृष्ण के बिना आँखों में नींद नहीं। खोजते–खोजते हार गई। आँखों से अविरल अश्रु धारा बह रही हैं। अत्याधिक अश्रु–पात से बिछावन भींगकर गीला हो गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि तुलसी को "राम–चरित मानस" के द्वारा भारतीय संस्कृति और मानव–धर्म को जीवित करने का श्रेय प्राप्त हैं, तो इन जनकवियों को उस 'रामचरित मानस' को अपनी भाषा से गीत–संगीत बद्धकर लोक–मानस तक पहुँचाने का श्रेय है।

तत्कालीन युग के कवियों की रचनाओं में अलंकार, तुक, छन्द का सचेत प्रयोग हुआ है। उपमा और रुपक अलंकारों का बाहुल्य है। सभी गीत

तुकान्त हैं। सामान्यतः गीत चार कड़ी की भनिता सहित हैं। प्यार छन्द के चौतींसा गीत इस युग के कवियों की विशिष्ट देन हैं।

लिखित साहित्य

यों तो कुरमाली शिष्ट साहित्य का प्रारम्भ कुरमाली के मध्यकाल से माना जाना चाहिए। परन्तु, इसका उत्कर्ष काल सन् 1900 ई. से ही है। सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने सन् 1903 ई. में "भारत का भाषा सर्वेक्षण" में कुरमाली भाषा की व्याकरणिक विशेषताओं का विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् सन् 1903 ई. में श्री जी. एफ. हेमिल्टन ने बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद गद्य में किया। स्व. निरंजन महतो ने सन् 1921 ई. में "नेठापाला" नामक गीत संग्रह बालासोर (उड़ीसा) से प्रकाशित कराया। "करम संगीत" नामक प्रस्तुत श्री बुधु महतो ने सम्वत् 1970 में बम्बई से प्रकाशित करायी है।

सन् 1953 ई. में श्री राजेन्द्र प्रसाद महतो ने "कपिला मंगल" नामक स्वरचित पुस्तक प्रकाशित की। सन् 1958 ई. में डा. विश्वनाथ प्रसाद एवं सुधाकर झा शास्त्री ने–"लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ मानभूम एण्ड धलभूम" में कुरमाली भाषा के गीतों के कुछ नमूने प्रस्तुत किये। इसके पहले डा. नन्द किशोर सिंह ने सन् 1957–58 में अपने लघु शोध–प्रबन्ध के लिए "छोटानागपुर के कुरमाली लोकगीतों का अध्ययन" में लगभग 300 गीतों का संकलन प्रस्तुत किया फिर 1962 ई. में इन्होंने "कुरमाली बोली: एक भाषा तात्विक अध्ययन" नामक शोध–प्रबन्ध लिखकर विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन से पीएच. डी. की उपाधि ली।

कुरमाली के आधुनिक साहित्य से हमारा तात्पर्य वर्तमान युग के उन साहित्यकारों से है जिन्होंने विभिन्न विधाओं, नये छन्दों तथा नई भावनाओं की अभिव्यक्ति दी हैं। दस–बारह वर्षों की चुप्पी के बाद इधर की अवधि में कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जैसे–

1. कुरमाली भाषा तत्त्व (1973)– खुदी राम महतो
2. कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियां (1978)– एच. एन. सिंह
3. पथे चलाक् लेहा नमस्कार (1979)– डा. एन. के. सिंह
4. कुरमाली बेइआकरन (1981)– याम सुन्दर महतो 'सामदा'
5. कुरमालि भाखिक इतिहास, रुप चिस (1982)– खुदी राम महतो

6. कुरमाली केहनी जुड़ती (1982)– चन्द्रमोहन महतो
7. फुरुँ (1982)– केशव चन्द्र महतो 'हिन्दुआर'
8. सपन आपन (1983)– अनन्त महतो 'केसरियार'
9. कुरमालि गइद–पइद जड़ति– प्रो. ससिभुसन माहात्अ
10. केरिया बहु (नाटक 1983)– काली पदो महतो
11. कुरमाली शब्द कोष (1983)– खुदीराम महतो
12. कुरमाली साहित्यिक इतिहास– खुदीराम महतो
13. सातुल (कहानी संग्रह 1986)– सं. अनंत माहतअ, सुनिल कुमार माहातअ

कुरमाली भाषा के प्रचार–प्रसार में मानभूम एक्सप्रेस, करमतीर्थ, टउआ, हेलाक इत्यादि पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। राँची से प्रकाशित 'आदिवासी पत्रिका का भी कुरमाली के विकास में कम योगदान नहीं रहा है। सन् 1957 ई. में 'राँची आकाशवाणी' की स्थापना से लोक कलाकारों को विशेष बल मिला है। लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी दौड़ाई है। विभिन्न विषयों पर काव्य–सृजन भाषा की श्रीवृद्धि के शुभ संकेत है।

कुरमाली भाषा अन्तरप्रान्तीय होने के कारण मुख्यतः तीन लिपियों– देवनागरी, बंगला, और उड़िया का प्रयोग होता है। प्रत्येक भाषा में कई एक पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। कुरमाली भाषा की अपनी कोई लिपि नहीं है।

अस्तु, कुरमाली भाषा और साहित्य का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है। अमित सम्भावनाओं को लेकर दिनानुदिन पुष्पित–पल्लवित हो रहा है। राँची विश्वविद्यालय में अनेक छात्र–छात्राएँ शोधरत हैं। डा. सुश्री संतोष जैन ने 'कुरमाली लोक–साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन' नामक शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत कर पिछले वर्ष राँची विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि ली हैं। यह शोध–प्रबन्ध कुरमी समाज और साहित्य की अमूल्य निधि है। अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से कुरमाली लोकसाहित्य की स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति शिष्ट साहित्य की भी है। लिखित साहित्य अभी भी शैशवावस्था में है। शिष्ट साहित्य में कविता, नाटक, एकांकी, उपन्यास, स्मरण, निबन्ध आदि लिखे गये हैं। परन्तु, अर्थाभाव के कारण पाण्डुलिपियां लेखकों के पास पड़ी हुई हैं।

कुरमाली

छोटानागपुर बिहार का एक पठारी क्षेत्र है। यह क्षेत्र बहुप्रजातिक और बहुभाषी क्षेत्र है। इन बहुप्रजातिक लोगों को मुख्य रुप से दो वर्गों में रखा जा सकता है– जनजातीय समुदाय और गैर–जनजातीय समुदाय। इसी प्रकार भाषिक संदर्भ में कहा जा सकता है कि यह क्षेत्र आष्ट्रिक, द्रविड़ और आर्य–भाषाओं की संगम–स्थली हैं। आष्ट्रिक परिवार के अन्तर्गत छोटानागपुर में मुण्डारी, संताली, हो और खड़िया है। 'कुड़ुख' भाषा द्रविड़ परिवार की भाषा है। इसी प्रकार कुरमाली, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया आदि आर्य–भाषा परिवार की भाषाएँ हैं।

नामकरण–

'कुरमाली' भाषा का नामकरण कुर्मी जाति के नाम पर हुआ है। 'कुर्म' शब्द में 'आली' प्रत्यय लगकर 'कुर्माली' शब्द बना है। जैसे– देशाली, गढ़वाली आदि। 'कुरमाली' शब्द कुरमी जाति का द्योतक है। इसे 'महतो भाषा' की संज्ञा भी प्राप्त है। छोटानागपुर क्षेत्र की अधिकांश भाषाओं का नामकरण जाति के आधार पर हुआ है। जैसे, मुण्डा से 'मुण्डारी', संताल से 'संताली', हो से 'हो', खड़िया से 'खड़िया', और कुरमी से 'कुरमाली',। इसके विपरीत बंगला, मैथिली, भोजपुरी, मगही, ओड़िया, नेपाली, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं के नामकरण के आधार भौगोलिक हैं। यही नहीं, दक्षिण भारतीय भाषाओं में– तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि के नाम भी स्थानवाची हैं। परन्तु, झारखण्ड क्षेत्र में भाषाओं के नाम स्थानवाची न होकर जाति या समुदायसूचक हैं।

डा. ग्रियर्सन नें मुख्य रुप से कुरमियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को 'कुरमालीठार' की संज्ञा दी है। डा. उदय नारायण तिवारी तथा डा. धीरेन्द्र नाथ साहा ने कुरमाली को 'कुड़माली' नाम से अभिहित किया है। इस प्रकार कुरमाली भाषा को 'कुरमालीठार' कुड़माली, महतोभाषा, कुरमी भाषा आदि कई नामों की संज्ञा प्राप्त है। इस भाषा का नामकरण 'कुरमाली' इसलिए पड़ा क्योंकि इसका सम्बन्ध कुरमी जाति से रहा है, जो 'महतो' कहलाते हैं और जिनका इस भाषा को बोलने वालों में आधिक्य है, यद्यपि यह भाषा उन्हीं तक सीमित नहीं हैं। वस्तुतः छोटानागपुर की अधिकांश भाषाओं के नाम जातिसूचक शब्दों के आधार पर हैं।

कुरमाली, बंगला, ओड़िया और असमिया की भाँति मागधी अपभ्रंश प्रसूत है और इन्हीं की तरह एक निश्चित भाषा है। बिहारी वर्ग की भाषाओं से इसका पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है। इनके साथ अनेक समानताओं के बावजूद कुरमाली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं जो अन्य मगधी–प्रसूत भाषाओं से पृथक करती है। कुरमाली भाषा की उत्पत्ति कब हुई? इसे सीमारेखा में आबद्ध करना कठिन है। लेकिन इतना निश्चित है कि इसके विकास या रूप–विधान में कुरमियों की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है। कुरमाली की ध्वनिगत विशेषताएँ, भाषिक संरचनाएँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सुर, ताल, लय, विविध गीत इसके पार्थक्य के आधारभूत कारण है।

भाषा–क्षेत्र

कुरमाली एक अन्तरप्रान्तीय भाषा है। कुरमाली की एक लोकोक्ति 'उड़िष्य शिखर नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर' में इसकी सीमा–रेखा की ओर इंगित किया गया है अर्थात् उड़ीसा, छोटानागपुर और पश्चिम बंगाल के खड़गपुर तक इसकी सीमा है। आजतक इसकी जो सीमा–रेखा निर्धारित की गई है, वह भ्रमात्मक है। अनुसंधाताओं ने अपने–अपने ढंग से कुरमाली भाषिक क्षेत्रों का उल्लेख किया है। किसी ने इसके क्षेत्र का विस्तार दिया है तो किसी ने अत्यन्त सीमित क्षेत्रों में इसे माना है। इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के मतों का उल्लेख करना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है।

डा. जार्ज ग्रियर्सन ने मानभूम (पुरूलिया), खरसवाँ, सराईकेला, राँची, उड़ीसा के मयूरभंग, क्योंझर, बनई, बामड़ा आदि क्षेत्रों को कुरमाली–भाषी क्षेत्र माना है। डा. उदय नारायण तिवारी ने लिखा है– 'मानभूम, मयूरभंज, तथा बामड़ा में पूर्वी मगही, कुड़माली तथा पश्चिमी माल्दह में यह खोण्टाली कहलाती है। मयूरभंज तथा बामड़ा में यह चारों ओर उड़िया तथा मालदह में चारों ओर बंगलाभाषा से घिरी है। मानभूम तथा खरसवाँ के लोग विशेषतः कुरमी लोग, पूर्वी मगही के बोलने वाले है।' यह सीमा रेखांकन ड़ॉ. ग्रियर्सन के 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' पर आधारित है।

डा. सम्पत्ति आर्याणी ने हजारीबाग के दक्षिणी–पूर्वी भाग, मानभूम राँची जिले का पंचपरगना, दक्षिण–पूर्व भाग– खरसवाँ उड़ीसा के मयूरभंज तथा बामरा एवं मालदा जिले के पश्चिमी भाग को कुरमाली भाषी क्षेत्रों के रुप में स्वीकारा है। इस सम्बन्ध में डा. नन्द किशोर सिंह ने लिखा है– कुरमाली का क्षेत्र समस्त छोटानागपुर तो है ही, ओड़िसा और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्से

भी है। भौगोलिक दृष्टि से बिहार में इस बोली का विस्तार धनबाद, राँची, सिंहभूम और हजारीबाग जिले हैं। ओड़िसा के मयूरभंज, क्योंझर, बोनई, बामड़ा तथा पं. बंगला के पुरुलिया, झाड़ग्राम, मिदनापुर, बांकुड़ा, मालदा, दिनाजपुर के वे भाग जो बिहार से सटे हैं, यह बोली जाती है। देवकी नन्दन प्रसाद का मत है– "कुरमाली भाषा का क्षेत्र झारखण्ड राज्य के दक्षिण–पूर्वी अंचल का क्षेत्र है। इसका एक छोर बंगाल को छूता है तो दूसरा उड़ीसा को।"

डा. विद्याधर शुक्ल 'विद्यार्थी' ने सिंहभूम, मानभूम, देवघर, राँची, छोटानागपुर और उसके आसपास के क्षेत्रों को कुरमाली–क्षेत्र के रुप में स्वीकार किया है। इसके विपरीत डा. रमण शाण्डिल्य ने मयूरभंज और बामड़ा को कुरमाली भाषा का क्षेत्र माना है।

डा. सन्तोष कुमारी जैन ने बिहार के धनबाद, राँची, सिंहभूम, हजारीबाग और संतालपरगना, पश्चिम बंगाल के झाड़ग्राम, पश्चिमी बांकुड़ा, पश्चिमी वीरभूम, पुरूलिया जिले के तुलीन, झालदा, इचाग, बाघमुण्डी तथा उड़ीसा के क्योंझर, बोनई, बामड़ा, मयूरभंज और सुन्दरगढ़ के अतिरिक्त पूर्णिया, भागलपुर, असम, मध्यप्रदेश को कुरमाली भाषी क्षेत्र माना है।

गिरीशचन्द्र महन्ता कुरमाली भाषा के क्षेत्र को परिसीमित करने के पक्ष में नहीं है। उन्होंने लिखा है– कुरमाली भाषा कहने से किसी भौगोलिक सीमा की भाषा नहीं लगती है। जिस प्रकार नागपुरिया, भोजपुरी, मैथिली, छत्तीसगढ़ी, आदि भाषा कहने से किसी अंचल की भाषा लगती है। इस प्रकार 'कुरमाली' भाषा भौगोलिक सीमा क्षेत्र में आबद्ध नहीं। बंगाल, बिहार, असम या मध्यप्रदेश में जहाँ भी झारखण्डीय कुरमी बसते हैं, वहीं पर यह भाषा है।

निष्कर्षतः, कुरमाली भाषा–भाषी का एक विशाल क्षेत्र है तथा झारखण्ड क्षेत्र में 'कुरमाली' भाषियों की संख्या सर्वाधिक है।

उपभाषाएँ और प्रभेद–

यों तो डा. ग्रियर्सन एवं उनके परवर्ती विद्वानों ने 'कुरमालीठार' को 'खट्टा' भी कहा है। मानभूम के उत्तर–पश्चिम भाग में इसे 'खट्टा' तथा उसी के पश्चिमी भाग में 'खट्टाही' कहा जाता है। पश्चिमी माल्दह में कुरमाली को 'खोण्टाली' कही जाती है।

राँची ज़िले के पंचपरगना क्षेत्र (सिल्ली, राहे, बुण्डू, तमाड़, बारेण्डा) में बोली जाने वाली पंचपरगनिया या तमाड़िया भी कुरमाली के स्थानीय रूप

विद्वानों ने माना है जो मानभूम में बोली जाने वाली कुरमालीठार के सन्निकट है।

डा. विश्वनाथ प्रसाद और डा. सुधाकर झा 'शास्त्री' ने अपने "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ मानभूम एवं धलभूम" में लिखा है कि धलभूम में बिहारियों द्वारा बोली जानेवाली आधे दर्जन से अधिक बोलियाँ के आधार कुरमाली हैं।

भाषिक विशेषताएँ–

1. ध्वनि–

कुरमाली का व्याकरण अभी तक शैशवावस्था में है। अभी तक कोई व्यवस्थित व्याकरण नहीं लिखा गया है। जो भी व्याकरण लिखे गए हैं, वे त्रुटिपूर्ण और भ्रमात्मक हैं। किसी भी भाषा की प्रकृति, उद्भव और विकास को जानने के लिए उसकी बनावट और व्याकरण का अध्ययन अत्यावश्यक हो जाता है। कुरमाली की प्राप्त सामग्री के आधार पर उसकी प्रकृति, ध्वनि–तत्त्व, रूप–तत्त्व के आधार पर निःसंकोच कहा जा सकता है कि सीमान्त भाषाओं का किंचित प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि सीमान्त की भाषाएँ इसे अपनी उपभाषा बनाने या अपने में आत्मसात् करने के लिए सतत सचेष्ट रही है।

कुरमाली भाषा की विभिन्न ध्वनियों के लिए देवनागरी की स्वर ध्वनियों ही व्यवहृत होती हैं। देवनागरी के स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ध्वनियों का व्यवहार किया जाता है । ऐ और औ का उच्चारण क्रमशः 'अइ' और 'अउ' लिखने और उच्चारण करने की प्रव त्ति पायी जाती है। जैसे– पइसा, कउआ, नउआ, आदि। ऋ का उच्चारण 'रि' की भांति होता है। जैसे– ऋ– रिन, तिुं–रितु आदि।' अ' अनुस्वार अनेकानेक शब्दों चन्द्र–बिन्दु के सद श्य अनुनासिक उच्चरित होता है; जैसे– आँइख, आँगरा, आँगना, दाँत इत्यादि। स्वर के 'ऋ' और 'ल ' ध्वनियों का प्रयोग नहीं होता है।

कुरमाली के वैयाकरण ध्वनियों के प्रयोग के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। कुछ व्याकरण–लेखक व्यंजन वर्णों के अनुनासिक 'ङ.' और 'ञ' के प्रयोग के पक्षधर नहीं हैं, परन्तु, उनकी क तियों में मोंय को मञ (मैं) लिखने की प्रवृत्ति देखी जाती है। मेरे विचार से इन वर्णों का व्यवहार भी उचित प्रतीत होता है। जैसे– उलुङ. (नंगा) और डाङ. में 'ङ.' का व्यवहार। इसी प्रकार चिञा, मिञा, दिञा, में 'ञ' का व्यवहार किया जा सकता है। 'ण' का प्रयोग कुरमाली में स्वतंत्र रूप से नहीं होता है। 'ण' के बदले 'न' का प्रयोग होता है; जैसे– गुण–गुन, ऋण–रिन आदि। ा, भा, और 'स' में केवल 'स' का प्रयोग मिलता है। शब्द के

आरम्भ में 'य' और 'व' ध्वनियाँ नहीं मिलती हैं। अतः 'य' के स्थान पर 'ज' और 'व' स्थान पर 'ब' ध्वनियाँ उच्चरित होती है। जैसे; यदि–जदि, युग–जुग, विवाह–बिहा, वर–बर इत्यादि। 'य' और 'व' उच्चारण मध्य अथवा अन्त में वही रहता है।

संयुक्ताक्षर 'क्ष' का उच्चारण 'छ' अथवा 'ख' होता है। जैसे– क्षमा–छमा या खमा। कुरमाली में संयुक्ताक्षर भी प्रायः नहीं होते। शब्दों के सब अक्षर प्रायः पृथक–पृथक उच्चारित होते हैं, यथा– प्रभु–परभू, अच्छा–आछा, वत्स–बाछा, लक्ष्मी–लखी, क्षमता–खेमऽता इत्यादि। असंयुक्त अक्षरों में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे– कुटुम्ब–कुटुम, चिह्न–चिनहा।

कुरमाली में 'अकार' के स्थान पर 'आकार' की प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे– घर–घार, गगरा–गागरा, पहाड़–पाहाड़, पत्थर–पाथर, पटना–पाटना आदि। कुछेक शब्दों के मध्य में 'इ' का आगम करके उच्चारित किये जाते हैं, जैसे– दाल–दाइल, रात–राइत, जाति–जाइत, लात–लाइत इत्यादि।

गणनात्मक संख्याओं के उच्चारण में ग्यारह से अठारह तक की संख्याओं में 'ह' का उच्चारण नहीं होता है। जैसे– ग्यारह–गारो, बारह–बारो, तेरह–तेरो, अठारो आदि।

2. संज्ञा रुप–

कुरमाली में संज्ञा के ह्रस्व रुप ही प्रायः प्रचलित हैं, जैसेः– काड़ा, घोड़ा आदि। परन्तु, कभी–कभी दीर्घ रुप भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसके द भटान्त अत्यल्प हैं। यथा–

ह्रस्व	–	दीर्घ
जेठु	–	जेठुवा
घासी	–	घासिया
फागु	–	फागुआ
लखी	–	लखिया

कुरमाली में मागधी प्रसूत अन्य भारतीय आर्य–भाषाओं की भांति पुलिंग और स्त्रीलिंग संज्ञापदों के रुप में कोई अन्तर नहीं है। टा, टि, टाइ, टाए, प्रत्यय बहुतायत से व्यवहार में आते हैं; जैसे– छवाटा, छवाटि, पहाड़टा, गाछटि, आदि।

संज्ञा के पाँच भेद–

(क) जातिवाचक : गरु, पाहाड़, डाँगर, मानुस, आदि।

(ख) व्यक्तिवाचक : पइनापाहाड़, सबरनाखा, लछुआ, कोंचो, आदि।

(ग) समूहवाचक : आसर, धउद, गादा, मजलिस, मेला, हाट, आदि।

(घ) द्रव्यवाचक : चाउर, जनहाइर, धान, सिधिया, रूपा, सना, आदि।

(ङ) भाववाचक : हुब, दालिदर, फेदान, आउसान, लुइर, आदि।

3. कारक

कर्त्ताकारक की विभक्ति को लेकर कुरमाली–व्याकरण लेखकों में मतभेद हैं। डा. नन्दकिशोर सिंह, डा. संतोष कुमारी जैन, श्री खुदीराम महतो, डा. एच. एन. सिंह, आदि ने कर्त्ताकारक को विभक्ति रहित माना है जबकि श्री श्याम सुन्दर महतो ने अपनी 'कुरमाली बेइआकरन' में कर्त्ताकारक के दो चिह्न 'ए' और 'ई' दर्शाये हैं। इसी प्रकार डा. चन्द्र मोहन महतो ने अपने शोध–प्रबन्ध– ''कुड़माली भाषा का व्याकरण'' में कर्त्ताकारक की चार विभक्तियाँ मानी हैं– ए, एं, ञ, ई। वस्तुतः कुरमाली में कर्त्ताकारक की कोई विभक्ति नहीं हैं।

कर्त्ता कारक– कुरमाली कर्त्ताकारक विभक्ति रहित है। जैसे– रामे खाल– राम ने खाया। सीताइं खाली– सीता ने खाया।

कर्म कारक– इसका चिह्न 'के' है। जैसे– मोहन के डाकलेइक– मोहन को बुलाया। मके कहि दे– मुझको बता दो।

करण कारक– करणकारक के चिह्न लेइ, दारा हैं। जैसे– तर दारा कनऽ कांम नि हेतेइक– तुम्हारे द्वारा कोई काम नहीं होगा।

सम्प्रदान– सम्प्रदान कारक के चिह्न लाइ, लागिन, खातिर, हांतिर, तेंहें, लेल हैं। जैसे– छवाटा माड़ लाइ काँदेइस– लड़का भात के लिए रो रहा है।

आपादान– आपादान कारक की विभक्ति 'ले' हैं, जैसे– गाछ ले पालहा गिरलइेक– पेड़ से पत्ता गिरा। फागु राँची ले गेल– फागु राँची से गया। मर ले तोंय बड़ऽ हेकिस– मुझसे तुम बड़े हो।

अधिकरण– अधिकरण कारक के चिह्न 'ऊपर' और 'माहान' है। जैसे– उँडु माहान साँप रहऽहत– बिल में साँप रहते हैं। राम घारे आहे– राम घर में हैं। छाइन ऊपर कउआ बसल आहात– छत के ऊपर कौवे बैठे हैं। मर ऊपर दया करें– मुझ पर दया करो।

सम्बन्ध कारक– इसके चिह्न क, कर, केर हैं। जैसे– जेठुक घार– जेठु का घर। दीदीक ठेंठी– बड़ी बहन की साड़ी। पुसुकर चाइरटा बेटा– पुसु के चार लड़के। मोहनकर डाँगर– मोहन के मवेशी।

सम्बोधन– सम्बोधन कारक के लिए हे, एगो, एरे, हेंहो, एहो विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं। जैसे– एगो, काहाँ जाहिस– अरे, घार जाबे न?

4. लिंग–

डा. संतोष कुमारी जैन ने कुरमाली में दो लिंग स्वीकारी हैं– 1. पुलिंग और 2. स्त्रीलिंग। उनके मतानुसार वस्तुतः प्राणिवाचक शब्दों में पुरुषजातीय शब्द पुलिंग होते हैं और स्त्रीजातीय वस्तु स्त्रीलिंग हैं। अप्राणिवाचक शब्द प्रायः पुलिंग होते हैं। कभी–कभी प्रत्ययों के द्वारा लिंग विभेद किया जाता है। जैसे– गाछटा, गाछटि आदि।

क्रियाओं में भी लिंग के कारण अन्तर होता हैं, जैसे– जेठु आवताक (जेठु आयेगा), बुधनी आवती– बुधनी आयेगी। सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं में लिंग कर्त्ता के अनुसार होता है। कभी–कभी सर्वनाम पदों का भी लिंग–ज्ञान क्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है, जैसे उ गेली (वह गयी), उ गेलाक (वह गया)। सजीव प्राणियों में व्यर्थ प्रत्यय लगाकर लिंग–भेद किया जाता है, जैसे– कुकुरटा (कुत्ता), कुकुरटि (कुतिया) खुखड़िटा (मुर्गा), खुखड़िटि (मुर्गी) आदि।

इसके विपरीत कुरमाली वैयाकरणों ने चार लिंग माने हैं–

पुलिंग– मरद, बरद, काड़ा, साँड़हा, दामड़ा आदि पुलिंग हैं।

स्त्रीलिंग– गाय, ढाइड़, फेटाइन, सँड़हुर आदि स्त्रीलिंग हैं।

उभयलिंग– गरू, बाछुर, खुखड़ी, छवा, पेरूवा आदि उभयलिंग हैं।

नपुंसकलिंग– गाछ, पात, भूइं, खेत, आदि नपुंसक लिंग हैं।

कुरमाली में छोटे प्राणियों को स्त्रीलिंग माना गया हैं। जैसे– चिमटिइं चाबलि। माछिइं चाबेस आहि। टिकटिकी गिरलि। खाँखड़ा बिछाइं बिंधलि इत्यादि।

सूर्य, चन्द्र आदि प्राकृतिक वस्तुएँ कुरमाली में स्त्रीलिंग माने गये हैं, जैसे– सुरुज उगलि। चाँद डुबलि। परन्तु, तारा को पुलिंग माना गया है, जैसे– तारिया डुबला। 'हाथी' हिन्दी में पुलिंग है, परन्तु, कुरमाली में इसे स्त्रीलिंग माना गया है, जैसे–हाथी आवेस आहि– हाथी आ रही हैं।

5. वचन

कुरमाली में बहुवचन के लिए पृथक शब्द नहीं है, बल्कि एकवचन में रा, गिला, गिलि, गिलिन, गुलि, सभ प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाये जाते हैं। जैसे– गरूगिला, बेटारा, छागेइर गिलि, कड़ऽगिलिन, गायगिलि, छवासभ इत्यादि।

संख्यावाचक विशेषण संज्ञापद के पहले लगकर बहुवचन का बोध कराते हैं; जैसे– आनखाइ माछि, बेदार टेमरस, दमे उड़ीस, दमतक डिंगला, ससता गेड़े आदि। हाला, कुधा, डिंग, पाला, खाता, गठ आदि समूह के द्योतक हैं; जैसे– एक हाला माछ। एक नुड़ा पात। एक खाता रूपु आदि। गँछा, धँप, घउद, झँप आदि शब्द संज्ञापद के आगे लगकर बहुवचन का बोध कराते हैं। जैसे– एक धँप फूल। एक घउद कुसुम। एक गँछा पइना, एक झँपेइर जनहाइर आदि।

6. सर्वनाम

कुरमाली में निम्नलिखित सर्वनाम प्रचलित हैं–

पुरूषवाचक सर्वनाम–

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरूष –	मोंय, हाम (मैं)	हामरा (हमलोग)
मध्यम पुरुष –	तोंय (तुम)	तरा, तहरा, तखरा (तुमलोग/आप लोग)
अन्य पुरुष –	ओंय, अहे, एहे	अरा, अखरा, (वे लोग)

निजवाचक सर्वनाम–

निजवाचक वह सर्वनाम में 'आपन' या 'निज' का व्यवहार होता है, जैसे– आपन काम करें– अपना काम कीजिए। आपन काथाइं तरी आर परेक काथाइं मरी। निजे ना मरले सरग देखबे– स्वयं के नहीं मरने से स्वर्ग नहीं देखा जा सकता।

निश्चयवाचक सर्वनाम–

कुरमाली में निश्चयवाचक सर्वनाम तीन हैं– निकटवर्ती के लिए 'इ' दूरवर्ती के 'उ' और अधिक दूरवर्ती के लिए 'हाऊ' का व्यवहार किया जाता है, जैसे–

निकटवर्ती	–	इ गरुटा काकर हेकेइक? यह बैल किसका है?
दूरवर्ती	–	उ दामड़ाटा काकर हेकेइक? वह दमड़ा किसका है?
अधिक दूरवर्ती	–	हाऊ पाहाड़टा ऊँचऽ आहेइक वह पहाड़ ऊँचा है।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम–

अनिश्चयवाचक सर्वनाम के लिए केव, किछु, कनऽ, फालना आदि का व्यवहार होता है, जैसे– केव आवल रहे, किछु आनल रहे– कोई आया था, कुछ लाया था। केवे आवल रहे मनतुक कनऽ नि आनल रहे– कोई आया था, परन्तु, कुछ नहीं लाया था।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम–

जेइं, तेइं, जारा, तारा, जाखरा, ताखरा सम्बन्धवाचक सर्वनाम है, जैसे– जेइं खाटत, तेइं चाटत– जो करेगा सो खायेगा। जारा खाटता तारा चाटता– जो करेंगे सो खायेंगे।

प्रश्नवाचक सर्वनाम–

कन, किना, काहाँ, काहे प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं। जैसे– कन रहे?– कौन था? किना आनले?– क्या लाया? काँहा गेल?– कहाँ गया? काहे नि जाबे?– क्यों नहीं जाओगे? इत्यादि।

कुरमाली में कोई आदरसूचक सर्वनाम या शब्द नहीं हैं। बल्कि आदर का भाव प्रदर्शित करने के लिए मध्यमपुरूष के एकवचन रुपों को बहुवचन में व्यवहार करते हैं, जैसे– तरा, तहरा इत्यादि।

7. विशेषण

कुरमाली में विशेषण के दो रुप मिलते हैं– लघु और गुरु। जैसे– बड़ऽ और बड़का। संज्ञापदों के लिंग विशेषणों में शिथिल हैं! वे अनिवार्य रुप से नहीं आते। जैसे– सुन्दर और सुन्दरी, दोनों रुप चलता है। विशेषणों में स्त्रीलिंग बनाने के लिए पुलिंग विशेषणों के अन्त में इ, ई, आहि, इन आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं, जैसेः लेका– लेकी, आदिखलाहा– आदिखलाही, लउठाहा– लउठाही, सियाड़– सियाड़िन, इत्यादि।

गुणवाचक–

लेका, लेलहा, सियान, कड़हि, चेंदड़, चेंका, लेदा, खाड़रा, नउतन, पुरना, झाइल, दालिदर, डाँटऽ, ऊँचऽ, सुघड़, केरिया, कुइलि, हेरिहर इत्यादि गुणवाचक विशेषण हैं।

संख्यावाचक–

(1) निश्चित संख्यावाचक– दुइ, चाइर, पाँच आदि।

(2) अनिश्चय संख्यावाचक– कतेक, बेजाइं, किछु आदि।

कभी–कभी अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण बनाने के लिए निश्चित संख्यावाचक शब्द के बाद 'एक' लगाया जाता हैं, जैसे– गटा आठेक खुखड़ि। कुरमाली में खेल के लिए पृथक संख्यावाचक विशेषण प्रयुक्त होते है, जैसे– एड़ी, दड़ी, घुरन, चाइल, चमपा, झेइक, सुतेइल, अठई, नमी और बाँड़ी। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः सात, आठ, नौ, शून्य। परन्तु, दैनिक व्यवहार में हिन्दी के ही संख्यावाचक शब्द किंचित परिवर्तन के साथ व्यवहृत होते हैं। बीस के लिए 'कुड़ी' शब्द का प्रचलित हैं। परन्तु, परिमाण–वाचक विशेषण में बीस के लिए 'खँड़ी' तथा चालीस के लिए 'काठ' शब्द का प्रचलन है।

परिणामवाचक–

परिणाम वाचक विशेषण में रिचिक, बेजाइं, दमें, डेढ़हा, दबड़, आदि परिमाणवाचक शब्दों का व्यवहार होता है।

सार्वनामिक विशेषण–

इ, ओंय, उजे, जेइं, अहे, कन आदि सार्वनामिक विशेषण हैं, जैसे–

– इ लगटा बेस ना लागे– वह आदमी अच्छा नहीं हैं।

– जे लगटा आवल रहे से गेलाक

जो आदमी आया था, वह चला गया।

– अहे लगटाइं मके मारल रहे

उस आदमी ने मुझे मारा था।

– कन लग आवेसाहे– कोई आदमी आ रहा है।

– किछु छवाइं रजे टेमरस पाड़ेहेथिन

कुछ लड़के रोज अमरुद तोड़ते हैं।

8. क्रिया–

कुरमाली में पुलिंग और स्त्रीलिंग के लिए क्रिया के एकवचन एवं बहुवचन के भिन्न–भिन्न रुप होते हैं, जैसे– राम जाइस आहे– राम जाता हैं। सीता जाइस आहि– सीता जाती है। अरा जाहात– वे जा रहे हैं। क्रियाएँ, काल, वचन एवं पुरुष के अनुसार भिन्न–भिन्न हुआ करती हैं। यही नहीं, कुरमाली में आहे, आहों, आहेइक, हेके, आहिस, 'होना' क्रिया के कई रुप हैं तथा इनका प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में होता है। इन क्रियाओं के निषेधात्मक रुप इनसे भिन्न हैं। 'हेकेइक' क्रिया का निषेधात्मक– नहेइक, हेतेइक का निहेतेइक, हेके का नहे आदि। जैसे– किना हेकेइक (क्या है?)– किछु नहेइक (कुछ नहीं है), इ कामटा हेतेइक (यह कार्य होगा) –इ कामटा निहेतेइक (यह कार्य नहीं होगा), लग हेके (आदमी है), लग नहे (आदमी नहीं है), मधु घारे नेखे (मधु घर में नहीं है), मधु घारे आहे– मधु घर में है।

कुरमाली के निषेधात्मक क्रियारुप– न, ना, नि, निहिं, नेहि, ठेपो हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कुरमाली धातुएँ दो प्रकार की हैं– (1). मूल धातु (2). यौगिक धातु।

1. मूलधातु–

इड़का, गुचा, हुलका, चुंगरा, संड़गा, गिजड़ा आदि मूल धातुएँ हैं।

2. यौगिक धातु–

अहत, आल, एइस, हेला आदि प्रत्यय जोड़कर यौगिक धातुएँ बनती हैं, जैसे– इड़कऽहत, गुचावल, हुलकल, चुंगरेइस, गिजड़ेसाहे आदि। अम, 'आव' प्रत्यय जोड़कर प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनायी जाती हैं। भविष्यतकाल में 'ब' प्रत्यय का प्रयोग होता है। यौगिक धातु तीन प्रकार की होती हैं– क. प्रेरणार्थक धातु, ख. नाम धातु, ग. अनुकरण धातु।

क. प्रेरणार्थक धातु–	लेग (ले जाना) –	लेगवाउ, (लेजवाउ),
	कड़ा (खोदना) –	कड़ावहेन,
	छिंटा (छींटना) –	छिंटवाउलेन,
	करा (करना) –	करावहेन
	सँपड़ा (तैयार करना)–	सँपड़ाउ।

ख. नाम धातु–

संज्ञा के आधार पर–

हाथ	–	हेथियावल / हेथियाउ,
लात	–	लेथियावल / लेथियाउ,
डहर	–	डहराउ / डहरावल,
चाटका	–	चाटकाउ / चाटकावल

विशेषण के आधार पर –

चिकना	–	चिकनाउ / चिकनावल,
सझऽ	–	सझाव / सझावल
आगु	–	आगुआउ / आगुवाअल
पेछु	–	पेछुआउ / पेछुवाअल

ग. अनुकरण धातु–

ठकठक	–	ठकठकाउ,
हिर–हिरि	–	हिर–हिराउ

कर्मफल की दृष्टि से क्रिया के दो रुप होते हैं– अ. सकर्मक और ब. अकर्मक।

(अ) सकर्मक क्रिया–

ओंय टेमरस खाहेन (वह अमरुद खाता है),

मधुइं पथि पढ़ेसाहे (मधु पुस्तक पढ़ रहा है)

खायेक, पियेक, पढ़ेइक, लिखेइक आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं।

(ब) अकर्मक क्रिया–

राम इड़केसाहे (राम उछलता है)

लुखरि गिजड़ेइस (लुखरि हँसती है),

धनिया सँड़गेइस (धनिया सोता है)

गिजड़ा, इड़का, सँड़गा, काँदा, बसा आदि अकर्मक क्रियाएँ हैं।

संयुक्त क्रिया–

काड़ाटाके भेलकावले धुनेन (भैंसा को छेड़ने से मारता है) तुमली गिलाके छुरलाउले बिंधबधुन (बिरनी को छेड़ने से डंक मारेगी), जेठुवा काँदे लागल (जेठुवा रोने लगा) रितुइं ढाढ़ाइ देलेइक (रितु ने डंडा मार दिया)।

संयुक्त क्रियाओं के निम्नांकित भेद हैं–

(क) आरम्भबोधक – काँदे लागल (रोने लगा)। खेले लागल (खेलने लगा)।

(ख) समाप्तिबोधक – सीताइं खाल हेति (सीता खा चुकी हैं)। रामे काम करल हेत (राम काम कर चुका होगा)

(ग) अनुमतिबोधक – मके जाइ दे (मुझे जाने दो)। मके कहलाइं नि देल (मुझे कहने नहीं दिया)

(घ) आवश्यकताबोधक – मके घारे काम करे हेइ (मुझे घर में काम करना पड़ता है)। बेटिछवा के घारेक काम करा चाही (लड़कियों को घर का काम करना चाहिए)।

(ड़) इच्छाबोधक – ओंय आवे खोजेसाहे (वह आना चाहता है)
मोंय पढ़े खजऽहँ (मैं पढ़ना चाहता हूँ)

(च) शक्तिबोधक – ओंय चले पारेइ (वह चल सकता है)
तोंय पढ़े पारिस (तुम पढ़ सकते हो)

(छ) निश्चयबोधक – जेठु जागी गेल (जेठु जाग गया)
फागु चली देलेइक (फागु चला गया)

(ज) नित्यताबोधक – बासात बहे लागलेइक (हवा चलती रही है)
धान बाढ़े लागलेइक (धान बढ़ता जा रहा है)

(झ) अवकाशबोधक – ओंय जाइ नि पावल (वह जाने नहीं पाया) तोंय सँड़गे नि पावले (तुम सोने नहीं पाया)

(ञ) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ– ओंय आवा–जावा करेइ (वह आया–जाया करता है) अकर संग उठा–बसा नि हेइ (उसके साथ उठना–बैठना नहीं है)

पूर्वकालिक क्रिया–

– छागेइर गिला के हुलकि आवबेसिन (बकरियों को देखकर आओ)।

– ओंय खटिके टाका जहड़ावेइ (वह परिश्रमकर रुपये इकट्ठा करता है)।

– छवाटाइं हाबु हेइके भात खाताग (लड़का स्नानकर भात खायेगा)।

क्रियार्थक संज्ञा–

– अकर गिजड़ल मके बेस नि लागलि (उसका हँसना मुझे अच्छा नहीं लगा)।

– दिने सँड़गा बेस ना लागेइक (दिन को सोना अच्छा नहीं है)।

9. अव्यय--

(क) क्रियाविशेषण--

(अ) मूल क्रियाविशेषण – झाइर, आचाकाइ, बेस, त।

(ब) यौगिक क्रियाविशेषण – भूले–भूले, आसे–पासे, आसते–आसते, रसे–रसे, दानदानाइं, ताड़ातेइड़, एकाइं–एकाइं, हार–हार, फार–फार।

(स) स्थानीय क्रियाविशेषण– तोंय कापाड़ पढ़बे।
तोंय लुआइठ खाबे।

प्रयोग के अनुसार कुरमाली में निम्नलिखित क्रियाविशेषण प्रयुक्त होते हैं–

(अ) साधारण – बेसि, हुँदे, कँदे।

(ब) संयोजक – इ बछर जेसन टान हेलि तेसन कबऊ नि हेले रहि। जखन तोंय आवबे तखन मोंय जाम।

(स) अनुबद्ध – मोंय एखन तड़िक नि खालाहँ।
इटा त ओंय करल हेताक।

अर्थ के अनुसार कुरमाली के क्रियाविशेषण

(अ) स्थानवाचक – हिआँ, हुआँ, आगुइं, पेछुइं, ऊपर, हेठं, ठाऊँ, धुर, हिंदे–हुँदे, कँदे, जँदे, बाँउएँ चाइरोगिरदा, जँदे–तँदे।

(ब) कालवाचक -- आइज, काइल, जबे, एखन, चाँड़े, कबऊ, परसु, आखिर, तबे, सतखन, दिनभइर, एकाकार, पेतिदिन, केतेकबार, खने–खने, मिटिक–मिटिक।

(स) परिणामवाचक – बेजाइं, बेसि, भारी, एकदम, दमें, आनखाइ, दमतक, बेदार, किछु, रिचिक, टुकु, आबगा, एतेक, अतेक, कम, इडुल, उडुल, अहेडुल, हाउडुल, इ लेखे, उ लेखे, एहेजुकुर, रिचिक–रिचिक, एकाइं–एकाइं।

(द) रीतिवाचक – एसे, असे, जेसे, तेसे, आचाकाइ, चाँड़े, निसटाइ, केजान, हेइपारेइक, बधई, काहे, सेइतेहें, सेहलाइ, नेहि, ताउ, एतने, ठेपो।

(ख) सम्बन्धबोधक अव्यय–

प्रयोग के अनुसार सम्बन्धसूचक दो प्रकार के होते हैं। (1) सम्बन्ध और (2) अनुबद्ध।

(1) सम्बन्ध–

– टाकाक बिनु काम नि हेइक (रुपये के बिना काम नहीं होता)।

– अकर बेगर इ कामटा केसे हेतेइक? (उसके बिना यह काम कैसे होगा)?

– गरु निआर खाटेइस (बैल की भांति परिश्रम करता है)।

(2) अनुबद्ध–

– बछर तड़िक रहल (वर्ष भर रहा)।

– छवा सँग चलि गेल (बच्चे सहित चला गया)।

– दिनभइर काम करा मसकेइत हेकेइक (दिनभर काम करना कठिन है)

अर्थ के अनुसार कुरमाली के सम्बन्धसूचक अव्यय निम्नलिखित हैं–

(1) कालवाचक – आगु, पेछु, पहिल, परे, लेहालेहि, मटामटि।

(2) स्थानवाचक – आगु–पेछु, हेंठ, आगुबाटे, ठाऊँ, पासे, मइधे, बाहेइर।

(3) दिशावाचक – बाटे, पाइर, आसे–पासे, चाइरोगिरदा।

(4) साधनवाचक – दारा, तेहें।

(5) कारणवाचक – हाँतिर, खातिर, लाइ, तेहें।

(6) व्यतिरेकवाचक – छाड़िके, बिनु, लांगना।

(7) विनिमयवाचक – एवजि, पालटि, जाइगाइं।

(8) सादृश्यवाचक — निआर, समान, लेखे।

(9) विरोधवाचक — उलथा।

(10) सहचरवाचक — संग, अधीन।

(11) संग्रहवाचक — तड़िक, भइर, आबगा।

(12) तुलनावाचक — ले, सामने, आगुइं।

(ग) समुच्चयबोधक अव्यय–

(1) समानाधिकरण — संयोजक– आर, एबंग, जे।

वियोजक — बा, किमबा, चाहे, नितऽ, न।

विरोधदर्शक — मनेक, मेनतुक, बरंच।

परिणामदर्शक — सेइ तेहें।

(2) व्याधिकरण — कारणवाचक — काहेकि, कारण, सेइमाहान, सेइ तेहें।

उद्देश्यवाचक — जे, जेइं, लाइ।

संकेतवाचक — जदि, त, चाहे।

स्वरुपवाचक — जे, माने।

(घ) विस्मयादिबोधक अव्यय–

हर्ष — बाह, साबाइस, बेस।

शोक — हाइहाई, अहरे, बापगो, हायरे।

आश्चर्य — हें, बाहबाह, किना।

अनुमोदन — ठीक, आछा, हँ।

तिस्कार — छि, धेइत, हेइट, दुर, दुरमाइरि, धेइततेरि।

सम्बोधन — अरे, एरे, एहों, अ–लो।

(1) क्रियाविशेषण —

ओंय, चाँड़े, आवेसहि (वह जल्द आ रहा है)।

(2) सम्बन्धसूचक–

गाँव मुड़ा तड़िक जाइं (गाँव की सीमा तक जाओ)।

(3) समुच्चयबोधक–

फागु आर जेठु जाहात (फागु और जेठु जा रहे हैं)।

तोंय जाइं चाहे ओंय–जात (तुम जाओ चाहे वह जाए)।

(4) विस्मयादिबोधक–

अहरे! मिठु मरि गेलाक (आह! मिठु मर गया)।

10. वाच्य–

कुरमाली में वाच्य दो हैं– 1. कर्त्तृ वाच्य और 2. कर्मवाच्य।

(1) कर्त्तृवाच्य– मोंय पढ़ऽहँ– मैं पढ़ता हूँ।

गीता कांदेसाहि– गीता रोती है।

छवाटा कांदेसाहे– लड़का रोता है।

फागु आर जेठुइं खात ला– फागु और जुठे खा रहे हैं।

रामे नि खाइस– राम नहीं खाता है।

उपर्युक्त वाक्यों में क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार हैं।

(2) कर्मवाच्य–

रामेक दारा गायटि नि दुहाली– राम के द्वारा गाय नहीं दूही गयी।

सीताक द्वारा गरुटा नि खुँटाल– सीता के द्वारा बैल नहीं बांधा गया।

उपर्युक्त वाक्यों में क्रिया– 'दुहाली' और 'खुँटाल' कर्म के अनुसार हुई है। इसी प्रकार,

साँढ़ किनाल गेलाक– साँढ़ खरीदा गया।

गाय किनाल गेली– गाय खरीदी गयी, में भी क्रियाएँ कर्म के अनुसार हुई हैं। परन्तु, वाक्य में यदि से/द्वारा का प्रयोग नहीं होता हो तो कर्मवाच्य में क्रिया कर्म के अनुसार न होकर नपुंसक लिंग में होती है; जैसे–

रामें गायटि के खेदलेइक– राम ने गाय को खदेड़ा।

सीताइं गायटिके खेदलेइक– सीता ने गाय को खदेड़ा।

रामे गुरूटा के खुँटलेइक– राम ने बैल को बाँधा।

सीताइं गरूटा के खुँटलेइक– सीता ने बैल को बांधा। ऊपर के वाक्य में क्रियाएँ नपुसंग लिंग में हैं।

11. काल

वर्तमानकाल

सामान्य वर्तमान–

करमा सँड़गेसाहे– करमा सोता है।

मोंय जाहों– मैं जाता हूँ।

तोंय खाहिस– तुम खाते हो।

तात्कालिक वर्तमान–

तरा काहाँ जाहिया/तरा काहाँ जाहिया ला?–

तुमलोग कहाँ जा रहे हो?

मोंय जाऊँला– मैं जा रहा हूँ।

अरा जात ला– वे लोग जा रहे हैं।

पूर्ण तात्कालिक वर्तमानकाल–

मेघु आड़बेरा ले ख़ेलते आहे–

मेघु मध्याह्न के बाद से खेलता रहा है।

जेठु बिहान ले पेंइरते आहे– जेठु सबेरे से तैरता रहा है।

पूर्ण वर्तमान काल–

ओंय आवल आहे– वह आया है।

ओंय आवल आहि– वह आयी है।

भूतकाल

सामान्यभूत–

करमा गेलाक– करमा गया।

मोंय खालों– मैंने खाया।

ओंय सुतल– वह सो गया।

आसन्नभूत–

ओंय खाल आहे– वह खा चुका है।

जेठु गेल आहे– जेठु गया है।

मोंय पथि पढ़ल आहों– मैंने पुस्तक पढ़ी है।

पूर्णभूतकाल–

मोंय पथि पढ़ल रहों– मैंने किताब पढ़ी थी।

फागु गेल रहे– फागु गया था।

ओंय आवल रहे– वह आया था।

अपूर्णभूतकाल–

मोंय पथि पढ़े हेलों– मैं पुस्तक पढ़ता था।

मेधु जाइ हेलाक– मेधु जाता था।

तोंय जाइ हेलिस– तुम जाते थे।

संदिग्धभूतकाल–

मोंय भात खाल हेम– मैंने भात खाया होगा।

हरि गेल हेत– हरि गया होगा।

तोंय गेल हेवे– तुम गए होगे।

ओंय आवल हेताक– वह आया होगा।

हेतुहेतुमद्भूतकाल–

बेइरसा हेइतेलेइक त धान नेजगेतेलेइक–

वर्षा होती तो धान उपजता।

आबगास पावे तेलों तबे हुआँ जाइतेलों–

फुर्सत मिलती तो मैं वहाँ जाता।

भविष्यत्काल

सामान्य भविष्यत्–

मोंय पढ़म– मैं पढूँगा।

हामरा पढ़ब– हमलोग पढेंगे।

तोंय पढ़बे– तुम पढ़ोगे।

तरा/तहरा पढ़बेहे– तुमलोग पढ़ोगे।

ओंय पढ़त– वह पढ़ेगा।

अरा/अखरा पढ़ता– वे लोग पढ़ेंगे।

तात्कालिक भविष्यत्–

मोंय पढ़ते रहम– मैं पढ़ता रहूँगा।

हामरा पढ़ते रहब– हमलोग पढ़ते रहेंगे।

तोंय पढ़ते रहबे– तुम पढ़ते रहोगे।

तरा पढ़ते रहबेहे– तुमलोग पढ़ते रहोगे।

ओंय पढ़ते रहत– वह पढ़ता रहेगा।

अरा पढ़ते रहता– वे लोग पढ़ते रहेंगे।

पूर्ण भविष्यत्–

मोंय टाका जगाड़ करल हेम– मैं रुपये इन्तजाम किया हूँगा।

हामरा टाका जगाड़ करल हेब– हमलोग रुपये इन्तजाम किए होंगे।

तोंय टाका जगाड़ करल हेबे– तुम रुपये इन्तजाम किये होंगे।

तरा टाका जगाड़ करल हेबेहे– तुमलोग रुपये इन्तजाम किए होगे।

ओंय टाका जगाड़ करल हेत– उसने रुपये इन्तजाम किया होगा।

अरा टाका जगाड़ करल हेता– उन्होंने रुपये इन्तजाम किए होंगे।

पूर्ण तात्कालिक भविष्यतकाल–

हामरा टाका जगाड़ करते रहब– हमलोग रुपये इन्तजाम करते रहेंगे।

तरा टाका जगाड़ करते रहबेहे– तुमलोग–आपलोग रुपये इन्तजाम करते रहेंगे।

मोंय टाका जगाड़ करते रहम– मैं रुपये इन्तजाम करता रहूँगा।

तोंय टाका जगाड़ करते रहबे– तुम रुपये इन्तजाम करते रहोगे।

ओंय टाका जगाड़ करते रहत– वह रुपये इन्तजाम करता रहेगा।

अरा टाका जगाड़ करते रहता– वे लोग रुपये इन्तजाम करते रहेंगे।

आज्ञार्थ भविष्यत्काल–

घारे रहबे– घर में रहोगे। बहुवचन– रहबेहे।

काइल जाबे– कल जाओगे। बहुवचन– जाबेहे।

संदिग्ध भविष्यत्काल–

हेइ पारेइक– हो सकता है।

ओंय काइल घार आवत– वह कल घर आयेगा।

12. शब्द–स्रोत

मुख्य रुप से कुरमाली भाषा के निम्नलिखित शब्द स्रोत हैं–

(क) आग्नेय भाषा परिवार की भाषाओं से आये शब्द

(ख) द्रविड़ भाषा परिवार से लिए गए शब्द

(ग) तत्सम एवं अर्द्धतत्सम शब्द

(घ) तद्‌भव

(ङ) देशज

(च) विदेशज

आग्नेय भाषा परिवार के अन्तर्गत परिगणित होने वाली मुण्डारी, संताली, हो, खड़िया के अनेकानेक षब्दों का कुरमाली में समागम हुआ है। उन सभी शब्दों का उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं।

मुण्डारी–

हाही, आरना, उलुङ्., डाङ्., गादर, गुमा, तुलगा, निझा, पेंइनचा, सिठा, हातु, हेवा आदि।

क्रियाएँ– अकाई, अगरा, कुरकुचा, गाता, छिनगा, जबड़ा, दुंदरा, फुचका, मेसा, सलगा, हिचका आदि।

संताली–

आंगरा, पाइड़, हाटिञ, बाखरा, लेलहा, ठेला, साड़ा, रेरेड़., चाली, घाखुर, मेही, डहर, आंउसान, गेजस, गिदर आदि।

क्रियाएँ– आकता, बीड़ा, नेहर, धिपा, दाँड़ा, गादा, दुसा आदि।

हो–

आँटा, ऊँडु, उरि, कपो, गांबा, गुचा, गुता, गसो, चबड़ो, चिपा, डिडि, नू, बुड़ा, भिड़का, गुंगुमाइं आदि।

खड़िया–

हिंसिगा, नुनू, रुगड़ी, ठर, ढोढ़र, कोचा, चिड़रा, घोरना, उतना, चुटिया, जोंढ़रा, आदि।

आग्नेय परिवार की भाषाओं के शब्द की अपेक्षा द्रविड़ भाषा के कुडुख' से अधिकतर शब्द और क्रियाएँ ईषत् परिवर्तन के साथ कुरमाली में आत्मसात् हो गए हैं।

कुड़ुख़–

पोटा, खांड़ा, आचाकाइ, हायटाटका, जिधहा, पुनहा, टेमरस, ददना, छेऊ, फहम, इरा, पुलुई–पुलुई, ढिपा, खाँधा, सँपड़ा, फकना, सारा, असाइर, चहुआ, उफिआ, लेबदा, बसागत, छितरा, लोठो, निजगुत, सरजाम, लबरो, ललऽपतऽ, आदि।

क्रियाएँ– गुड़िया, छिनगा, जहना, आड़हा, हुचका, उलगा, उड़िया, जमका, अहरा, टसका, जहड़ा, लिला, धुंका, बाझा, घसड़ा, बारा, छितरा, भिड़का, सँभड़ा, बितबिता, आदि।

विदेशज–

अरबी– आइनाहा, इजमाल, ओहदार, कुन्दा, खातिर, खाली, जहद, जुमला, तालेबर, नाका, बाइसि, मुलकि, सर्फा, हया, हुजेइत, सबुर, वाजिब, मातबर, मिनहा, काहिल, खयानत, आयाँ, एवजी, आदवाती, आदि।

फारसी–

आन्दाज, आसते–आसते, कुम, गागा, चई, जेनी, जिआन, दागी, दादन, धूर, दगला, लालिस, परगना, पासांग, पइकार, बदी, बेजार, मुरदार, राहजनी, सिरनी, हुनेइर आदि।

इनके अतिरिक्त भारतीय आर्य–भाषाओं के अन्तर्गत परिगणित होनेवाली भाषाओं– मराठी, पंजाबी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, बंगला, असामी, उड़िया, आदि के शब्द भी कुरमाली में दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत के अधिकांश शब्दों का सरलीकरण कर कुरमाली में अपनाया गया है। इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए डा. जार्ज ग्रियर्सन ने इसे (कुरमाली) विचित्र भूभाग के विचित्र लोगों की भाषा कहा है। कुरमाली की शब्द सम्पदा के कुछ आंतरिक नमूने इस प्रकार है–

शरीर के अंग सम्बन्धी शब्द–

कुरमाली	–	हिन्दी
आंगुर	–	अंगुल

आँइख	–	आँख
घेंचा	–	गर्दन
बिसी	–	रीढ़
पोटा	–	अँतड़ी
गात	–	शरीर
कापाड़	–	ललाट
पिपनी	–	आंख की पुतली
टेंग/गड़	–	पैर
सुपली गड़	–	पैर का ऊपरी भाग
नारहाँठा	–	घुटने का नीचे का भाग
लड़हीमास	–	घुटने के नीचे का मांसल भाग
डाँड़ा	–	कमर
तुतका	–	सिर का पिछला भाग
कानीआँगुर	–	छोटी अंगुल
चाम	–	चमड़ा
मुँड़	–	सिर

परिवार सम्बन्धी शब्द–

भेंसुर	–	जेठ
बवासिन	–	छोटे भाई की पत्नी
गुंगुमांइ	–	बड़े पिता की पत्नी
गुंगुबाप	–	पिता का बड़ा भाई
बहनेइ	–	बहनोई
बहिन	–	बहन
फुफू	–	पिता की बहन
फूफा	–	फुफू का पति

बहु	–	पत्नी
भातार	–	पति
भउजि	–	भाभी
ननद	–	पति का बहन
ननदोसु	–	ननद का पति
भाई	–	छोटा भाई
गोतनी	–	देवर की पत्नी

बर्तन सम्बन्धी शब्द–

हाँड़ी	–	घड़ा
डुभी	–	कटोरा
डुभा	–	बड़ा कटोरा
घटी	–	लोटा
खुसनी	–	छलनी
माड़ना	–	बड़ा घड़ा जिसका मुँह चौड़ा रहता है।
बाहनी	–	मिट्टी का बड़ा बर्तन
सारवा	–	एक प्रकार का ढक्कन
छिपा	–	एक प्रकार का थाल
थाल	–	थाली
कुम	–	गुड़ रखने का बर्तन
कुपी	–	मिट्टी का छोटा बर्तन

वस्त्राभूषण सम्बन्धी शब्द–

पागरा	–	कान में पहनने का आभूषण
फिरकी	–	कान में पहनने का आभूषण
कानपासा	–	कान में पहनने का आभूषण
हेंसली	–	गले में पहनने का आभूषण
बाजू	–	बाँह में पहनने का आभूषण
पेछुआ	–	हाथ में पहनने का आभूषण

बाला	–	हाथ में पहनने का आभूषण
पीतर	–	हाथ में पहनने का आभूषण
लुगा	–	कपड़ा
फेटा	–	पगड़ी
ठेंठी	–	एक प्रकार की मोटी साड़ी
गहमा	–	कन्या को दी जाने वाली साड़ी (विवाह के अवसर पर)
पाँचन	–	कन्या की माँ को दी जाने वाली साड़ी
काचा	–	मर्द के पहनने का वस्त्र
पेंइरी	–	पैर में पहनने का आभूषण
तड़ा	–	पैर में पहनने का आभूषण
चुटकी	–	पैर की अंगुली में पहनने की अंगूठी

गृह–निर्माण सम्बन्धी शब्द–

पांचेइर	–	दिवाल
रादा	–	लेअर
गाभा	–	चौड़ाई
असाइर	–	चौड़ा
काँड़	–	बल्ली
धारना	–	बिम
कनडी	–	एक प्रकार का बिम
चाली	–	घर का एक हिस्सा
ढाबा	–	घर का एक हिस्सा
कोठा	–	छत
दिरखा	–	दिवाल में बनाया गया वस्तु रखने का स्थान
जलई	–	काँटी
छाइन	–	घर का ऊपरी भाग

व्यावहारिक वस्तुएँ एवं अन्य शब्द–

खाँची	–	टोकरी
टंकी	–	एक प्रकार की टोकरी
ढाकी	–	एक प्रकार का बक्स
डिमनी	–	धान रखने की बड़ी टोकरी
पेटी	–	बांस का बना बक्स
हाड़का	–	एक प्रकार का बक्स
डाला	–	डलिया
अढ़ऊसी	–	बांस की बनी एक प्रकार की टोकरी
सूप	–	सूप
कंकई / चिरून	–	कंघी
खेरेइ	–	खलिहान
ठेंगा	–	लाठी
पइना	–	पतली छड़ी
पंवार	–	पुवाल
आवड़ी	–	बिचाली
बिमनी	–	पंखा
हार	–	हल
फार	–	फाल
सगड़	–	गाड़ी

क्रियापद–

कुरमाली	–	हिन्दी
उठा	–	उठा
सँड़गा	–	सोना
गिजड़ा	–	हँसना
पिँधा	–	पहनना
बिगा	–	फेंकना
जता	–	जोतना

झला लागा	–	लू लगना
भँतड़ा	–	गर्मी से बेहोश होना
सँढ़ा	–	पीना
उलगा	–	वसन करना
अकाई	–	वमन करने की प्रव त्ति
अकता	–	धैर्यहीन होना
पड़ा	–	जल जाना
झला	–	झूलस जाना
उंफड़ा	–	उछलना
अबरो	–	मुंह के बल गिरना
छिनगा	–	अलग होना
अगरा	–	पहरा देना
जहना	–	ताकना
लिला	–	निगलना
धुंका	–	हवा लगाना (झलना)
घसड़ा	–	घसकना
बिड़ा	–	परीक्षा लेना
डाँड़ा	–	खड़ा होना
दुँदरा	–	डाँटना
सलगा	–	आग जलाना
बरका	–	उबलना
धिपा	–	गरम होना
फुचका	–	हाथ से गिरना

* * *

भारतीय आर्य भाषा और कुरमाली

कुरमाली एक अन्तर प्रान्तीय भाषा हैं। कुरमाली भाषा क्षेत्र एक ऐसे सन्धि स्थल पर अवस्थित है जिसके उत्तर में मगही बोली जाती है। उत्तर पूर्व में अंगिका, पश्चिम में नागपुरी तथा कुडुख, दक्षिण में हो, पूरब में बंगला बोली जाती है। उड़ीसा का कुरमाली भाषा क्षेत्र चारों ओर उड़िया से घिरा है। फलतः विद्वानों ने इसे कभी मगही की उपभाषा मानी है, तो कभी नागपुरी की उपभाषा। उच्चारण में बंगला का किंचित् प्रभाव के कारण बंगाली विद्वान् इसे अपभ्रंश बंगला के नाम से अभिहित करते हैं। दक्षिण में उड़िया भाषा से सम्पर्क के कारण उड़िया भाषा प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक है। इन भाषाओं से घिरे रहने के कारण सीमान्त कुरमाली में सीमान्त प्रदेश की भाषाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। निरन्तर सीमान्त प्रदेश की भाषाओं के साथ संघर्ष करने के बावजूद अभी भी कुरमाली अपने वैशिष्ट्य और अस्तित्त्व को बचाए हुए है। इसकी ध्वनिगत विशेषताएँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सुर, ताल, लय, विविध गीत इसके पार्थक्य के आधारभूत कारण हैं।

भारतीय आर्य भाषा का इतिहास तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है:–

वेद के रचना काल से गौतम बुद्ध के समय काल प्राचीन युग है, जिसके अन्तर्गत वैदिक भाषा, ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा तथा लौकिक संस्कृत है। भारतवर्ष की सबसे प्राचीन और परिमार्जित भाषा ऋग्वेद की थी। ईसा से एक हजार साल पहले यह भाषा पंजाब में प्रचलित थी। ईसा–पूर्व 1000 से 600 तक यह भाषा संयुक्त प्रदेश तथा बिहार में फैल गई। इसके पश्चात् पूर्व देश में भी आर्य भाषा की विकसित आरम्भ हुई और प्राकृत का उद्‌भव हुआ। कालान्तर में प्राच्य प्रान्त की भाषा सम्पूर्ण तथा प्राकृत रुप ग्रहण कर दो शाखाओं में विभक्त हो गई:– पश्चिमी प्राच्य और पूर्वी प्राच्य। पूर्वी प्राच्य का नामकरण हुआ मागधी प्राकृत, जो बहिरंग आर्य भाषा के प्रभाव से बदलते–बदलते नवीन युग की भोजपुरी, मगही, मैथिली, बंग्ला, असामी तथा ओड़िया में परिणत हो गई। ईसा के 600 वर्ष पहले से 1000 वर्ष ईस्वी तक के काल को हम मध्ययुग कह सकते हैं और 1000 ई. आज तक का काल नवीन युग के नाम से अभिहित हो सकता है।

ईसा पूर्व 1000 वर्ष पहले आर्य भाषा उत्तर भारत में बिहार तक अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गई थी। उत्तर भारत सम्भवतः अवैदिक आर्यों द्वारा अधिकृत था। इसके बाद वैदिक आर्य हुए। अनेक राज्यों के अधिवासी अनार्यगण थे। यही कारण है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में अनार्य प्रभाव परिलक्षित होता है।

आर्य भाषा ई. पूर्व 600 वर्ष पहले पूरब की ओर पौण्ड्र, राढ़, बंग, इत्यादि प्रान्तों में पहुँच चुकी थी। ई. 600 वर्ष पहले बंगाल आर्य सीमा के भीतर न था और न वहाँ के लोग आर्य भाषा–भाषी थे।

प्राचीन काल में संस्कृत का अध्ययन–अध्यापन गौरव का विषय माना जाता था। गम्भीर विषयों की अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत ही उपयुक्त मानी जाती थी। संस्कृत में भारत के अतीत और गौरवमय इतिहास सन्निहित थी। परन्तु, दैनिक सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्षेत्रीय भाषाओं का प्रचलन आवश्यक समझा जाने लगा। फलतः जन मानस में जनपदीय भाषाओं के प्रति अनुराग की भावना बढ़ने लगी और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ सरल और लोक–ग्राह्य प्रतीत हो रही थी। अपभ्रंश के उपयुक्त रुप स्थानीय विशेषता के साथ विकसित होने लगी। इसलिए क्षेत्र के अनुसार इनसे व्युत्पन्न आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में रुप विभिन्नता सर्वथा स्वाभाविक है। उस समय अनेक बोलियाँ एवं भाषाएँ जनसाधारण को दैनिक कार्य–कलापों एवं व्यवहारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी रही। चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं के मध्य अनेक नव्य भारतीय आर्य भाषाएँ प्रकाश में आ गईं। विद्वान् गहन छान–बीन और अनुससान के पश्चात् एक सर्वसम्मत निर्णय पहुँचे कि इस काल में अनेक बोलियाँ भाषाओं का रुप धारण कर चुकी थी और उनमें तीव्र गति से साहित्य का सृजन भी हो रहा था। यथा– पश्चिमी हिन्दी, पहाड़ी भाषाएँ, पूर्वी हिन्दी, मराठी, बंगला, असमी, उड़िया, बिहारी, इत्यादि।

बिहारी भाषा वर्ग की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है। बंगला, उड़िया, असमी भाषाएँ भी मागधी अपभ्रंश प्रसूत हैं। इसलिए बिहारी वर्ग की भाषाएँ– मगही, भोजपुरी, मैथिली के साथ इन भाषाओं का वंशगत सम्बन्ध है। मागधी प्राकृत से उत्पन्न बोलियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता हैः–

1. पूर्वी मागधी – जिसमें बंगला, असमी और उड़िया बनी है।
2. केन्द्रीय मागधी – मगही और मैथिली बनी है।
3. पश्चिमी मागधी – जिससे भोजपुरी और छोटानागपुर की बोलियाँ– कुरमाली, नागपुरी, पंचपरगनियाँ, खोरठा, आदि बनी हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं की भांति कुरमाली का जन्म भी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से हुआ माना जाना चाहिए। भारतीय आर्य भाषाओं का रुप वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, सूत्रों, साहित्य, व्याकरण, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश में पाया जाता है। चूँकि नवोदय काल में यह रुप अपभ्रंश में देखा गया, इसलिए आज कोई भी नव्य भारतीय आर्य भाषा अपभ्रंश को अपना पूर्व रुप मानती है और उसमें आदि रुप देखती है।

किसी भी भाषा का स्वरुप, विकास, ऐतिहासिक संबंध और वर्तमान जानने के लिए उसकी बनावट, व्याकरण, स्थान, काल और निवासियों के अध्ययन आवश्यक हैं। कुरमाली की प्राप्त सामग्री के आधार पर उसके स्वरुप, ध्वनि तत्त्व, रुप तत्त्व तथा सीमान्त बोलियों या भाषाओं के विविध अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुरमाली कई भाषाओं के मध्य में फलने–फूलने के कारण वह अपने को प्रत्येक सीमान्त प्रान्त की भाषाओं के सन्निकट पाती है। यही कारण है कि सीमान्त की भाषाएँ इसे आत्मसात् करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रही है। कुरमाली के उच्चारण में सीमान्त भाषाओं से संबंध होने के कारण कुछ प्रभाव पड़ा है जिसके कारण बंगला भाषा–भाषियों को बंगला, मैथिली भाषा–भाषियों को मैथिली, मगही भाषा–भाषियों को मगही और नागपुरी भाषा–भाषियों को नागपुरी की उपभाषा मालूम पड़ती है।

एक बात द्रष्टव्य है कि पारिवारिक दृष्टि से कुरमाली यद्यपि आर्य परिवारों की भाषाओं, विशेषकर संस्कृत से सम्बद्ध है। फिर भी चूँकि इसके चारों ओर आर्येतर परिवार की भाषाएँ हैं। अतः कुरमाली भाषिक रूपों पर इन आर्येतर भाषाई परिवारों का भी प्रचुर प्रभाव पड़ा है। जिससे इस भाषा की शब्द सम्पदा, वाक्–शैली और उक्ति प्रक्रिया पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है।

संस्कृत का "शालूक" कुरमाली में उसी अर्थ में ग्रहण किया गया है जिस अर्थ में संस्कृत में। इसी प्रकार कुटुम, मान, गढ़, माछी, सगड़, बाकला, दालिदर, चुँबा, पात, हेंसली, फारसा, निकास, लिलाम, सच, इत्यादि अनेक शब्द संस्कृत से उद्‌भूत हैं।

पाणिनी के व्याकरण में दुबारा जोतने को 'शम्बा करोति' कहते हैं। कुरमाली में इसे 'समभड़ा' करना कहते हैं जो मूलतः 'शम्बा करोति' से व्युत्पन्न हुआ है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि कुरमाली भाषा पर आर्येतर परिवार की भाषाओं का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। शब्द भंडार में आस्ट्रिक एवं द्रविड़ भाषाओं के बहुल शब्द हैं। आग्नेय परिवार की भाषा मुन्डारी के क्रिया पद भी कुरमाली

व्यवहृत होते हैं। इस प्रकार द्रविड़ परिवार की भाषा कुडुख के शब्दों के अतिरिक्त क्रिया–पद भी कुरमाली में आत्मसात् हो गए हैं। वस्तुतः कुरमाली में अरबी, फारसी, मराठी, उड़िया, बंगला आदि भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। यही कारण है कि ग्रियर्सन इस भाषा को विचित्र भूभाग में विचित्र व्यक्तियों की भाषा कहा हैं।

मगही, मैथिली, भोजपुरी की तरह कुरमाली भी प्राकृत अपभ्रंश प्रसूत है और एक सम्पन्न भाषा हैं। डा. जार्ज ग्रियर्सन से लेकर डा. विश्वनाथ प्रसाद तक के मूर्द्धण्य भाषाशास्त्रियों ने कुरमाली भाषा की महत्ता और व्यापकता को एक स्वर स्वीकारा है।

कुरमाली भाषा का प्रथम निदर्शन बौद्ध सिद्धों के चर्चा पदों में मिलता है। परन्तु, इसका प्रथम साहित्यिक रूप बड़ू चण्डी दास के 'कृष्ण–कीर्तन' काव्य में मिलता है जो 18वीं शताब्दी में रचा गया है। राय बहादुर शरत चन्द्र राय द्वारा संग्रहीत 'जगतरानी रामायण' कुरमाली भाषा की अनुपम कृति है। इसके अतिरिक्त कुरमाली भाषा के अध्ययन की प्राचीन सामग्रियाँ हैं:–

1. वेद, ब्राहमण ग्रन्थ, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ।
2. बौद्धों के पालि त्रिपिटिक
3. ईसा की पहली शताब्दी के बौद्ध नाटक
4. संस्कृत नाटकों में मृच्छकटिम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम्
5. प्राकृत व्याकरण
6. पूर्वी क्षेत्रों में पाये जाने वाले प्राचीन शिलालेख
7. मानभूम, सिंहभूम, हजारीबाग, राँची में उपलब्ध शिला लिपि, ताम्रपट, अभिलेख, जमीन के पर्चे, आदि।

उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे पहली सर जार्ज ग्रियर्सन का "भारत का भाषा सर्वेक्षण" का नाम लिया जा सकता है। उन्होंने सर्वप्रथम 1903 ई. में कुरमाली को स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थापित किया और व्याकरणिक विशेषताओं पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला। इसके पश्चात् श्री देवकी नन्दन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'ना धरे आँखि जल आँखि पाते' जो मूलतः कुरमाली गीत संग्रह है, में कुरमाली और बंगला के व्याकरण का व्याकरणीक स्तर पर विभेदक रेखा खींची। डा. नन्द किशोर सिंह ने "कुरमाली बोली: एक भाषा तात्विक अध्ययन" नामक

अपने शोध--प्रबंध में कुरमाली भाषा के व्याकरण का विस्तृत विश्लेषण किया है। डा. विश्वनाथ प्रसाद और डा. सुधाकर झा 'शास्त्री' ने (1958)– Linguistic Survey of the Sadar Subdivision of Manbhum and Dhalbhum में कुरमाली भाषा के भाषिक संरचना पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है। श्री खुदीराम महतो द्वारा लिखित कुरमाली भाषा तत्त्व जो 1973 ई. में प्रकाशित हुई, में कुरमाली और बंगला के भाषिक गठन पर विवेचना प्रस्तुत की है। सभी लोग इसे भारतीय आर्य परिवार के अन्तर्गत परिगणित करते हैं; परन्तु, सुखद आश्चर्य की बात है कि कुछ अध्येता इसे द्रविड़ भाषा परिवार के अन्तर्गत रखते हैं तो कुछ आग्नेय भाषा परिवार के अन्तर्गत।

नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में पर्याप्त साम्य–वैषम्य है। अतः इन्हीं आधारों पर विद्वानों ने इन भाषाओं को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है:– 1. अन्तरंग और 2. बहिरंग। कुरमाली पूर्वी भाषा समुदाय में आती है। इसका उद्‌गम अर्द्ध मागधी प्राकृत से विकसित अपभ्रंश माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया भी हैं। कुरमाली में बिहारी भाषा की भाँति– 'ल' के स्थान पर 'र' मिलता है। जैसेः– फल झ फर, हल झ हार शब्द के आदि में प्रायः 'य' तथा 'व' का अभाव पाया जाता है। 'अइ' और 'अउ' का प्रयोग भी मिलता है। 'ल' प्रत्यय भूतकाल के साथ–साथ वर्तमान काल का भी द्योतन कराता है। क्रियार्थक संज्ञा में 'ल' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। भविष्यत काल में 'अब' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। मूर्द्धण्य के 'ण' के स्थान पर दन्त्य 'न' का उच्चारण किया जाता है।

बंगला की भाँति कुरमाली में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए शब्दान्त में 'रा' प्रत्यय जोड़ा जाता है। बंगला के गुली या गुलो को प्रकारान्त से कुरमाली में गिला–गिंली, गिलिन प्रत्यय को बहुवचन बनाने के लिए अपनाया है। अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की भाँति कुरमाली में भी 'ज्ञ' के स्थान पर 'ग्य' मिलता है। 'क्ष' के लिए 'छ' और 'ख' दोनों का प्रयोग किया जाता है।

कुरमाली में वर्णों और ध्वनियों में परम्परागत परिवर्तन लक्षित होता है। इसमें स्वर और व्यंजन हिन्दी के समान है किन्तु व्यवहार में कितने ही वर्ण नहीं आते हैं। स्वर के ऋ और ल का व्यवहार नहीं होता है। वर्ग के पंचम वर्ण का स्थान अनुस्वार ने ले लिया है। 'म' निरानुनासिक रूप प्रचलित है। 'ष' की जगह कभी–कभी 'ख' भी होता है। 'न' की जगह 'ल' का प्रयोग होता है। जैसे:– ऋण > रिन, लक्ष्मी > लखी, नील > लील, निर्लज > लिलज।

अघोष ध्वनि घोष हो जाती है और घोष ध्वनि का अघोषीकरण हो जाता है। जैसेः–

अघोष का घोष – कंकण > कांकन

घोष का अघोष – मदद > मदत

पार्थिक ध्वनि का लुंठित ध्वनि में परिवर्त्तन होता है। यथा– हल झ हार, काजल > काजर, जलावन > जरावेक। कुरमाली संज्ञा के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों ही रूप मिलते हैं। जैसेः–

छवाटा गेल रहे
छवाटी गेल रही।

लिंग

कुरमाली की लिंग व्यवस्था हिन्दी की तरह जटिल नहीं है। टा, टी लगाकर स्त्रीलिंग से पुल्लिंग बनाये जाते हैं। जैसेः– गोरूटी चरेइस। गोरूटा चरेइस।

कभी–कभी सर्वनाम पदों का भी लिंग ज्ञान क्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है। जैसेः– उ गेली। उ गेलाक।

क्रियाओं में भी लिंग के कारण अन्तर होता है। जैसेः– राम आवताक। सीता आवती।

वचन

कुरमाली में दो वचन है। 'रा' गिला, गुला, गिलिन, सभ संयुक्त करके बहुवचन रूप सिद्ध होते हैं।

कारक

कुरमाली में कर्मकारक में 'के' सम्प्रदान में 'लाइ, लागिन, खातिर, हाँतिर, तेहें, सम्बन्ध कारक में 'क' केर, कर, अधिकरण कारक में 'ए' ऊपर, माहान का प्रयोग होता है।

सर्वनाम

मोंय, हामरा, तोंय, तके, तरा, अरा, अखरा / अखर इ, उ, जे, से है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि हिन्दी भारतीय भाषाओं में जहाँ वस्तुतः अन्य पुरुष सर्वनाम के रूप में केवल दूरवर्ती संकेत सूचक के ही रूप है। अलग से

उनका पृथक अस्तित्त्व नहीं रह गया है। अलग से उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व है। कुरमाली संकेत सूचक सर्वनामी तीन हैं:– इ, उ, हाउ। कुरमाली में शब्द 'निज' का प्रयोग 'निजे' रूप निजवाचक सर्वनाम में होता है। इसके लिए 'आपन' शब्द का प्रयोग भी होता है। इसी प्रकार हिन्दी निजवाचक 'आप' के अति निकट कुरमाली निजवाचक सर्वनाम रूप हैं, जिन्हें संस्कृत आत्मनः से निष्पन्न हुआ समझना चाहिए। प्रश्नवाचक सर्वनाम में किना, कने, का प्रयोग होता है जबकि अनिश्चयवाचक में केवे, कोनो, प्रयुक्त होते हैं।

कुरमाली में उच्चारण की विशेषताएँ

कुरमाली में 'अकार' की आकार की प्रवणता जैसे:– घर > घार, कन्धा > काँध, पत्थर > पाथर, आदि। कहीं–कहीं 'अ' का उच्चारण बंगला और भोजपुरी की तरह विवृत होता है। जैसे:– जमा > जोंमा, चमक > चोमोक। कुरमाली में संयुक्त अक्षर प्रायः नहीं होते हैं। जैसे:– अच्छा > आछा, ज्ञान > गेयान, कुरमाली का 'एक' अनिश्चितता का बोध कराता है। जैसे:– थोड़ेक, रिचिक। गणनात्मक संख्याओं के उच्चारण में ग्यारह से अठारह तक संख्याओं में 'ह' का उच्चारण नहीं होता है। जैसे:– एगारो, बारो, तेरो, कुड़ी। कुरमाली में कुछ प्राणी वाचक संज्ञाएँ हैं जो नर और मादा दोनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। परन्तु, लिंग निर्णय करते समय टा, टी, प्रत्यय जोड़कर स्त्रीलिंग–पुल्लिंग का विभेद करते हैं।

कुरमाली के निषेधात्मक क्रियारुप न, ना, नि, नेंहि, निहिं हैं। अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की भांति कुरमाली में भी कर्त्ता के अनुसार क्रिया होती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय आर्य भाषाओं में स्थान और काल भेद होने पर भी समानता के अनेक तत्त्व हैं जो परस्पर के संबंध को ठीक से न समझने के कारण बहुत दूर और अपने से अजनबी लगते हैं। यदि भारतीय भाषाओं को निकट से देखा–परखा जाए तो इनकी निकटता महसूस होती है और हमें भाषा के एकात्मक स्वरुप दिग्दर्शित होते हैं। उच्चारण को लेकर हम भाषा को किसी क्षेत्र विशेष की भाषा नहीं ठहरा सकते क्योंकि हर भाषा–भाषी का अपना उच्चारण हुआ करता है और जो जिस भाषा का विद्वान् है, उस भाषा के अनुकूल व्याकरण करेगा ही।

***

कुरमाली साहित्य की प्रवृत्तियाँ

कुरमाली भाषा साहित्य का सामान्य परिचय

कुरमाली भाषा का नामकरण कुरमी जाति के नाम पर हुआ है। ''कुर्म'' शब्द में ''आली'' प्रत्यय जोड़कर कुरमाली शब्द बना है। कुरमाली बंगला, ओड़िया और असमिया की भाँति मागधी–प्रसूत है एवं बिहारी वर्ग (मैथिली, भोजपुरी, मगही) की भाषाओं से उसका पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है। इनमें अनेक समानताओं के बावजूद कुरमाली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं जो अन्य मागधी–प्रसूत भाषाओं– मैथिली, भोजपुरी, मगही, नागपुरी, खोरठा और पंचपरगनिया से पृथक करती है। कुरमाली भाषा की उत्पत्ति कब हुई, इसे सीमा रेखा में आबद्ध करना कठिन है। लेकिन इतना निश्चित है कि इसके विकास या रूप विध ाान में कुरमियों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और समय के अन्तराल में अन्य जातियों ने इसे अपनाया है। कुरमाली की ध्वनिगत विशेषताएँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सुर, ताल, लय, विविधगीत इसके पार्थक्य के आधारभूत कारण हैं। इसमें लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों और पहेलियों की संख्या बहुल है। लोक–साहित्य में गीतों के बाद लोककथाओं, पहेलियों और लोकोक्तियों का स्थान है। इन लोकगीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों पर कुरमाली जीवन की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन विधाओं की विविध रचनाओं से कुरमाली साहित्य जितना समृद्ध है, भाव–सौन्दर्य की दृष्टि से भी उतना ही उत्कृष्ट।

कुरमाली एक अन्तरप्रान्तीय भाषा है। इसका विस्तार क्षेत्र 'सिख सिखर नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर' से ज्ञात होता है। कुरमाली का क्षेत्र राजनीतिक मानचित्र द्वारा परिसीमित नहीं किया जा सकता है। यह केवल छोटानागपुर में ही नहीं, बल्कि उड़ीसा के क्योंझर, बोनई, बामड़ा, मयूरभंज, सुन्दरगढ़, पश्चिम बंगाल के अंतर्गत झाड़ग्राम, पश्चिम बांकुड़ा, वीरभूम, मानभूम (पुरुलिया) एवं छोटानागपुर के राँची, हजारीबाग, गिरिडीह, धनबाद, सिंहभूम एवं संथाल परगना में भी बोली जाती है। यह भाषा सिर्फ कुरमियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अन्य जातियों ने भी इसे अपनाया है और यह भाषा लगभग 60 लाख से अधिक लोगों के भाव–विचार विनिमय का साधन बन गई है। कुरमाली साहित्य परिमाण में वृहद् होने के साथ–साथ काव्यगत विविधताओं में भी समृद्ध है। इसके गद्य–रूपों में लोककथा, कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा पहेलियाँ हैं। काव्य–रूप में लोकगीत हैं। लोकगीतों के भी

विविध रूप हैं जो मौसम के अनुसार गाये जाते हैं। इनमें जीवन की शुद्धता, वास्तविकता, मार्मिकता एवं जन–जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियाँ प्रकट होती हैं। इन लोकगीतों में कुरमाली संस्कृति, रीति–रिवाज, विचारधारा, चिन्तन–पद्धति, कृषक–जीवन, धर्म–विश्वास, आनन्द–वेदना एवं दार्शनिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं।

आज कुरमाली लोकसाहित्य की स्थिति को अध्ययन की दृष्टि से संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। अभी तक लोकगीतों का अपेक्षित सर्वेक्षण नहीं हो पाया है। लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों, पहेलियों के गहन अध्ययन, संकलन– संपादन की आवश्यकता है। इसके भाषा शास्त्रीय और वैज्ञानिक अध्ययन की अपेक्षा है। यही स्थिति शिष्ट–साहित्य की भी है। कुरमाली शिष्ट साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, संस्मरण, आदि लिखे गये हैं, परन्तु, अर्थाभाव के कारण पाण्डुलिपियाँ लेखकों की झोली में पड़ी हुई हैं। इनके प्रकाशन की अपेक्षा है। जब तक सरकारी अनुदान नहीं मिलता, तब तक निकट भविष्य में इनके प्रकाशित होने की आशा नहीं की जा सकती।

कुरमाली लोकसाहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ– यह सर्वविदित है कि समाज की मान्यताओं के साथ–साथ विचारधाराएँ भी बदलती हैं। कुरमाली साहित्य में भी यह तथ्य घटित हुआ है। कुरमाली साहित्य में काल क्रमानुसार प्रवृत्तियाँ बदलती गई हैं। प्रारम्भिक काल में कुरमाली केवल कुरमियों की भाषा रही है और इस पर अन्य भगिनी भाषाओं का प्रभाव नहीं पड़ा। यह बात कुरमाली के मुहावरों, लोकोक्तियों, पहेलियों, करमगीत, बांदना गीत, उधवा, डाँइड़धरा, कुँवारी झुपान, बिहा, सरहूल, एढ़ेइआ, ढप, इत्यादि गीतों में देखी जा सकती है। तत्कालीन युग के गीतों के रचयिता अज्ञात है। उनकी आँखों के सामने जो वस्तुएँ आयीं, उन्हें सरल शब्दों में बाँधा। उस समय के लोकगीतों में कृषक–जीवन की झाँकी मिलती है। कुरमाली के करमगीतों में–

"इति–इति जावा, किया–किया जावा
जागलो माइ, जागलो माइ धाना बहुरा।"

--में अंकुरोदय का वर्णन मिलता है तथा इसमें कृषि कर्म का निर्देश भी मिलता है।

"बनऽ जे गेले देवरा, दुइयो भाइ मिली रे
दुइयो भाइ गेले देवरा, एका घुरी आवऽले।

ओ रे, काहाँ राखले पीठे केरा भाइ।
मरऽ जे भाइ–भउजि बड़ऽ रिझुआड़
ओरे, बिजुबने खेलऽह झुमेइर।
केथिइं भींजल देवरा, हेरेइद रांगल धोतिया
केथिइं भींजलऊ तलवाइर?
काके मारऽले देवरा, काके पिटऽले?
सिसिरे भिंजली भउजि, हेरेइद रांगल धोतिया।
ओरे, रकते भिंजली तलवाइर।
काके करले सिसु राँढ़?
काकोऊ नि मारेन भउजि, काकोऊ नि पिटेन
भाइ मारी भउजि, सिसुराढ़।
भालऽ करले देवरा, भइया काटले
लेहु देवरा भउजि आपाभार।
खाइयो जे देबों भउजि, लुगवा जे देबों

आरो देबों जे सिंथे का सिन्दुर।'' में शिकारी जीवन का चित्र है। इसी गीत की अगली पंक्तियों में 'लेहु देवरा भउजि भापाभार' में कुरमाली संस्कृति के पुनर्विवाह (साँघा) के प्रचलन का उल्लेख है।

प्रस्तुत गीत में नायिका अपने माता–पिता एवं भाई को दूर देश में विवाह देने के लिए कोसती है:

'डाली टाकाक लभे बाबा,
बेटी बिदाइ देला दुरन देसे
सारा धतिक लभे बिहा देला।
बाबा बाबा कहली, बाबा नेही सुनेला
डाली टाकाक लभे बाबा,
बेटी बिदाइ देला दुरन देसे।
बापे पेछु पसताइ, दुरन देसे।
नेहि–नेहि कहलाइ दुरन देसे

साड़ी–गाँवाड़ी लभे माइ,

बेटी विदाइ देला दुरन देसे।

माये पेछु पसताइ दुरन देसे।

भाइ भाइ कहले भाइए नेहि सुने

सारा धोतिक लभे भाइए बिहा देला दुरन देसै

भाइए पेछु पसताइ दुरन देसे।

इसी प्रकार एक अन्य गीत में पिता को कन्या कोसती है कि उसने किस प्रकार वर का चयन किया। निश्चय ही इस गीत में कुरमाली में प्रचलित 'वर देखा' रिवाज का उल्लेख है:

बाबा मरऽ बरऽ देखे गेले रहे
बाबा मर गेले रहे वर देखे
मदे मासे माति गेला।
केसन बाबा वर आहे गो
बेटी मोयं त चुआन मदे माति गेलों
तर सरीख वर नेखे गो।
घार देखे गेले बाबा, वर देखी आवले
अति सुन्दरा वरा गेला गाछ काटे रे।

ननद–भावज के हँसी–मजाक से कौन परिचित नहीं है? निम्न गीत में ननद भउजि को उपालम्भ देती है:

पुरूबे का लढ़ी–पाटी, पछिमे का सिलोटिया

पिसइते–घँसइते हो परभु, साले लागल बांहिया।

बाबा हजुर मांगु गे धनी, गटा चारी कामिनी

मर बाबा हेके हो परभु, जनमे का कांगाल।

काहाँ पाये देतोउ हो परभु, गटा चारी कामिनी। में क्रमशः 'वधू–मूल्य' एवं 'वर–देखा' करने की प्रथा का वर्णन है।

करम पर्व में गाये जाने वाले इस गीत में प्रकृति का कितना सुन्दर वर्णन हुआ है:

छटऽ मटऽ दुरूपात, फूले लदबइद गो

बेटी चललाइं, ससुर घार गो।

आजु का राइत बेटी, रहि–बसि लिहा गो।
लइये देबों पंयरी, एसन संदेस गो।

एक अन्य गीत में–

काहाँही फुटये लाल करऽबरी रे
काहाँ ही फुटऽये कुमकुम बिहारी
हिआँ–हुआँ फुटऽए लाल करबरी
गंगा धारे फुटऽए कुमकुम बिहारी।

इसी प्रकार 'करम' के इन गीतों में भी प्रकृति की छटा का वर्णन है:

आंवरा रे आंवरा डगिया,
डाले छाड़ी पाते फर धरे।
डाले छाड़ी पाते फर धरे।

एक अन्य गीत में–

काहाँहि काँदऽए लरऽ–लरऽ बांस
अरे, काहाँहि काँदे, काहाँहि कांदे रे बहिन
बने–झाड़े कांदऽए, लरऽ–लरऽ बांस
अरे, ससुर घारे, ससुर घारे कांदे रे बहिन।

एक अन्य गीत में–

बांस झाड़े उठल, लहऽलहऽ बांस गो।
ससुर घारे रहली बहिनी हामर,
केथिइं करि आनबों, लहऽलहऽ बांस गो
केथिइं करि आनबों बहिनी हामर।
सगड़े–बरदे आनवों, लहऽलहऽ बांस गो
पीठे करि आनबों रे बहिनी हामर।
छांछा तरे राखबों, लहऽलहऽ बांस गो
माझ घारे राखबों, बहिन हामर,
किया–किया खावाअबों लहऽलहऽ बांस गो
किया–किया खावाअबों बहिनी हामर।

छांछाक पानी खावाअबों लहऽलहऽ बांस गो
दूध दही खावाअबों बहिनी हामर।

कुरमाली के विवाह गीतों में भी प्रकृति–चित्रण कितना मुखर हो उठा है:

कनऽ आमा हरिहर, कनऽ आमा पियर
कनऽ आमा सिन्दूर बरन।
सेहो आमा बिछे गेला, केनियाइ कुंवर
राजा बेटाइं धरल आंचर गो।

एक अन्य गीत में–

कति खने फूटये, हरदी हो झींगा फूल
कति खने फूटये, लाल सालुक फूल।
बेरा डुबाइं फूटये, हरदी हो झींगा फूल।
भिनसारे फूटये, लाल सालुक फूल।
कइसन करये, हरदी हो झींगा फूल
कइसन करये, लाल सालुक फूल
लहलह करये, हरदी हो झींगा फूल
महमह करये, लाल सालुक फूल।

कुरमाली के भादरिया गीतों में प्रकृति की छटा का वर्णन देखते ही बनता है:

काकरऽ आनगाइं गाछ दारून रे?
साम लता काकरऽ आनगाइं चाँपा डाइर जे।
भउजी करऽ आनगाइं, गाछ दारून जे
सामलता ननदी आनगाइं चापां डाइर जे।
कइसन करए गाछ दारूजे?
सामलता कइसन करए चाँपा डाइर जे।
लहलह करए, गाछ दारून जे
सामलता महमह करए चांपा डाइर जे।

एक अन्य गीत में देखिए—

काहाँ पावले धनी, मेघ डुमेइर छाता रे,
चांदमनी काहाँ पावले, बउरा फूल जे?
डाढ़ी घाटे पावलों, मेघ डुमेइर छाता रे
चाँदमनी बउरा तरे, पावलों बउरा फूल जे।
कइसन करए, मेघ डुमेइर छाता रे
चांदमनी मनी कइसन करए बउरा फूल जे?
लहलह करए, मेघ डुमेइर छाता रे
चांदमनी महमह करए, बउरा फूल जे।

— आदि गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन है।

आइज तऽरे करम राजा घारे दुवाइरे
काइल तऽरे करम राजा काँस नदिक धारे।

में कुरमियों के प्रारम्भिक वास—स्थान का पता चलता है।

बाबा बाबा कहली, बाबा नेही सुनेला
डाली टाकाक लभे बाबा,
बेटी विदाइ देला दुरन देसे।
बापू गो मर निरबुधिया,
देसे छाड़ी विदेसे बिहा देला।
बापे पेछू पसताइ दुरन देसे,
नाही—नाही कहलाइ दुरन देसे
साड़ी—गाँवाड़ी लभे माइ,
बेटी विदाइ देला दुरन देसे
माये पेछू पसताइ दुरन देसे,
भाइ—भाइ कहले भाए नेही सुने
सारा धोतिक लभे भाए बिहा देला दुरन देसे

भाए पेछु पसताइ दुरन देसे। —गीत में बेटी को दूर में विवाह देने के लिए पिता को उलाहना है।

प्रस्तुत गीत में ननद–भउजि के हास–परिहास का वर्णन देखिये:

बांका रे बांका कुरथी
भुंजे बसल छटकी ननद
भूंजइते–भूंजइते ननद पड़ी गेल
लाजहुना गेला ससुर घारा।

एक अन्य गीत में–

आवल सुन्दर वर, बसल पीपर तर।
बिनी–बिछी खाय पीपर
कहु गो बरा बापे केरा नाम गो

तबे लागबे दुआइर गो। –में हास–परिहास का पुट मिलता है।

आपन करम, भायेक धरम –में भाई बहन के असीम प्यार का वर्णन है।

मने जदि करिस भाइ,
पीठे के बहिनि हो,
परब पिछु आनंबे घुराय।

एक अन्य गीत में–

परबेका लहऽलहऽ, भइया लेगे आवल
कहु सासु हामरी विदाइ
हामे कइसे करबों बहू, तहरी बिदाइ गो
पूछि लेही आपन ससुर गो।
परबे का लहऽलहऽ, भइया लेगे आवल
कहु ससुर हामरी बिदाइ गो।
हामे कइसे जानबों बहू तहरी बिदाइ गो
पूछि लेही आपन सैंया गो।
परबे का लहऽलहऽ भइया लेगे आवल

कहु सैंया हामरी बिदाइ गो। –गीतों में कुरमाली संस्कृति में बहन को प्रत्येक त्योहार में लाने के रिवाज की चर्चा है।

लड़की को कुरमी समाज में उच्च स्थान प्राप्त है। प्रस्तुत गीत इस बात की पुष्टि करता है–

बाबा बनऽ माझे फूटलऽ धधकी फूला
हाय रे बना शोभी गेला रे,
बाबा घारा माझे बेटी जनम लेला
हाय रे, घारा शोभी गेला रे
बाबा बावे–बातासे फूला झाड़ी गेला
हाय रे बना शून्य भेला रे
बाबा डेड़िया फाँदाएँ बेटी चली गेला
हाय रे घारा शून्य भेला रे।

एक अन्य गीत में देखिए–

जेहो दिने पूता रे जनम लेला
सेहो दिने रे सोना केरा राइत
मेघऽ आंधार राति, पथें कादा पानी
सोचहुना पारलों रे पूता आंवरी गोइंठा
जीरा जवानी केरा भरसी भरि, बड़ दुखे रे पुता
खेपल रे राइत
गुमरी–गुमरी रे पूता, उठये रे बास।
सबरनाखाक घारे रे पूता तरा सिनान

तहरी नाइर काटाय रे पूता –से Ethnomédicine की जानकारी का पता चलता है।

कुरमाली के बाँदना गीतों में क भाक–जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। मवेशी उनके जीवन के हमजोली है। यही कारण है कि छोटानागपुर के क भाकों का मुख्य त्योहार बाँदना (सोहराई) है। सोहराई गीतों में क भाकों की जीवन–पद्धति, रहन–सहन, रीति–रिवाज सामाजिक–व्यवहार और दैनिक–कर्म का पता चलता है। इसके अतिरिक्त–

एके टेंगे केरा हरिना रे
एके–टेंगे चढ़लऽ पाहाड़।

कांड़—करऽवा खाये नाभल हो

पानी पियासे मरि जाइ। —टांगा

एक अन्य गीत में—

आगु जे जनम लेल बाबुआ हो।

ताकर पेछुइं बाबुआक बाप।

माइ कुवांरी बेटी गाभिन,

नातिन केरा आवे बरिआत।

एक अन्य गीत में—

एकऽ दिन गेले रहों गरखी हो,

हे हों राम सियारे चारावे धेनुगाय।

दूँ—दूँ दूहत, पेचा गावत,

आर गिरगिट दना ले ले जाय। —आदि बुझौवल गीत है।

''कुँवारी झुपान'' गीतों में जादू—टोना, तंत्र—मंत्र का उल्लेख मिलता है।

आउ रे देउता, आउ रे माइ कर पास

जेहे लेबे सेहे देबों, कुँवारी दे भराइ

भेड़ा लेबे भेड़ा देबों, पांठा लेबे पांठा देबों —में सन्तानोत्पत्ति की कामना की जाती है।

उधवा लोकगीतों के—

तोहें जे जाबे पिया हो, अनिजऽ बनिजऽ हो

हामहूँ जाइबों तरे संग,

दुखे—विपते पिया हो, पानिया सुसारब

आरऽ देबों आंचरऽ बिदाइ —में पति—पत्नी के सुख—दुख में साथ रहने का वर्णन है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कुरमाली लोकगीतों में प्रकृति—चित्रण, इतिहास, रीति—रिवाज ,जीवन—यापन की पद्धति तंत्र—मंत्र जादू—टोना, सामाजिक संबंध, भाई—बहन का पवित्र संबंध, पति—पत्नी के प्रेम आदि का चित्रण ही मुख्य विषय रहा है।

काव्यरूप

कुरमाली के प्रारम्भिक काल में गीत संरचना का कोई बंधन नहीं था। अपने मनोभावों का अभिव्यंजन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य रहा है। कहीं मुक्तक पद्धति में भावाभिव्यक्ति हुई है, तो कहीं लंबे–लंबे गीतों के माध्यम से। जिन वस्तुओं से लोगों का संबंध रहा है, लयात्मक शब्दों द्वारा उनका वर्णन किया गया है। प्रवृत्ति के साथ–साथ काव्यरूप (शैली) में परिवर्तन होता गया है। लोकगीतों में लय के द्वारा ही शैलीगत तत्त्व को पृथक किया जा सकता है। कुरमाली लोकसाहित्य में अलंकारों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। उसमें स्वतः कहीं–कहीं पर उपमा अलंकारों का समावेश हुआ है। रस ही लोकगीतों की आत्मा है। कुरमाली के अपने छन्द हैं, जो गेय हैं।

कुरमाली लोकगीतों में भक्ति–भावना का अभाव पाया जाता है। अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर के रूप में है।

प्रायः देखा जाता है कि किसी काल में गद्य–साहित्य और पद्य साहित्य, दोनों में समान प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। गीतकार या लोककथाकार का उद्देश्य विभिन्न विधाओं द्वारा भावाभिव्यक्ति करना होता है। कुरमाली के "सात भाई एक बहिन" लोककथा में पुनर्जन्म पर विश्वास व्यक्त किया गया है। "सबरनाखा नेदिक जनम" कथा में सुवर्णरेखा की उत्पत्ति एवं उसके भोगौलिक, आर्थिक और सांस्क तिक महत्व को दर्शाया गया है। "लक्ष्मी के पलायन" में अन्न की नियमितता और सदुपयोगिता की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। "करमा– धरमा" लोककथा में करमा और धरमा क्रमशः कर्म और भाग्य के प्रतीक है। इसमें भाग्य के ऊपर कर्म की विजय दर्शायी गई है। पहाड़, नदी, वृक्ष आदि को देवता माना गया है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि प्रकृति के अनेक उपादानों को भी देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

कुरमाली के मध्य युग (सन् 1750–1850) से शिष्ट साहित्य का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि सन् 1485 ई. के आस–पास चैतन्य महाप्रभु का पदार्पण झारखण्ड प्रदेश में हुआ था। उन्हीं के द्वारा लोगों में वैष्णव–भावना का प्रचार–प्रसार हुआ था। तत्कालीन कवियों ने रामायण और महाभारत से कथावस्तु लेकर गीतों की रचनाएँ कीं। राम–कृष्ण को अपना नायक मानकर उनकी लीलाओं को ललित पदों में रचकर गीतों का रूप दिया। इनके वर्ण्य–विषय की तुलना किसी भी हिन्दी के भक्तिकालीन कवि से की जा सकती है। अधिकांश कवि वैष्णव

मतालम्बी थे। राधा–कृष्ण को इन्होंने अपने गीतों में अधिक प्रश्रय दिया है और उनकी लीलाओं को अपना वर्ण्य–विषय बनाया है।

मध्यकाल के कुरमाली लोक कवियों में बरजू राम, नरोत्तमा, गौरांगिया, दुर्योधन, पीताम्बर, दीना, रामकृष्ण, बिनन्द सिंह आदि प्रमुख हैं। प्रवृत्ति की दृष्टि से भवप्रीता की गणना भी मध्यकाल में की जा सकती है। (भक्ति काल) मध्यकाल के कवियों ने गुरू को ईश्वर के समकक्ष माना है। एक ओर–

श्री गुरू गोविन्द पदे, करिया उद्देस
बन्दी माता गौरी गनेस दयाकर शारदा शेष
तुमी आदि तुमी अन्त, तुमी नाग शेष
धरनी धरिते ना कलेश, दयाकर शारदा शेष
कल्पतरू कमल नयन ऋषिकेश
अज्ञानेरी ज्ञान उपदेश, दयाकर शारदा शेष
निराकार निरंजन सागर परेश
रवि शशि तुमी हे महेश
दयाकर शारदा शेष
हिया माझे अइसे बस, नवीन बयस
बिन्दियार गुचाव अन्धेश
दयाकर शारदा शेष। –में भक्ति का पुट मिलता है।

तो दूसरी ओर बरजू राम के–

भुसा कुटइते नर, बिसरलांइ हरिहर
अन्तकाले पंथ भूली गेल
नर जनम विधि काहे देल।
माता–पिता दूरे गेल, दासी पियारी भेल
गुरू से कपट चित्त भेल
नर जनम विधि काहे देल।
बाघ–बाधिनी संगे, सांपिनी डंसल अंगे
विषे संसार घेरी लेल
नर जनम विधि काहे देल।

कहे बरजू राम दास श्रीगुरूचरणे आस
हेला से नौका डुबी गेल
नर जनम विधि काटे देल। —में दार्शनिक भाव झलकता है।

बिनन्द सिंह के गीतों में—

जमुना किनारे वन, ताहां गिरि गोबरधन
रामकान्हु मेसी दुयोजने, धेनु चारावत वृन्दावने।
आम जाम तरूछाया, बेसक शीतल काया
लुहू—लुहू बहे पवने, धेनु चारावत वृन्दावने।
धेनु रने बने चरे, निरझर कानने झरे
देखेक सुन्दर सेहुठामे धेनु चारावत वृन्दावने।
गोप गोपाल साथ, बिहरत प्राण नाथ
विनन्देक सदा आस मने, धेनु चारावत वृन्दावने।

एवं

संगे गोपाल लाल, बिहरत नन्दलाल
सेइ देखी मन मोहाइला
कन बने धेनु चराइला।
बने—बने नानाफूले, शिशु गण तुली भूले
सेइ रसे भूली रहाइला,
देखब सखी कन बने धेनु चराइला।
पाले—पाले चरे धेनु, तरू मूले बइसे कान्हू
वन फूल गांथी पिंघइला
देखब सखी———————।
गेरूधातु रांगामाटी, तिलकेरि परिपाटी
भालऽ भलऽ साज कराइला
देखब सखी——————
रीझे रंगे माती गेल, दिन अवसान भेल
विनन्द सिंह कहाइला

एक अन्य गीत में–

बूंद सेंवाती बिनु, जेसन चातकी तनु
नागर मनीहारा, जेसन नागिन गे।
दादुरा–दादुरी गावे, नदिया उमड़ी आवे
नागर खने–खने चमके दामिनी जे।
प्रथम पिरीती काले आइने चन्द्र हाथे दिले
नागर, एखन मरे बासऽ काहे पर जे।
धन जौवन गेली, ताव अन्त ना पावली
नागर विनन्दिया दहे कलेवर जे।
एक अन्य गीत में–
फूटली मालती फूल चाँपा जूही किया रे
आवल भादर मास; घरे नाइ मोर पिया रे।
काकर साथे हाम पूजोबों जितिया रे
गीते नाचे खेली, बिताऽब रातिया रे।
पिया मुख मने करि, फाटत छातिया रे
काके कहबों सखी, दुखे के बातिया रे।
संगे गाड़ल डाइर, जतने आनिया रे
सहल दारून दुख जनम भरिया रे। में प्रकृति का चित्रण है।

इस युग के कवियों की रचनाओं में अलंकार, तुक और छंद का भी सचेत प्रयोग हुआ। उपमाओं में उपमा और रूपक का बाहुल्य प्रयोग है।

तड़ित गमन जिनी, जेसन बहु खंजनी
अहो रे, गोपीगन भेला अनमना
रूनू–झुनू बाजे बाजना।
काकर पेछा, गठ साड़ी
काकर सांखा, काकर चुड़ी।
अहोरे, काकर बाजुइ बाजे बाजना
रूनू झुनू————————।

की अपेक्षा वियोग श्रृंगार की ओर अधिक झुकाव रहा है। वियोग की प्रायः सभी अन्तर्दशाओं का वर्णन हुआ है। बरजू राम के गीतः

"जे विधि जनम देला, ताहा के बिसरी गेला
अधिक माया जाले बाझली हो
मिछा माया, मिछाइ खेल करली हो।
सात पंथ कदा जाहाँ, तमाशा करत ताहाँ
मूले छाड़ी, डाइरे पाते बाझली हो
मिछा माया——————।
जानी सुनी मन भेला, साधु संगे कर खेला।
खेले के मरम नाही जानली हो।
मिछा माया————————
बरजू रामदास कहे, इकाथाटा मिछा नहे
काल देरेक अन्त नि पावली

मिछा माया, मिछाइ खेल करली हो।" जैसे निर्गुणिया गीतों की कमी नहीं है। एक अन्य गीत में–

रितु वसन्त भेल, मरऽ पिया काहाँ गेल
कइसे रखों दिलऽ धरी गो
नाहीं आलाइं स्यामऽ बंशी धारी।
नीम फूलल जइसे, नाना फूल मधु मासे
फूले फरे झबरल डारी गो
नाहीं आलाइं ————————
कुसुम झंझकार बने, कोयली कुहुके बने
भ्रमरा गुंजरे मधुहेरी गो
नाहीं आलाइं ————————
धीरज मंगल गाइ, धरि गौरांगिया पाय
कहे राधा सखी के निहारी गो
नाहीं आलाइं श्यामवंशीधारी।

एक अन्य गीत में–

बूंद सेंवाती बिनु, जेसन चातकी तनु
नागर मनीहारा, जेसन नागिन गे।
दादुरा–दादुरी गावे, नदिया उमड़ी आवे
नागर खने–खने चमके दामिनी जे।
प्रथम पिरीती काले आइने चन्द्र हाथे दिले
नागर, एखन मरे बासऽ काहे पर जे।
धन जौवन गेली, ताव अन्त ना पावली
नागर विनन्दिया दहे कलेवर जे।
एक अन्य गीत में–
फूटली मालती फूल चाँपा जूही किया रे
आवल भादर मास; घरे नाइ मोर पिया रे।
काकर साथे हाम पूजोबों जितिया रे
गीते नाचे खेली, बिताऽब रातिया रे।
पिया मुख मने करि, फाटत छातिया रे
काके कहबों सखी, दुखे के बातिया रे।
संगे गाड़ल डाइर, जतने आनिया रे
सहल दारून दुख जनम भरिया रे। में प्रकृति का चित्रण है।

इस युग के कवियों की रचनाओं में अलंकार, तुक और छंद का भी सचेत प्रयोग हुआ। उपमाओं में उपमा और रूपक का बाहुल्य प्रयोग है।

तड़ित गमन जिनी, जेसन बहु खंजनी
अहो रे, गोपीगन भेला अनमना
रूनू–झुनू बाजे बाजना।
काकर पेछा, गठ साड़ी
काकर सांखा, काकर चुड़ी।
अहोरे, काकर बाजुइं बाजे बाजना
रूनू झुनू——————।

काकर गजमति हार, लुलुक बेसर आर
अहो रे, काकर काने डले सोना।
काकर खंपा परिपाटी, काकर बेनी काकर झूंटी
अहो रे, काकर पीठे पड़े फूदना।
भने दीना कर जोरी, हेन मते ब्रजनारी
अहो रे, पहँचल जाये जमुना
रूनू–झूनू बाजे बजना।

एक अन्य गीत में देखिए–

बूंद सेंवाती बिनु, जेसन चातकी तनु
नागर मनीहारा, जेसन नागिन जे।
दादुरा–दादुरी गावे, नदिया उमड़ी आवे
नागर खने–खने चमके दामिनी जे।
प्रथम पिरिती काले, आइने चन्द्र हाथे दिले
नागर, एखन मरे बासऽ काहे पर जे।
धन–जैबुन गेली, तावा अन्त ना पावली

नागर विनन्दिया, दहे कलेवर जे। –में प्रकृति वर्णन के साथ–साथ क्रमशः उपमा और रूपक अलंकार का प्रयोग है।

शयने सपने देखी, पलके ना परे आँखी
दई गेला गोदुती, छतियाही सेल। (धुवा)
उठी के पालंख परे, ना देखी कुंज घरे
ना देखी गो दुती नन्द दुलाल
हरि हेरी भेला हारा, दुनयने बहे धारा
भिंजी गेला गो दुती, सजिया बिछाल।
कहत से विनन्दिया, कइसे बांधब हिया
दये गेला गो दुती, मदने जंजाल। –में छेकानुप्रास है।

मध्ययुगीन कुरमाली कवियों ने तुकान्त गीतों की रचना की है। तुक गीतों का आवश्यक अंग बन गया। गीतों को सरस बनाने के लिए मुख्य प्रवृत्ति

तुकान्त गीतों की ओर थी। परन्तु, यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें तुक के नियमों का पूर्णतः निर्वाह किया गया है। कुरमाली गीतों में प्रायः हाय–हाय, अहो रे, गो, हाय रे हाय, मरि हाय रे, बाबा आदि प्रत्येक पंक्ति के अंत में गाए जाते है। यह टेक पद का काम करती है। इसका गीतों के अर्थ से कोई संबंध नहीं रहता।

सामान्यतः गीत को चार कड़ी की भनिता–सहित हैं। प्यार छंद के चौतीसा गीत भी इस युग के कवियों की एक विशिष्ट देन है। साधारणतः यह माना जाता था कि लोकगीतों में मात्रा पर ध्यान नहीं दिया जाता था। परन्तु, स्व. राजा उपेन्द्र नाथ सिंह देव ने गीतों की स्वर–लिपि प्रस्तुत कर इस बात को गलत साबित कर दिया।

इस काल के कवियों की रचना शैली भिन्न–भिन्न थी। इस काल के गीतों में क्लिट शब्दों का प्रयोग हुआ है और कुरमाली भाषा के गीतों में अन्य भाषाओं के शब्दों का समावेश होने लगा।

मध्यकाल की लोककहानियों में भक्ति–भावना को विशिष्ट स्थान दिया गया है। कहानीकारों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ–साथ लोक को ईश्वरोन्मुख करना रहा है। सारी कहानियाँ लोक–मुख में ही जीवित रही हैं।

यों तो कुरमाली शिष्ट साहित्य का प्रारम्भ कुरमाली के मध्यकाल से माना जाना चाहिए, परन्तु, इसका उत्कर्ष काल 1900 के बाद से है। सन् 1903 ई. में जी. एफ. हेमिल्टन ने "बेसहाल मार्क के बनावल" नामक पुस्तक कुरमाली गद्य में लिखी जिसमें बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद है। स्व. निरंजन महतो ने सन् 1921 ई. में "नेठापाला" नामक गीत संग्रह बालासोर (उड़ीसा) से प्रकाशित कराया। इन गीतों का वर्ण्य–विषय वही रहा है जो पूर्ववर्ती कुरमाली कवियों का रहा है। बुधू महतो ने "करम संगीत" नामक पुस्तक सम्वत् 1970 में बम्बई से प्रकाशित करायी। प्रस्तुत गीत संग्रह में विषय–वस्तु की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है, बल्कि कुरमाली के करम–गीतों का नवीनीकरण है।

सन् 1930 के आस–पास लोगों में एक नई चेतना का उदय हुआ। अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने के लिए– "बिहाने दतुन काठी, दुपहरे ठेंगा लाठी" गीत से नौजवानों को लड़ने के लिए प्रेरित किया जाता था। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पूर्व के आस–पास के वर्ष को स्वप्न–काल कहा जा सकता है। लोगों ने एक सुखद स्वप्न देखा कि आजादी के पश्चात् एक नये भारत का निर्माण होगा।

"साधीन हेले जाती जाला, भारत माइके पिंधावबेक माला" में देश को परतंत्र की बेड़ी से मुक्त कराने का संकेत है। इसी प्रकार सृष्टिधर के–

सराज–सराज कहलेइ कि सराज हेइक
मुंहेक काथाइं नि हेइक सराज
देखावे हेतन काम करि।
सराज काहे–काहे जाइहा बाजारे
सराज राहे गेलेइक पांदाड़ घारे।
सराज जे भाई फूलेक भीतर
कपास गाछे धरलेइक फर
घारेक लुगा, घारेक चाउर
घारेक तेल आर घारेक दाइल
सुखे रहत चिरकाल –में उद्बोधन है।

परन्तु, ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि शिष्ट साहित्य के लेखकों का वर्ण्य–विषय केवल देश–भक्ति ही रहा है। बल्कि इनके गीतों के वर्ण्य विषय–कृष्ण प्रसंग, बोधगीत, कृषिगीत, व्यंग्यगीत एवं दार्शनिक भाव के रहे हैं।

लम्पटऽ सठऽ छंड़ा,
थानाइं राखे टेढ़ा–टेढा
एसन माहान केसे जाम पानी
किना कहि देबों नन्द रानी।
जदि देखेइ पखेइर घाटे
जाइके धरेइ साड़िक टेंपे
दुइयों हाथे करे टाना–टानी
किना कहि देवों नन्द रानी।

एक अन्य गीत में देखिए–

ओ रे, सनाक जादू, सुने बाछा धन
गोपी संग तर काहे एसन
काहे भांगी देलसिन बरतन।
गाते रहेन लील साड़ी

से हो देले आसिन फाड़ी
तर नामे लालिस घने–घन
काहे भंगी देलसिन बरतन।
एरा हेकत कुलेक जेनी
दुयो बेला जात पानी
काहे कहलेसिन कुवचन
काहे भांगी देले असिन बरतन।

एक अन्य गीत में देखिए–

नन्द गवालाक बेटा, बड़ी रे लिलज सेटा।
तरू मूले केउ जाइहाना
देखा गो, कुले जेसन दाग लिहाना।
इ तऽ हेके राजाक बेटा
कने कहेइ अकर काथा
काथा कहले लागे जरिबाना
देखा गो,————————
गाछे बसी बाजाइ बांसी
सेटी बाजे दिवा–निसी
बांसी सुनी केउ भूला ना
देखा गो————।
सृष्टिधर कहत वानी
दसर घाट ले लेगा पानी
पानी आनले लागे जरिबाना

देखा गो, कुले जेसन दाग लिहान– आदि गीतों से कुरमाली के मध्यकालीन कवियों की प्रवृत्ति का पता चलता है।

जगत के खालेइक रे भाइ एके उड़ीसे
हामरा, मरलियो मनेक आलिसे।
उड़ीसे कर एसन टेढ़ी,

ब्रहमाक पेट देलेइक फाड़ी
ब्रहमा पाराइक गेल, नि रहल देसे
जगत के खालेक रे भाइ एके उड़ीसे।
उड़ीसेक नेखेइक दांत,
चबाबे करेन दिन राइत
जखेक रकम लागल रकत चूसे।

जगत—————————————————— उड़ीसे। —में मानवीय कमजोरी की ओर संकेत है।

चास हेकेइक् जगतेक परान
उत्तम खेती मध्यम बान
निरधिन चाकरी, भीख निदान।
चइते मरीच कोंहडा कारला
चास करले जातोव जाला।
खाबे सुखे, छाड़तोउ दुखे
कबउ नि तर हेतोउ टान।
बैसाख—जेठे बुनिस धान
आसाड़े कापास पान।
सरावने रोपिस धान
मने—मने करिस धेयान।
भादरे बेइगन बिलाती
तिल, गुँजा आर कुरथी।
हेले छिन बेइरसा, आसिने सेइरसा
चासाकर हेतेइक कल्यान।

एक अन्य गीत में देखिए—

चास करा जौ गहम बूट
तबे खायेक नि हेतेइक टूट —से कृषि की महत्ता स्पष्ट है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोगों में एक नई आशा जगी। गाँधी, नेहरू के प्रति आस्था प्रकट की गई।

कापास गाछे धरलेइक फर
घारेक लुगा, घारेक चाउर
घारेक तेल, घारेक दाइल
सुखे रहता चिरकाल
सुरूजे दिन हेतेइक घारे–घारे
घारेक झागड़ा घारे मेटावले
हिंसा बाद छाड़ी देले। –इस गीत में गाँधीवादी विचार धारा का दिग्दर्शन होता है।

बलिहारी जय जवाहर लाल
बांधे बाकी निं राखल नेदी, खाल।
मान्धाताक आमले जदि
बाकी रहेइक कोशी नदी
सेऊ बाँधी देलेइक तोयं देखबे चाल।
करला दामुदर भेली,
हाजार–हाजार अवला कुली
करवनों जेसन आवत बंग पाल।
आरो देखा पंचेत डेमे,
सेटा आहेइक मानभूमे
पानी जमा राखताक कतेक काल।
आरो देखा डेम भाखड़ा,
सेटा हेलेइक मूल आखड़ा
भारत के गुचावल जंजाल।
मेघे ना बरसलऊ पानी
सरकार देतोउ आनी
एहे टाइ त एकर खेयाल। –में जवाहर लाल नेहरू के कुशल नेतृत्व का उल्लेख है।

बिहार बंगाल राज्य के पुनर्गठन से मानभूम के कुरमाली कवि मर्माहत

हुए। निम्न गीत में इसका कितना सटीक चित्रण है:

मानभूम आहेइक बिहारे,
आर रहतेइक बिहारे हो
जड़ऽ सड़ऽ रहब किना
आर हामरा डरे हो।
हामरा आइहो एतेक लग,
काकर आहेइक एसन हक
हामरा के लेले जाताक जरे हो।
जखन रहेइक ब्रिटिश राइज
सेटा भाभी देखा आइज
नाम राखलेइक छोटानागपुर हो।
मानभूम आहेइक बिहारे,
आर रहतेइ बिहारे हो।
मानभूमेक माटिक रंगे,
मेसेइक आर देसेक संगे
तबे हामरा मेसब किना करे हो।
मानभूम आहेइक बिहारे हो।
मानभूमेक गाछ–गाछड़ा,
आर जतेक गाढ़ा–ढोढ़ा।
देखलेइ त पारबे परिख करे हो।
मानभूमे आहेइक लोहा,
धन, ताँबा, कोयला, रतन
से सभ हामर, देखले आहात चोरे हो,
हामर आहि आइंआ हक,
खायेक बेराइं कतेक लग
मानभूम आहेइक बिहारे हो।
हामर देशेक धन खायके,

चलऽ हत सब मकमकाइ के
आसाम पाठावहत हामरा के काम करे हो।
मानभूमेक दहत्तरा,
सेटा देखले आहात अरा
हुसियार, हुसियार कहे सृष्टिधरे हो।

मानभूम आहेइक बिहारे हो। – से मानभूम के लोगों को बिहार में ही रहने की इच्छा का संकेत है।

बंगला भाषा जबर्दस्ती लादे जाने के संबंध में कहा गया है–

बांगला सिखलियो हामरा दाये गिरी के
मानभूमेक हाल देखी के।
बांगला हाकिम, बांगला वकील, बांगला केरानी
बांगला सिखलियों हामरा देखी सुनी।
निमामा के काना मामा, कहथिन सभे के
बांगला सिखलियो हामरा दाये गिरी के।
बांगला स्कूल, बांगला कलेज, बांगला दोकानी
हामरा नि जानियो, बांगलाइ करता टानाटानी।
बांगलाइ दाबाउ़लेइक हामर मातृ भाषा के
बांगला सिखलियो हामरा दाये गिरी के।
बांगला भाखा हामर निहीं
इटा सभेकाइ दियोक कही
बइसाख मासेक कमीशन के
बांगला सिखलियो हामरा दाये गिरी के।
निजेक धन निजेक घारे, राखे भाइ हुशियारे
दो ा ना दिहाक सृष्टिधर के
बांगला.............................. गिरी के।

आजादी के बीस वर्षों बाद भी कोई राहत न मिली तो स्वतः कवि के मुख से बोल फूट पड़ा–

काकरऽ काथाइं भूलिहाना एखन
सुना आदिवासी हरिजन।

उक्त पंक्तियों में लोगों में राजनीतिक चेतना लाने का प्रयास है।

हामर छवा सब चौकीदार,
केउ नि हेता ताकर पार,
जारा करला बेलेक मारकिट,

तारा करला रेडियो फिट। –में सरकार की दोषपूर्ण नीति पर करारा चोट है।

1957 ई. में राँची में आकाशवाणी की स्थापना से लोक–कलाकारों को विशेष बल मिला। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं पर अपनी लेखनी दौड़ाई। विभिन्न विषयों पर काव्य–सृजन किया। छुआछूत, दहेज, बाल–विवाह, कृषि, राजनीति, भक्ति, प्रेम; प्रकृति–चित्रण, हास्य, परिवार–नियोजन आदि काव्य–विषय रहे हैं।

समाजेक छुआछूत कहत जेटा।
उठाइ दियोक हामरा सेटा
हीनऽ ऊँचऽ ना सोचियो कनो टा
गुचाइ दियोक जाइत पाँतेइक रोगटा।

एक अन्य गीत में देखिए–

ऊँच–नीच केउ कहत,
सभेकाई एक समान
धनी, गरीब मुरूख,

पंडित, सभे हेकत भगमानेक संतान। –में एक ओर छुआछूत को मिटाने का आह्वान है तो दूसरी ओर–

अनन्तदास गोस्वामी की कविता में–

सुनी तिलक प्रथाक काथा
ठनकल गो मोर माथा।

जमी जाइगा सभे सिराइ गेली
बेटी कुंवारी रहि गेली।

तथा जगन्नाथ महतो की कविताः—

आइज धिक रे समाज, मने करे लाज
काहे खजेइहा बिहाइ मटरगाड़ी रे।
बेटी नातिन जे गेलथून बाढ़ी रे।
जे सभ पढ़लेहे, इस्कूल कलेजे
तरा मंरी जा लाजे
पढ़ि समाज के तोयं किना देल रे
तहराइ समाज के आइज भाड़ी देल रे।
आइजतर पढ़ाक किना गुन
माथा छलि लागाय ले रे चुन।
घुराइ भूलबे गाँव आर सहरे रे।
बाबू समाजेकर किछु करे रे।
एखन चढ़ती उमेइर, भालो बुझीकर
जेरा असम्भव, सम्भव करब रे

परे भाभी बा तोयं कि करबे रे? —में समाज में प्रचलित दहेज—प्रथा का घोर विरोध है।

आसुतोष कोईरी की कविताः—

एक ईश्वर संतान, मानुस संसारे
ईसाई, इस्लाम, हिन्दू धर्म व्यवहारे
ईश अंश, एक आला ारीर मन्दिरे
हिन्दू, मुसलमान, किरिस्तान भाई
एकर ले भालऽ डहर नाई

सभेकाई मिलीमिसी, हांसी खुशी रहा भाई। —प्रस्तुत गीत में साम्प्रदायिक एकता की बात कही गई है।

छोटानागपुर प्राकृतिक सुषमा से भरा है। महिम महतो की कविता—

बलिहारी राँची जिला
बन–झाड़ पाहाड़ शिला
डाँगा, टिलहा, झरना विस्तार हो
प्राकृतिक दृश्य चमत्कार हो।
खादान खनिज भंडार हो।
एवं
मोयं हेकों हीरानागपुर कर जन

एहे भूंइए पालितऽ जीवन। –में छोटानागपुर की प्राकृतिक छटा के साथ–साथ सम्पन्नता का उल्लेख है।

मद जूहा कर एसन निशा
खाल परे हेराइक दिसा
किछु रहेइक जमी जाइगा
बेची गुचाय हतभागा।
मद–दारू पीले रे बाजारे
किना करि देतोऊ सरकारे।
जखन जमी बेचिस कोरे
टाकाइं–टाकाइं झइर फूटे।
निशाइं दिशा हाराले संसारे।
सेइ जेनी छवा छाड़ी
बहू पाराल बापेक बाड़ी।
एबे भेली दुवाइरे दुवाइरे
किना करि देतोऊ सरकारे।
गेला माराफरी बाटे
बाप गेला डांगर खाटे
दीना भाभी कहत संसारे

किन करि देतोऊ सरकारे। – में शराब का खुलकर तिरस्कार किया गया है।

मानुस जनम सब जनमेक सार
हरि ना भजले जनम पावब किना आर।
गुड़ मधु धीव देले पावब महादेव
मने–मने देवताए सब मानिला सिकार
मानुस जनम सब जनमेक सार।
देबीक नामे करत बलि,
मानुसे खात थाल भरी
मने मने देवता सब करला सिकार।
मानुस रूपी मुगधड़ मने,
बुझी गेलाक नारायने।
अधम गोलक भनिता,
भाभी देखा भक्ति माता
हरिक संगे करला विहाँ

एवं

संसारे जनम लेली, गुरूनाम ना भजली
माया जाले हो हामें बाझी रहली
इ जनम अकारन गेली।
जेसन तसर पका, ताकर ले अधिक बका
बाझी गेला हो, जेसन जाले मछरी
इ जनम अकारन गेली।
अधम गोरा गाइ, दिनऽ से दिनऽजाइ
हरि संगे हो हामे कबे मिलली

इ जनम अकारन गेली।– में ईश–भक्ति और मानव जीवन की निस्सारता को दर्शाया गया है।

पिछले डेढ़ दशक से कुरमाली शिष्ट–साहित्य के गद्य और पद्य, दोनों विधाओं में पुरानी परंपरा का अनुसरण करते हुए स्वच्छन्द कविताएँ रची जाने लगी हैं। कविताओं के वर्ण्य–विषय है– भक्ति, प्रेम, राष्ट्रीयता, प्रकृति–चित्रण, दर्शन, शोषण, हास्य, अत्याचार, गरीबी, एवं झारखण्ड आंदोलन।

नमः नमः माँ गो सरस्वती
कंठे करे माँ स्थिति
नाशें अज्ञान, कुमति
कर वीणा धारिणी
दे माँ चन्द्रवदनी
विधाक भुवने निति
सुमरन करें विद्यार्थी।
जय माँ, जय भारती
जय विधायिनी

दे माँ चन्द्रवदनी। —में माँ सरस्वती से अज्ञानता दूर करने की प्रार्थना की गई है।

राधागोविन्द सिंह की कविता :—
गावा सब मिली के भारतेक जयगान
एक तान, एक मन, एक प्रान।
गावा सब मिली के भारतेक जयगान।

भारत भूमिक समान आहेक कि कोनो स्थान? —में राष्ट्रीयता की झलक मिलती है।

"कामिन" "संजयनदी" "फागुन" "बसंतकाल", "पूर्णिमाक राइत", "सरत लखी", "सपन—आपन" कविता में प्रकृति का चित्रण है। "गनति", "रित" एकटा गाछे दुइटि चेरेइ" "जाहाँक झाँक ताहिं" में दर्शानिक भाव झलकता है। "पाथर देबता" "रदन" "भागुआ पिंधाक तरहअ" "अरजे भागुआ खाइ धतिआ" "तोयं कि आर जाबे निहि अहे डहरे" "खाटिकन खावेइआ" कविताओं में शोषण के खिलाफ आवाज है। "फुरूंग", "बिडुउल", जसेक बादेइरे झारखण्डीक तारिआ" "धंधौरा" "चिआड़ी धेनुक" में झारखण्ड आंदोलन को तीव्रतर करने का आह्वान है।

जिउ गेलोऊ खाटी—खाटी
नेहि जुटय माड़पानी।
एक अन्य गीत में देखिए—

मदखरेक संगे विहा गो देले माइं
हामर खालटाउ पानी।
भादर, मासे, गाय धेनुवाल
छवा–पुताक बेड़े आशा,
चेकाक डरे पाराब काहाँ गो
करें माइं तेंतेइर तरे बासा।
जमीं–बाड़ी घटी–बांटी
सभे गो देलाक बेची
मुहजारा संगे हामे गो कहे माइं
केइसने रहम बाँची।
नितइ नितइ कलह कचऽ
भाड़ा बांचाइ गो बांचा
दिने राइते माइर खावा हे
सुनील एकेइ मरा बॉचा।

एक अन्य गीत में देखिए–

रउद पानी कनँ नि मानि
बापेक गतर हेलेइग हानि
खाटि–खाटि जिउ जाहान पानी
ताउ अन जुटेइग त लुगा नि
तके भांड़ेइ आर–रकत चुसइ आके

काँड़े विधि देबँ देखाइ।–में समाज में व्याप्त दरिद्रता की ओर संकेत है।

एतेक सुन्दर नारी जनम गढ़ले हो हरि
नारी बिना दिवा–निशा, गुमरी–गुमरी
हाय रे मोंय जालाइं मरी
एतेक बड़ों प्रेमजाला, बुझे ना पारी
हाय रे मोंय जालाइं मरी।

नारी सुखे कतेक सुख, बुझे ना पारी
देखले किमबा हांसले, गंडगले मरी।
काला रहोग, चाहे गोरी, चले बलिहारी
काँखे कलसी साजे, देखे के सुन्दरी
हाराधन मने भाभी, चाहत पुकारी
चले जानले भलइ हेकेग, नित चिनगारी

हाय रे मोंय जालाइं मरी। –में नारी के प्रति स्वच्छ भावना प्रदर्शित की गई है।

बेटिक बेटा नाती,
एकधार हेइ मके देखी
झूपले ताक बुझी पाड़ाइ पीठे कंथि।
पावले धरि देबेइं एक लाथि।
नातिन घारा सबरनाखाक पारे
गुरू चारावेन नदिक पिड़ं धारे
साँचा छड़ि मिछा कबऊ नि कहेइ
गाइर माइर सभे किछु सहेइ
कोदो, जनाहाइर साढ़े–संढ़ि गतर जानबे हाथी
बेटिक बेटा नाती।
माइ मनसा उचरले जाँत,
झुँपि ढिठे नासि करेइ उत्पाइत।
मेढ पासे छोटे–बड़ो सभे हेला जमा
सुखे–दुखे ताव रिझे हेइ माति
बेटीक बेटा नाती।

एक अन्य गीत में देखिए–

एसने हेलेइक कलि काल, बामने धरल हाल
निजेक मने देखा विचार करि,
कारखानाइं देश लेला भरी।
कलेक ताँत तेइरि भेल,
जलहा ताँती डुबी गेल।

तेलेक मिले तेली गेला मरि

कारखानाइं देश लेला भरि।

टेबुल चियारेबसी, आगु तरे रहेइक आरसी

घारे बसी काटि लेहत दाढ़ी।

हबू लाल कहे सुना भाई

हामर बुद्धि किछु नाई

दुनियाइं चलेहेइक छापाइ साड़ी। –में हास्य का पुट मिलता है।

कुरमाली कवियों में अपनी मातृ–भाषा के प्रति अगाध प्रेम मिलता है। 'कुरमाली तेहें', 'कुरमाली', 'जहाइर कुरमाली भाखि', 'टउआ', 'कुरमाली भाषा' 'मातृभाषा', 'मायेक भाखि' में मातृ–भाषा के प्रति आग्रह है।

शिल्प–विधान की दृष्टि से देखा जाय, तो हम पाते हैं कि तुकबंदी कविताओं के अलावा स्वछन्द कविताएँ भी रची गई हैं। कविता के विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है। उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकार भी मिलते हैं। कवि महिम के–

पाँचे पाँच गुना करि, आरऽ साते शून्य धरि

एकऽ पखऽ बाद करि, गेला से कुटिल

कइसे बाँधव दिल – में दृष्टिकूट का प्रयोग है।

कुरमाली के गद्य साहित्य में भी सामाजिक कुरीतियों, दहेज, शोषण अत्याचार, छुआछूत आदि का वर्णन मिलता है। खगेन्द्र की 'भाई–भाई' कहानी में मद्य–निषेध की ओर संकेत है। बसंत कुमार मेहता की 'छटपटी' में पुरूष के दुर्बल चरित्र को दर्शाया गया है। एच. एन. सिंह की कहानी 'बानछा' में दहेज प्रथा एवं आर्थिक शोषण का उल्लेख है। आनन्द खूँटदार की 'तिनठाकुर' कहानी में मनुष्य और जंगल के घनिष्ट संबंध को दर्शाया गया है। उनके उपन्यास 'साध' में जमींदारों के शोषण का जिक्र है। केशव जी की 'हारूप' कहानी में झारखण्डी संस्कृति और गौरवमय इतिहास का वर्णन है। कालीपदों महतो के 'केरिआ– बहु' नाटक में समाज के सफेदपोश लोगों के चरित्र को बेनकाब किया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुरमाली शिष्ट साहित्य विभिन्न साहित्यिक विधाओं और विविध वर्ण्य–विषयों को लेकर पल्लवित हो रहा है।

कुरमाली साहित्य का सामान्य परिचय

कुरमाली भाषा का नामकरण कुर्मी जाति के नाम पर हुआ है। 'कुर्म' शब्द में ''आली'' प्रत्यय जोड़ कर ''कुरमाली'' शब्द बना है। जैसे– देशाली, गढ़वाली, आदि। इस प्रकार ''कुरमाली, कुरमी जाति का द्योतक है। इसे ''महतो'' भाषा की संज्ञा भी प्राप्त है। झारखण्ड क्षेत्र के अधिकांश भाषाओं का नामकरण जाति के आधार पर हुआ है। जैसेः– मुण्डा से ''मुण्डारी'', संताल से ''संताली'', हो से ''हो'', खड़िया से ''खड़िया'' तथा कुरमी से ''कुरमाली''। इसके विपरीत बंगाली, मैथिली, भोजपुरी, मगही, ओड़िया, नेपाली, गुजराती, पंजाबी, आदि भाषाओं का नामकरण के आधार भौगोलिक हैं। यही नहीं, दक्षिण भारतीय भाषाओं तामिल, कन्नड़, तेलगु, आदि के नाम भी स्थानवाची हैं। परन्तु, झारखण्ड क्षेत्र में भाषाओं के नाम स्थानवाची न होकर जाति या समुदायसूचक हैं। इस भाषा का नाम ''कुरमाली'' इसलिए पड़ा, क्योंकि इसका संबंध कुरमी जाति से रहा है, जो ''महतो'' कहलाते हैं और जिनका इस भाषा को बोलने वालों में आधिक्य हैं, यद्यपि यह भाषा उन्हीं तक सीमित नहीं है। वस्तुतः छोटानागपुर की भाषाओं के नाम जाति–सूचक शब्दों के आधार पर बने हैं।

डा. ग्रियर्सन ने मुख्य रूप से कुर्मियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को ''कुरमालीठार'' की संज्ञा दी हैं। डा. उदय नारायण तिवारी तथा डा. धीरेन्द्र नाथ साहा ने इसे ''कुड़माली'' नाम से अभिहित किया है। इस प्रकार कुरमाली भाषा को ''कुड़माली'' कुरमालीठार, महतो भाषा आदि कई नामों की संज्ञा प्राप्त है।

डा. ग्रियर्सन ने कुरमाली को आर्य–परिवार की भाषा माना है। डा. विश्वनाथ प्रसाद एवं डा. सुधाकर झा ''शास्त्री'' ने स्वीकार किया है कि कुरमाली निश्चित रूप से बिहारी बोली है जिसका मगही के साथ पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् डा. उदय नारायण तिवारी ने ग्रियर्सन की भांति कुरमाली को ''कुरमालीठार'' की संज्ञा दी है। कुरमालीठार का अर्थ उन्होंने आर्य भाषा का कुरमाली रूप से लिया है। गुप्तनाथ सिंह ने पूर्वांचल के कुर्मियों की भाषा को पश्चिमी भारत की हिन्दी से मिलती–जुलती भाषा कहा है। जनगणना सम्बन्धी विवरण का हवाला देते हुए डा. लाल जी सिंह ने कुरमाली के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है कि– ''कुरमाली कुर्मियों की क्षेत्रीय भाषा है और वह बिहारी भाषा के अन्तर्गत है।'' कुरमाली के मूर्धन्य विद्वान् डा. नन्द किशोर

सिंह की मान्यता है– "ऐतिहासिक निकास–विकास की दृष्टि से कुरमाली उसी मगही प्राकृत प्रसूत है जिसे बंगला, ओड़िया और असामिया भाषाएं विकसित हुई हैं। डा. संतोष कुमारी जैन ने इसे मागधी प्रसूत भाषा माना है। राधा गोविन्द महतो का मानना है कि जिस प्रकार कोल, भील, सॉऊताल, मुण्डा, हो, एक भाषा गोष्ठी "आग्नेय परिवार" की है उसी प्रकार कुरमाली, खोरठा, नागपुरिया पंचपरगनिया, छत्तीसगढ़ी, बुन्देलखण्डी आदि भूमध्य सागरीय भाषाएं एक ही भाषा गोष्ठी के हैं। लोकसाहित्य के अध्येता एवं भाषाविद् स्व. डा. डी. एन. साहा कुरमाली को नव्य भारतीय आर्य कहा है।

कुरमाली, बंगला, ओड़िया और असामिया की भांति मागधी अपभ्रंश प्रसूत है और इन्हीं की तरह एक निश्चित बोली है। बिहारी वर्ग की भाषाओं से इसका पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है। इनके अनेक समानताओं के बावजूद कुरमाली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं जो अन्य मागधी भाषाओं से पृथक करती है। कुरमाली भाषा की उत्पत्ति कब हुई; इसे सीमा रेखा में आबद्ध करना कठिन है। लेकिन इतना निश्चित है कि इसके विकास या रूप–विधान में कुर्मियों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कुरमाली की ध्वनिगत विशेषताएं, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सुर, ताल, लय, विविध गीत इसके पार्थक्य के आधारभूत कारण हैं। इसमें लोकगीतों, लोककथाओं, लोक़ोक्तियों और पहेलियों की संख्या बहुल है। इन लोकगीतों, लोककथाओं एवं लोकोक्तियों में कुरमाली जीवन की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन विधाओं की विविध रचनाओं से ज्ञात होता है कि कुरमाली साहित्य जितना समृद्ध है भाव–सौन्दर्य की दृष्टि से भी उतना ही उत्कृष्ट। कुरमाली की ध्वनि शास्त्रीय विशेषताओं, लोकोक्तियों, मुहावरों और रचना वैशिष्ट्य को देखते हुए सर जार्ज ग्रियर्सन इसे "विचित्र भूभाग के विचित्र लोगों की भाषा" कहा है।

क्षेत्र : कुरमाली एक अन्तरप्रान्तीय भाषा है। कुरमाली की एक लोकोक्ति "उड़िष्य शिखर नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर" में इसका सीमा रेखा की ओर इंगित किया गया है। अर्थात् उड़ीसा, छोटानागपुर और पश्चिम बंगाल के खड़गपुर तक इसकी सीमा है। आज तक इसकी जो सीमा रेखा निर्धारित की गई है, वह भ्रामक है। अनुसंधानकर्ताओं ने अपने–अपने ढंग से कुरमाली भाषिक क्षेत्रों का उल्लेख किया है। किसी ने इसके क्षेत्र का विस्तार दिखाया है तो किसी ने अत्यन्त सीमित क्षेत्रों में इसे माना है। इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के मतों का उल्लेख करना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है।

डा. जार्ज ग्रियर्सन ने मानभूम, खरसवाँ, सराईकेला, राँची, उड़ीसा के मयूरभंज, बामड़ा, क्योंझर आदि क्षेत्रों को कुरमाली—भाषी क्षेत्र माना है। डा. उदय नारायण तिवारी ने लिखा है– "मानभूम, मयूरभंज तथा बामरा में पूर्वी मगही, कुरमाली तथा पश्चिमी मालदह में यह खोण्टाली कहलाती है। मयूरभंज तथा बामरा में यह चारों ओर उड़ीसा से तथा माल्दह में चारों ओर बंगला भाषा से घिरी है। मानभूम तथा खरसवाँ के लोग विशेषतः कुड़मी लोग, पूर्वी मगही के बोलने वाले हैं।" डा. तिवारी का यह सीमा रेखांकन डा. ग्रियर्सन की पुस्तक **'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया'** पर आधारित है।

डा. सम्पति आर्याणी ने हजारीबाग के दक्षिण–पूर्वी भाग, मानभूम रांची जिले का पंचपरगना, दक्षिण पूर्व भाग, खरसवाँ, उड़ीसा के मयूरभंज तथा बामरा एवं मालदा जिले के पश्चिमी भाग को कुरमाली भाषी क्षेत्रों के रूप में स्वीकारा है। इस संबंध में डा. नन्द किशोर सिंह ने लिखा है– कुरमाली का क्षेत्र समस्त छोटानागपुर तो है ही, ओड़िया और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्से भी हैं। भौगोलिक दृष्टि से बिहार में इस बोली का विस्तार धनबाद, रांची, सिंहभूम, और हजारीबाग जिले हैं। ओड़िसा के मयूरभंज, क्योंझर, बोनई, बामड़ा, तथा पश्चिम बंगाल, पुरूलिया, झाड़ग्राम, मिदनापुर, बांकुड़ा, मालदा, दिनाजपुर के वे भाग बिहार से सटे हैं, यह बोली जाती हैं। देवकी नन्दन प्रसाद का मत है– "कुरमाली भाषा का क्षेत्र बिहार राज्य के दक्षिण पूर्वी अंचल का क्षेत्र है। इसका एक छोर बंगाल को छूता तो दूसरा उड़ीसा को।" डा. संतोष कुमारी जैन ने बिहार के धनबाद, रांची, सिहंभूम, हजारीबाग, संतालपरगना, पश्चिम बंगाल के झाड़ग्राम, पशिमी बांकुड़ा, पश्चिमी वीरभूम, पुरूलिया तथा उड़ीसा के क्योंझर, बोनई, बामड़ा, मयूरभंज और सुन्दरगढ़ के अतिरिक्त पूर्णिया, भागलपुर, असम के कुरमाली भाषी क्षेत्रों के रूप में स्वीकार किया है। गिरीश चन्द्र महन्ता कुरमाली भाषा के क्षेत्र को परिसीमित करने के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने लिखा है– "कुरमाली भाषा कहने से किसी भौगोलिक सीमा की भाषा नहीं लगती है। जिस प्रकार नागपुरिया, भोजपुरी, मैथिली, छत्तीसगढ़ी आदि भाषा कहने से किसी अंचल की भाषा लगती है। इस प्रकार "कुरमाली" भाषा भौगोलिक सीमा क्षेत्र में आबद्ध नहीं। बंगाल, बिहार उड़ीसा, असम, या मध्य प्रदेश में जहाँ भी झारखण्डीय कुरमी बसते हैं, वहीं पर यह भाषा है।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कुरमाली भाषा–भाषी का एक विशाल क्षेत्र है तथा झारखण्ड क्षेत्र में एक भाषा बोलने वालों में "कुरमाली" भाषियों की संख्या सर्वाधिक हैं।

कुरमाली शब्द वस्तुतः जाति–सूचक है। परन्तु, इसके बोलने वाले केवल कुरमी ही नहीं, बल्कि कुरमियों के साथ–साथ अन्य जातियाँ भी हैं। डा. विश्वनाथ प्रसाद ने लिखा है कि भुइयां, लोहार, जोलहा, रजवाड़, भूमिहार, ब्राम्हण, मुसलमान और मोची कुरमाली बोलते हैं। डा. आर्याणी ने स्वीकारा है कि ''कुरमाली'' कुरमियों तक सीमित नहीं है। यह बोली सब जातियों और वर्गों के द्वारा बोली जाती है। जैसे– रजवाड़, कुल्हु, लोहार, भुइया, कुम्हार, मोची, जोलहा, नाई, मैथिली ब्राह्मण आदि। डा. नन्द किशोर सिंह ने लिखा है:– ''रांची और हजारीबाग जिलों में कुरमियों के सिवा करमाली, घासी, डोम, तेली, बनिया, सोनार, चमार, तुरी, भूमिहार, जुलहा एवं जनजातियां यह भाषा बोलती हैं।''

संक्षेप में कहा जा सकता हैं कि यह भाषा कुरमियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इस क्षेत्रों में अवस्थित अन्य जातियों ने भी इसे अपनाया है। विशेषकर आग्नेय तथा द्रविड़ भाषा परिवार के सदस्य भी इसका व्यवहार सम्पर्क तथा मातृ भाषा के रूप में करते हैं।

'कुरमाली' भाषा–भाषियों की संख्या के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं। वस्तुतः आज तक इस भाषा–भाषियों की जो संख्या प्रदर्शित की गई है वह भ्रमात्मक है। कहीं पर कुरमियों को ही कुरमाली भाषा के रूप में दर्शाया गया है तो कहीं पर पंचपरगनिया, तमारिया या मगही के अन्तर्गत समावेश करके इसकी संख्या दी गई है। फलस्वरूप सही आंकड़ा प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। डा. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में हजारीबाग जिले में कुरमाली भाषियों की संख्या 7,333 दर्शाया है तो मानभूम में मगही और कुरमाली की संयुक्त संख्या 1,11,100 मानी है। विस्तारभय के कारण यहाँ पर अन्य क्षेत्रों के कुरमाली भाषियों की संख्या का उल्लेख करना उचित प्रतीत नहीं होता। डा. ग्रियर्सन का कार्य प्रतिनिधियों के माध्यम से हुआ है। फलस्वरूप उनके ग्रन्थ में भाषा–संबंधी तथ्य तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किए गए हैं। कुछ तथ्य तो अविश्वनीय ही नहीं, भ्रमात्मक भी हैं। डा. एन. के. सिंह ने कुरमाली भाषियों की संख्या साठ लाख मानी है।

खुदीराम ने सन् 1971 की जनगणना में प्रदर्शित कुरमाली भाषियों की संख्या को भ्रमात्मक बताते हुए झारखण्ड प्रदेश में उक्त भाषियों की संख्या अस्सी लाख मानी है। आदिवासी कुरमी समाज के एक स्मार–पत्र में छोटानागपुर, संतालपरगना, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में कुरमियों की संख्या एक करोड़ से

अधिक दर्शायी गई हैं। ''कुरमाली अकादमी'' ने सन् 1981 की जनगणना का विवरण प्रस्तुत करते हुए झारखण्ड प्रदेश में कुरमाली भाषियों की संख्या सत्तर लाख मानी है। निष्कर्षतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि झारखण्ड प्रदेश में कुरमाली भाषा–भाषियों की संख्या सर्वाधिक प्रतीत होती है। कुछ विद्वानों ने कुरमियों को ही कुरमाली भाषी के रूप में स्वीकारा है। डा. ग्रियर्सन तथा उसके परवर्ती विद्वानों ने अपनी–अपनी भाषा में कुरमाली को आत्मसात कर भाषा–भाषियों की संख्या दर्शायी है। वस्तुतः कुरमाली भाषियों की संख्या कितनी है, इसका कोई पृथक विश्लेषण नहीं मिलता; सभी आंकड़े त्रुटिपूर्ण तथा भ्रमात्मक हैं। अतः इस संबंध में अलग से सर्वेक्षण की अपेक्षा है।

व्याकरण

ध्वनिगत विशेषताएँ:–

1. कुरमाली भाषा की विभिन्न ध्वनियों के लिए देवनागरी की स्वर ध्वनियां ही व्यवहृत होती हैं। परन्तु, 'ऐ' 'ओ' को क्रमशः 'अइ' और 'अउ' लिखने और उच्चारण करने की प्रवृत्ति मिलती है। जैसेः– पइसा, कउआ, नउआ, आदि। ऋ का उच्चारण 'रि' होता है। जैसेः– ऋण–रिन, ऋतु–रितु आदि।
2. ''ण'' का प्रयोग कुरमाली में स्वतंत्र रूप से नहीं होता। जैसे गुण–गुन, ऋण–रिन, आदि।
3. श, ष और स में केवल ''स'' का प्रयोग मिलता है। शब्द के आरम्भ में ''य'' और ''व'' ध्वनियां नहीं मिलती हैं। अतः ''य'' के स्थान पर ''ज'' और ''व'' के स्थान पर ''ब'' ध्वनियां मिलती हैं। जैसे यदि–जदि, यम–जम, युग–जुग, वर–बर, आदि। ''य'' और ''व'' का उच्चारण मध्य अथवा अन्त में वहीं रहता है।
4. संयुक्त ''क्ष'' का उच्चारण ''छ'' तथा ''ख'' होता है। जैसे क्षमा–छमा, या खमा। कुरमाली में संयुक्ताक्षर भी प्रायः नहीं होते। शब्दों में सब अधर पृथक–पृथक होते हैं। जैसे प्रभु–परभु, अच्छा–आछा, वत्स–बाछा, लक्ष्मी–लखी, क्षमता–खेमता।
5. कुरमाली में ''अकार'' के स्थान पर ''आकार'' की प्रवणता पाई जाती है। जैसे– ''घर–घार, गगरा–गागरा, पहाड़–पाहाड़, पटना–पाटना।
6. कुछेक शब्दों के मध्य में ''इ'' का आगम करके उच्चरित किए जाते हैं।

जैसे दाल–दाइल, रात–राइत, जाति–जाइत, लात–लाइत, आदि।

रूपात्मक विशेषताएँ:–

संज्ञा:– कुरमाली के पुलिंग और स्त्रीलिंग संज्ञापदों के रूपों में कोई अन्तर नहीं है। संज्ञापदों के साथ टा, टी, टाइ, प्रत्यय बहुतायत से प्रयोग किए जाते हैं। जैसे–: गरूटा–गरूटि, गरूटाई, खुखड़िटा, पहाड़टा, आदि। पुलिंग और स्त्रीलिंग के लिए क्रिया के एक वचन तथा बहुवचन के भिन्न–भिन्न रूप होते हैं। जैसे:– राम जाता है– राम जाइस आहे। सीता जाती है– सीता जाइस आहि। वे लोग जाते है– अरा जाहात।

सर्वनाम:– कुरमाली में मोंय, हामें, हामरा, तोंय, तरा, तरवरा, तहरा, ओंय, अरा, अखरा, एईं, अहे, एहे आदि पुरूष वाचक सर्वनाम हैं। निजवाचक सर्वनाम में "आपन" या निज का व्यवहार होता है। निश्चयवाचक सर्वनाम तीन है:– निकटवर्ती के लिए "इ" दूरवर्ती के लिए "उ" और अधिक दूरी जताने के लिए "हाऊ" का व्यवहार होता है। जैसे– इ लगगिला। उ लगगिला । हाऊ पहाड़टा। अनिश्चय वाचक सर्वनाम के लिए "केवे" किछु, कनऽ, फालना आदि का व्यवहार होता है। जेईं, तेईं, जारा, तारा, संबंधवाचक सर्वनाम या शब्द है। कन, किना, काहाँ प्रश्नवाचक सर्वनाम है। कुरमाली में कोई आदरसूचक सर्वनाम या शब्द नहीं है। किसी महिला के प्रति आदर का भाव प्रदर्शित करने के लिए मध्यपुरूष के बहुवचन वचन रूपों का व्यवहार किया जाता है। जैस–तरा, तहरा।

विशेषण:– कुरमाली में विशेषण के दो रूप मिलते हैं– लघु ओर गुरू। जैस– बड़ऽ और बड़का, छटऽ और छटकी,। संज्ञापदों के लिंग विशे यों में शिथिल हैं। वे अनिवार्य रूप से नहीं आते। जैस सुन्दर और सुन्दरी,। दोनों रूप चलता है। विशे यों में स्त्रीलिंग बनाने के लिए पुलिंग विशे यों के अन्त में ई आदि, इन आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे– लेका–लेकी, आदिखलाहा–आदिखलाहि, लउठाहा–लउठाहि, सियाड़–सियाड़िन, आदि। कभी–कभी अनिश्चय संख्या वाचक विशेषण बनाने के लिए निश्चित संख्यावाचक शब्द के बाद "एक" लगाया जाता है। जैसे– गटा आठेक खुखड़ि।

कुरमाली में खेल के लिए पृथक संख्यावाचक विशेषण प्रयुक्त होते हैं। जैसे– एक से दस तक के लिए एड़ी, दड़ी, घुरन, चाइल, चमपा, झेइक, सुतेइल, अठई, नमी, बाँड़ी। जब कि दैनिक व्यवहार में हिन्दी के संख्या वाचक शब्द व्यवहृत होते हैं। बीस के लिए "कुड़ी" शब्द प्रचलित है। परन्तु, परिणाम वाचक विशेषण

में बीस के लिए "खँड़ी" तथा चालीस के लिए "काठ" शब्द व्यवहृत होते हैं।

क्रिया–विशेषणः– भावों की सूक्ष्माभिव्यक्ति के लिए कुरमाली में अव्यय और अनुकरण वाचक शब्दों की बहुलता है। बेजाईं, दमे, दमतक, दमाट, बा, किमबा, चाहे, नितइ, चाड़े, ले, रिचिक, इत्यादि अनेक अव्यय हैं। निषेध के लिए नि, नेहि, ठेपो का व्यवहार होता है।

कारकः– कुरमाली में कर्त्ता कारक परसर्ग रहित होता है। परन्तु, संज्ञा शब्द में विभक्ति के स्थान पर ए, इ, उ, मात्राओं का विस्तार पाया जाता है। जैसे– राम ने खाया– रामे खाल। सीता ने खाया– सीताइं खालि। कर्म के लिए "के" करण के लिए– दारा, लेइ, केरि, सम्प्रदान के चिह्न– लाइ, लागिन, खातिर, हांतिर, तेहें, लेल हैं। आपादान कारक का चिह्न "ले" है तथा संबंध कारक के चिह्न क, कर हैं। अधिकरण कारक के चिह्न "ऊपर और माहान हैं। सम्बोधन के लिए– हे, एगो, हेहो, एहो विभक्तियाँ प्रयक्त होती हैं।

लिंगः– कुरमाली में चार लिंग मिलते हैं। गोरू, बाछुर, खुखड़ि उभय लिंग हैं। गाछ, पात, भुइं, खेत, नदी, पहाड़ नपुसंक लिंग हैं। छोटे प्राणियों को स्त्रीलिंग माने गए हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्राकृतिक वस्तुएं स्त्रीलिंग हैं। हिन्दी का "हाथी" **शब्द** कुरमाली में स्त्रीलिंग माना गया है। "तारे" एक वचन में स्त्रीलिंग जबकि **ब**हुवचन में पुलिंग। जैसे– एकटि तारिआ उगलि। तारिआगिला, उगला।

वचनः– कुरमाली में बहुवचन के लिए पृथक शब्द नहीं हैं बल्कि एक वचन में रा, सभ, गिला गिलि, गिलिन, गुला, प्रत्यय जोड़ कर बहुवचन बनाने की प्रव त्ति पाई जाती है। हाला, नुड़ा, कुधा, डिंग, पाल, खाता, गठ, झंपेइर, गंछा, धँप, झँप, घउद, समूह के द्योतक हैं।

क्रियाः– कुरमाली में पुलिंग और स्त्रीलिंग के लिए क्रिया के एक वचन एवं बहुवचन के भिन्न–भिन्न रूप होते हैं। जैसे– राम जाइस आहे। सीता जाइस आहि। अरा जाहात इत्यादि। क्रियाएं काल, वचन एवं पुरूष के अनुसार भिन्न–भिन्न हुआ करती हैं। यही नहीं, कुरमाली में आहे, आहों, आहेइक, हेके, आहिस आदि स्वतंत्र क्रियाओं का व्यवहार होता है। "अम"आव, प्रत्यय जोड़कर प्रेरणार्थक क्रियाएं बनाई जाती हैं। "आल" प्रत्यय जोड़कर भूतकालिक क्रिया बनाई जाती है। भविष्यत् काल में "ब" प्रत्यय का प्रयोग होता है।

शब्द–स्रोतः– जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कुरमाली मागधी प्रसूत है। अतः इसमें तत्सम, तदभव और अर्द्धतत्सम शब्दों का बाहुल्य है। देशज

शब्दों की भी कमी नहीं है। विदेशी प्रभाव के कारण अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली के शब्द भी कुरमाली में आत्मसात् हो गए हैं। आंचलिक प्रभाव के कारण मुण्डारी, संताली, हो एवं कुडुख भाषा के शब्द भी कुरमाली में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय आर्य भाषाओं के अन्तर्गत परिगणित होने वाली भाषाओं– मराठी, पंजाबी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, बंगला, असामी आदि के शब्द भी कुरमाली में दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत के शब्दों का सरलीकरण कर कुरमाली में अपनाया गया है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

मुहावरेः–

कुरमाली		हिन्दी
आइग लागा	–	झगड़ा कराना।
गात जरि उठा	–	क्रुद्ध होना।
पातेइर चाटाहा	–	लोभी।
मायेक थन काटाहा	–	कृतघ्न होना
रें टे नि करा	–	मृत प्रायः होना
जियंत जम	–	जिद्दी होना.
पानी पावा	–	प्रसव होना.
भेइरता करा	–	खूब पिटाइ करना

लोकोक्तियाँः–

कुरमाली		हिन्दी
आगुक लेड़हा आर पेछुक घोड़ा	–	मन्द नियमित गति
आंगा गुने पांगा, लहा गुने टांगा	–	जैसा बाप, वैसा बेटा
जइ लांड़हा, तइ परबत	–	अपनी–अपनी डफली, अपनी–अपनी राग
चरिक धन न मांदेरेइक पइला	–	जैसा आया वैसा गया
आपन सोचों, परेक नोंचो	–	अपना उल्लू सीधा करना
डंगुवा जेनिक घार आर दामड़ा गरूक हार	–	नीम हकीम खतरे जान
हेंठ मुड़िया, बेड़े एंड़िया	–	मधुर वाणी दगाबाज की निशानी
जाकर मुँह ताकरे बाड़ी	–	जिसकी लाठी उसकी भैंस

चेकांक डरे पाराइ न तेंतेइर तरे बासा–   एक तो करेली दूजो नीम

साहित्य

कुरमाली लोक–साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है। यह परिणाम में जितना समृद्ध है, काव्यगत विविधताओं में उतना ही उत्कृष्ट है। इसका इतिहास बहुत प्राचीन है। इस के गद्य रूपों में लोककथा, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ हैं। काव्यरूप में लोकगीतों में कुरमाली संस्कृति, रीति–रिवाज, विचार–धारा, चिन्तन–पद्धति, कृषक जीवन धर्म, विश्वास, एवं दार्शनिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं। इस संदर्भ में एक बात का उल्लेख करना अत्यंत समीचीन प्रतीत होता है कि कुरमाली के जनकवियों गीत भी बहुत प्राचीन हैं। ये गीत जनमानस के कण्ठाहार बन गये हैं। यद्यपि ये गीत लोकगीतों की परिधि में नहीं आते। फिर भी इनकी लोकप्रियता इन्हें लोकगीतों के समीप खड़ा कर देती हैं। परन्तु, लोकगीतों की संख्या इनसे कहीं ज्यादा है। साधारणतः कुरमाली साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:–

1. लोक–साहित्य और   2. शिष्ट साहित्य।

लोक–साहित्य की जो सामग्रियाँ मिलती हैं इन्हें हम मोटे तौर पर पांच वर्गों में रख सकते है:–

1. लोकगीत,   2. लोककथाएं,
3. लोकनाट्य,   4. कहावतें,
5. पहेलियाँ।

1. लोकगीत– कुरमाली में लोक गीतों की संख्या बहुल है। आज भी ये गीत लोक–मुख में जीवित हैं। गीत अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी हैं। कुरमाली गीतों की परम्परा अति प्राचीन है। कोई भी अनुष्ठान गीत एवं नृत्य के बिना सम्पन्न नहीं होता। अधिकांश गीत नृत्य गीत हैं। राग के द्वारा में ही गीतों के पार्थक्य और वैशिष्ट्य को समझा जा सकता है। कुरमाली के हरेक पहलू, विविध दृष्टिकोण और बहुआयामी विचारधाराओं को कुरमाली लोकगीत संस्पर्श करता है। कुरमाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषता यह है कि अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर रूप में हैं। छन्द–विधान के नियम से पूर्णतः मुक्त हैं। इसके अपने छन्द हैं जो गेय हैं। गीतों के लय द्वारा ही शैलीगत तत्त्व को पहचाना जा सकता है। कहीं–कहीं स्वतः अलंकारों को प्रयोग हुआ है।

कुरमाली के प्रमुख लोक गीत है:– उधवा, ढप, बिहा, डमकच, सरहूल,

नटुवा, डाइंड़धरा, जावा, करम, ऐढ़इया, डाबका, कुँवारी झुपान आदि। कुरमाली के लोकगीतों में अधिकतर प्रकृति का चित्रण हुआ है। करम गीतों में अंकुरोदय, पुनर्विवाह, कृषि–कर्म, हास्य–व्यंग्य, जीवन–यापन, की पद्धति का उल्लेख मिलता है तो विवाह गीतों में कुरमाली संस्कृति, सामाजिक व्यवहार, खान–पान दैनिक कर्म, रहन–सहन की छाप परिलक्षित होती है। कुरमी समाज में कन्या का महत्वपूर्ण स्थान है। वह परिवार के बोझ नहीं समझी जाती। जिस प्रकार वन की शोभा पुष्प है, उसी प्रकार घर की शोभा कन्या। प्रस्तुत विवाह गीत में इसका कितना सरस वर्णन हुआ है–

"बाबा बन माझे,
फूटलऽ धधकी फूला,
हाय रे, बन सोभी गेला,
घारा माझे बेटी जनम लेला,
हाय रे, घारा सोभी गेला।

कुरमाली के बांदना गीतों में क भाक–जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। मवेशी उनके जीवन के हमजोली हैं। यही कारण है कि छोटानागपुर के कृषकों के मुख्य त्योहार के रूप में बांदना (सोहराई) प्रतिष्ठित हैं।

कुरमाली के कुँवारी झुपान गीतों में जादू–टोना, तंत्र–मंत्र एवं अन्ध–विश्वास का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार डमकच गीतों में भाव, सौन्दर्य के साथ–साथ हास्य का पुट मिलता है, तो डाइंड़धरा, ढप आदि गीतों में दार्शनिक भाव झलकता है। यहाँ पर दार्शनिक भाव से संबंधित एक गीत का उल्लेख करना ही पर्याप्त है:–

मनुस जनम झींगा फूल रे भाइ,
सांइझे फूटे, बिहान झड़ी जाइ।
ताउ फूल नाचे–हांसे,
पिरथिबिक भालऽ बासे,
जायेक खने कांदेइ नि रे भाइ।

प्रस्तुत गीत में मानव–जीवन की तुलना झींगा फूल से की गई है। कुरमाली के उधवा गीत मुख्यतः प्रेम प्रसंग से संबंधित हैं। ये गीत प्रायः वन, जंगलों या लम्बी राह तय करते हुए सामूहिक रूप से गाये जाते हैं। कुरमाली समाज अत्यन्त नृत्य–प्रेमी है। गीत और नृत्य उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं।

छोटानागपुरी जन–जीवन को गीतों और नृत्यों की संस्कृति कही जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यदि किसी स्त्री को अखाड़े में नाचने से वर्जित किया जाए तो उसकी मनःस्थिति क्या होती है? इसका वर्णन निम्न में मिलता है:–

छटऽ मटऽ आखड़ा, गटा गाँवेक भेंसुरा,
नाचे गेले मके छंलके ना बने गो,
खावा–दावा करि सांइझे, जाऊँ जदि मनेक रीझे
नाहाइ हेती मके उठी बिहाने गो।
एक त फाटल लुगा, हिंदे–हुदे गटाइ भुगा,
भिंजल देखी मके सासे बखाने गो,
हेलों गाँवेक बवासिन, केसे के नाचम उठिन
एसन गाँवेक बिहा देला कने गो?

नायिका अपने माता–पिता को कोसती है कि उसके माता–पिता ने उसे ऐसे गाँव में विवाह क्यों दी, जहाँ सभी लोग उसके भेंसुर हैं। कुरमी समाज में भेंसुर बवासीन का संबंध अस्पर्श्य है। फलतः उसे (नायिका) नृत्य करने में असुविधा होती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुरमाली लोकगीतों में जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ और सजीव चित्रण हुआ है।

2. लोककथाएँ– कुरमाली में लोककथाओं का विशाल भंडार मिलता है। साधारणतः लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना ही रहा है। लोग रात को घर में, खलिहान के कुम्बा या "धंधौरा" के चारों ओर बैठकर जाड़े की लम्बी रात काटने के लिए कहानियाँ कहते हैं। कुरमाली लोककथाओं में अलौकिक और असम्भव बातों की भरमार है। पहाड़, नदी, वृक्ष को देवता माना जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि प्राकृतिक उपादानों को भी देवता के रुप में प्रतिष्ठित किया गया है। कुरमाली लोक कथाओं को मुख्य रुप से तीन वर्गों में रखा जा सकता है:–

1. धार्मिक लोककथाएँ
2. शिक्षाप्रद लोककथाएँ और
3. मनोरंजन प्रधान लोककथाएँ।

'करमा–धरमा' तीन ठकुराइन, आर नि रहम आदि धार्मिक लोककथा के अन्तर्गत परिगणित किए जा सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धिक दाम, राइकस आर अमरी, गरखिया आर राजकुमारी, अटकुरा राजा, मूंगा–मोती, करम–कापाड़ आदि शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। बितना, बाँड़ा सियाड़, पुइतु बुढ़ा, सियाड़ेक चउछालि आदि मनोरंजन प्रधान कथाएँ हैं।

3. लोकनाट्यः– कुरमाली के प्रमुख लोकनाट्य हैं– छौ–नृत्य, नटुवा–नृत्य, डमकच इत्यादि। छौ–नृत्य में नर्त्तक अपने मुंह पर मुखौटा धारण करता है और अपने अंग–प्रत्यंग के हाव–भाव द्वारा भावों को अभिव्यक्त करता है। कथा–वस्तु के रुप में पहले गीत प्रस्तुत किया जाता है। गीत के द्वारा ही दृश्य परिवर्तन होता है। यह मौसमी नृत्य है। परन्तु, अपनी लोकप्रियता के कारण अब यह अखाड़े से निकलकर अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर आ गया है।

नटुवा एक पारम्परिक नृत्य है। गीत के द्वारा कथावस्तु का परिचय दिया जाता है। यह वीर रस का नृत्य है। नर्त्तक अपने शरीर को रंगीन फीतों से सुसज्जित करता है और अपने हाथों में ढाल और तलवार लेकर नृत्य करता है। उसकी भंगिमा युद्ध की स्थिति की होती है।

डमकच विवाह के अवसर पर होने वाला नृत्य है। जब वर विवाह करने के लिए चला जाता है तो घर की स्त्रियाँ मर्दों का पोशाक पहनकर नृत्य करती हैं। कभी–कभी वे विवाह का अभिनय भी करती है तो कभी किसी अन्य कथा–वस्तु को लेकर अभिनय करती हैं। गीत प्रश्नोत्तर के रुप में होते हैं जिसे हम कथोपकथन शैली कह सकते हैं।

4. कहावतें:– कुरमाली कहावतों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि हास्य व्यंग्य, ललकार, चेतावनी, सूचना, सूक्ति के द्वारा गुढ़ बातों की शिक्षा दी जाती है। कुरमी जाति के आचार–विचार, रीति–रिवाज, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यंजना मिलती है। जीवन के सत्य और यथार्थ रुप इन लोकोक्तियों में दिग्दर्शित होते हैं। वर्ण्य– विषय के आधार पर कुरमाली कहावतों के कई वर्ग बन सकते हैं। जैसेः–

धर्म–सम्बन्धी	–	जे करे पुइन, से हेइ ढिपा सुइन।
कृषि–सम्बन्धी	–	आमे बाम, तेंतेइरे टान।
सूचना–सम्बन्धी	–	सावनेक गाछी आर माघेक बाछी।

नीति–सम्बन्धी	–	हेंठ मुड़िया, बेड़े एंड़िया
शिक्षा–सम्बन्धी	–	नदी धारेक चास, मिछाइ करे आस। घुसल चट नेहाइ परे।
आलोचना–सम्बन्धी	–	सुमेक धन सइताने खाय, बांचे से आदालत जाय।
अर्थ पोषण	–	माछेक मायेक पूतेक सक, आधा सांप आधा बक।
व्यंग्य	–	कन बिहाइ दुइ गड़े आरता।
जाति–सम्बन्धी	–	बांस बने डोम काना। घासी खजेइं कुमनी आर चासा खजेइ डिमनी।
पुष्टि–सम्बन्धी	–	एक बहुइं ठाकुर– दुइं बहुइं कुकुर, तीन बहुइं भाले भाकार–भुकुर।
संस्कृति.	–	हाँड़ी किनथीन ठंकी के, आर केनिआइ करथिन देखि के।

5. पहेलियाँ:– ग्रामीण जनता में पहेलियों का बड़ा व्यापक प्रचार है। कुरमाली समाज में पहेलियाँ मनोरंजन के लिए करते हैं। रात्रि मे भोजनोपरान्त कहीं एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं और एक दूसरे को पहेलियाँ पूछकर अपना मनोरंजन करते हैं। कुरमाली में पायी जाने वाली पहेलियों को भी कई वर्गों में रखा जा सकता है। जैसे:–

भोजन सम्बन्धी:	–	लकलक डाँड़ी चकचक पात। खाइत के मधुरस, उलगेइत के कपास।। –ईख
प्राणी सम्बन्धी	–	आवट गरु दाँवब कइसे। गिरल पइना बिछब कइसे।। –सांप
प्रकृति–सम्बन्धी	–	राइते गरु गठाला, दिने गरु नाइ। कन डहरे गरु गेला, गठे गोबर नाइ।।

—तारे

फूल—फल सम्बन्धी —गाछेक नाम हीरा,

ताहाँ फरे गुड़, बेगइन जीरा।।

—महुआ

अंग—प्रत्यंग सम्बन्धी— बाघ बाघिन हार जते, कुकुर बुने धान

बनेक बाँदर नुड़ा झाड़े, खेड़िया किसान।।

उत्तर — दांत, जीभ, पेट, हाथ

इसके अतिरिक्त खेती सम्बन्धी, भोजन सम्बन्धी, घरेलू—वस्तु सम्बन्धी, अनेक पहेलियाँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुरमाली लोक—साहित्य का अपना एक अच्छा खासा इतिहास है और अपने गर्भ में साहित्यक विधि निधियों को संजोये हुए है।

शिष्ट साहित्य

कुरमाली के मध्यकाल (सन् 1750—1850) से शिष्ट साहित्य का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि सन् 1485 ई. के आस—पास चैतन्य महाप्रभु का पदार्पण झारखण्ड प्रदेश में हुआ। उन्हीं के द्वारा लोगों में वैष्णव—भावना का प्रचार—प्रसार हुआ था। तत्कालीन कवियों ने रामायण और महाभारत से कथा वस्तु लेकर गीतों की रचना की। राम—कृष्ण को अपना नायक मानकर उनकी लीलाओं को ललित पदों में रचकर गीतों का रूप दिया। इनके वर्ण्य— विषय की तुलना किसी भी भक्तिकालीन कवि से की जा सकती है। अधिकांश कवि वैष्णव मतालम्बी थे।

मध्यकाल के कुरमाली लोककवियों में बरजू राम, नरोत्तमा, गौरांगिया, दुर्योधन, पिताम्बर, दीना, रामकृष्ण, विनन्द सिंह आदि प्रमुख हैं। इन जन कवियों की विविध रचनाओं से लगता हैं कि हिन्दी के भक्तिकालीन कवियों के साथ कुरमाली के मध्यकालीन कवियों को एक भावनात्मक सूत्र में बांध दिया गया है। काल के कवियों के मुख्य वर्ण्य—विषय थे— भक्ति, श्रृंगार, प्रकृति चित्रण आदि। यहाँ पर तत्सम्बन्धित गीतों की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं:—

सिरि गुरू गोविन्द पदे, करि उपदेश,

बन्दी माता गौरी गनेस, दया कर सारदा शेष। —में भक्ति का पुट

मिलता है तो दूसरी ओर बरजू राम के–

भूसा कुटइते नर, बिसरालांय हरिहर,

अन्त काले पंथ भूलि गेल, नर जन्म विधि काहे देल। –में दार्शनिक भाव झलकता है, तो दूसरी ओर बिनन्द सिंह के गीतों में–

जमुना किनारे बन, ताहाँ गिरि गोबरधन,

राम कान्हु मिली दुइ जने, धेनु चराइ बिरिनदा बने। –में वात्सल्य का चित्रण हैं।

मिलल दुहुजन कहतऽ से बिबरन,

बिहरतऽ मिली साथ गो, बड़ी भेला रसे केरि बात। –में संयोग–श्रृंगार का वर्णन है तो

बसन्त समये दूती, गृहे नाई मर ब्रजपति,

नाना फूलऽ फूले, मधुमासे, सुनो सखी गो,

अबला धइरज धरि किसे। –में विप्रलम्भ श्रृंगार है। संयोग–श्रृंगार की अपेक्षा वियोग–श्रृंगार की ओर अधिक झुकाव रहा है। वियोग की प्रायः सभी अन्तर्दशाओं का वर्णन गीतों में हुआ है।

इस युग के कवियों की रचनाओं में अंलकार, तुक और छन्द का भी सचेत प्रयोग हुआ है। अलंकारों में उपमा और रूपक का बाहुल्य है। मध्यकालीन कवियों में तुकान्त गीतों की रचना की है। तुक गीतों का आवश्यक अंग बन गया था। गीतों को सरस बनाने के लिए मुख्य प्रवृत्ति तुकान्त गीतों की ओर थी। परन्तु, यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें तुक के नियमों का पूर्णतः निर्वाह किया गया है। गीतों में प्रायः हाय–हाय, ओहो रे, हाय रे हाय, मरि हाय रे, बाबा आदि प्रत्येक पंक्ति के अन्त में गाये जाते हैं। यह टेक पद का काम करती हैं। इसका गीतों के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। सामान्यतः गीत चार कड़ी की भनिता सहित हैं। प्यार छन्द के 'चौंतीसा' गीत भी इस युग के कवियों की एक विशिष्ट देन है।

लिखित साहित्यः–

यों तों कुरमाली शिष्ट साहित्य का प्रारम्भ कुरमाली के मध्यकाल से माना जाना चाहिए। परन्तु, इसका उत्कर्ष काल सन् 1900 ई. से ही है। सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने सन् 1903 ई. में "भारत का भाषा सर्वेक्षण" में कुरमाली

भाषा के व्याकरणिक विशेषताओं का विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् सन् 1903 ई. में जी. एफ. हेमिल्टन ने बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद गद्य में किया। स्व. निरंजन महतो ने सन् 1921 ई. में "नेठापाला" नामक गीत संग्रह बालासोर उड़ीसा से प्रकाशित कराया। करम संगीत नामक पुस्तक श्री बुधु महतो ने सम्वत् 1970 में बम्बई से प्रकाशित कराई।

सन् 1953 ई. में श्री राजेन्द्र प्रसाद महतो ने 'कपिला मंगल' नामक स्वरचित पुस्तक प्रकाशित कीं। इसी वर्ष चक्रवर्ती देवकी नन्दन प्रसाद की दो पुस्तकें "ना धरे आँखि जल ऑखि पाते, "तथा" केते अकुहा भाषा, केते उत्तला आसा" प्रकाशित हुईं। स्व. राजा उपेन्द्र नाथ सिंह ने विनन्द सिंह और गौरंगिया के गीतों को संग्रह कर "आदि झूमर संगीत" तथा "ताल मंजरी" नामक दो पुस्तकें 1956 ई. के आस–पास प्रकाशित करायी। सन् 1958 ई. में डा. विश्वनाथ प्रसाद एवं सुधाकर झा शास्त्री ने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव मानभूम एण्ड धलभूम" में कुरमाली भाषा के गीतों के साथ–साथ व्याकरणिक विशे ताओं पर प्रकाश डाला। यह पुस्तक "बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्" पटना से प्रकाशित हुई। इसके पूर्व डा. नन्द किशोर सिंह ने सन् 1957–58 में अपने लघु शोध प्रबन्ध के लिए 'छोटानागपुर के कुरमाली लोकगीतों का अध्ययन' में लगभग 300 गीतों का संकलन प्रस्तुत किया। फिर 1962 ई. में इन्होंने कुरमाली बोली: एक भाषा तात्विक अध्ययन" नामक शोध–प्रबन्ध लिखकर विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन से पीएच. डी. की उपाधि ली।

सन् 1975 ई. के बाद से अब तक अनेकानेक गद्य–पद्य काव्य ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। 1982 ई. के पश्चात् कुरमाली साहित्य विषय–वस्तु की दृष्टि से एक नया मोड़ ले रहा है। नई रचनाएँ विषय वैविध्य एवं भाषा शैली की दृष्टि महत्वपूर्ण हैं। भाषा में गीत तथा अभिव्यंजना शक्ति में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। सामाजिक विषयों पर विभिन्न शैलियों में रचनाएँ हो रही हैं।

कुरमाली साहित्य के विकास में पत्र–पत्रिकाओं की अहम भूमिका रही है। करम तीर्थ, मानभूम एक्सप्रेस, आखड़ा, पुरुंग, टउआ, शालपत्र, और बानार उल्लेखनीय पत्रिकाएँ है। सन् 1975 के बाद निमंत्रण पत्र, पम्फलेट आदि कुरमाली भाषा में छपने लगे हैं। कुरमाली गद्य के विकास में इनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

कुरमाली भाषा अन्तर प्रान्तीय होने के कारण मुख्यतः तीन लिपियों– देवनागरी, बंगला और उड़िया का प्रयोग होता रहा है और प्रत्येक में कई एक

पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुरमाली भाषा की अपनी कोई लिपि नहीं है।

अस्तु, कुरमाली भाषा और साहित्य का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है। अमित सम्भावनाओं को लेकर दिनानुदिन पुष्पित–पल्लवित हो रहा है। राँची विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर तक अध्यापन की व्यवस्था है तथा अनेक छात्र–छात्राएँ शोधरत हैं।

संदर्भ संकेत

1. ना धरे आँखि जल आँखि पाते, देवकी नन्दन प्रसाद पृ. सं0– 7.
2. झारखण्डी बंगला उपभाषा, डा. डी. एन. साहा, पृ. सं0–21.
3. छोटानागपुर–संतालपरगना कुर्मी महासभा स्मारिका, रामगढ़, पृ. सं0–3.
4. कुर्मांचल पत्रिका, पृ. सं0–49.
5. शाल–पत्र, पृ. सं0–28, अंक–2, 1977.
6. लि. सर्वे ऑफ इन्डिया, डा. जी. ए. ग्रियर्सन, पृ. सं0–147.
7. भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा. उदय नारायण तिवारी, पृ. सं0–218.
8. झारखण्डी बांगला उपभाषा, पृ. सं0 –3.
9. लि. सर्वे ऑफ इण्डिया, खण्ड 5, भाग दो, पृ. सं0–140.
10. लि. सर्वे ऑफ सदर सब डिविजन ऑफ मानभूम एवं धालभूम, डा. विश्वनाथ प्रसाद एवं सुधाकर झा, पृ. सं0–12.
11. भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ. सं0–140.
12. कुर्मी क्षत्रीयः संक्षिप्त इतिहास, सं. गुप्तनाथ सिंह, पृ. सं0–366.
13. हिन्दी का सांस्कृतिक परिवेश, लालजी सिंह, पृ. सं0–106.
14. पथें चालाक लेहा नमस्कार, डा. नन्द किशोर सिंह, पृ. सं0–10.
15. कुरमाली लोक गीतः साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, डा. सन्तोष कुमारी जैन, पृ. सं0–9.
16. झारखण्डेर कुड़मि, राधा गोविन्द महतो, पृ. सं0–12.
17. झारखण्डी बांगला उपभाषा, पृ. सं0–5.
18. मगही भाषा और साहित्य, डा. सम्पति आर्याणी, पृ. सं0–75.

19. कुरमाली भाषा का व्याकरण, डा. चन्द्रमोहन महतो, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध।

20. कुरमाली बेइआकरण, श्याम सुन्दर महतो।

21. कुर्माली भाषा तत्त्व, खुदी राम महतो।

22. मगही संस्कार गीत, डा. विश्वनाथ प्रसाद।

23. झूमर और झूमर देश, गिरीश चन्द्र महन्ता।

24. कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियाँ, एच. एन. सिंह।

25. सदानी भाषा का संक्षिप्त परिचय, योगेन्द्र नाथ तिवारी।

26. नागपुरी सदानी बोली का व्याकरण, पी. शा. नवरंगी।

27. पंचदश लोकभाषा निबन्धावली, बिहार राष्ट्र–भाषा परिषद, पटना।

28. झारखण्डेर लोकसाहित्य, डा. बी. सी. महतो।

29. आदिवासी कुरमी समाज, स्मार पत्र।

30. कुरमाली एकादमी, स्मार पत्र।

***

कुरमाली लोक–साहित्य

कुरमाली भाषा का नामकरण कुरमी जाति के नाम पर हुआ है। 'कुर्म' में 'आली' प्रत्यय लगाकर कुरमाली शब्द बना है। इसे अन्य नामों– कुर्माली, कुड़माली, कुड़मालीठार एवं महतो बोली से भी अभिहित किया जाता है।

यह भाषा बिहार के धनबाद, राँची, सिंहभूम, हजारीबाग, गिरिडीह, संतालपरगना, पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, झाड़ग्राम, प. बांकुड़ा, वीरभूम, उड़ीसा के क्योंझर, बोनई, बामड़ा, मयूरभंज और सुंदरगढ़ में बोली जाती हैं। इसके अतिरिक्त असम और बंगलादेश में भी इसके बोलने वाले हैं, किन्तु इन क्षेत्रों में बोलने वालों की संख्या बहुत सीमित है।

कुरमाली भाषा का क्षेत्र एक ऐसे संधि स्थल पर अवस्थित है जिसकी उत्तरी सीमा पर मगही, उत्तर पूर्व में अंगिका, पश्चिम में नागपुरी तथा कुडुख़, दक्षिण–पश्चिम में हो और पूर्व में बंगला बोली जाती हैं। उड़ीसा का कुरमाली क्षेत्र चारों ओर उड़िया से घिरा हुआ है। कुरमाली सदा से ही साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित रही है। पता नहीं, लोकसाहित्य मर्मज्ञों, अनुसंधताओं, विज्ञानवेत्ताओं, और जातिविज्ञान–वेत्ताओं का ध्यान इधर क्यों नहीं गया? विगत कई वर्षों से राँची विश्वविद्यालय में जनपदीय भाषाओं की स्नातकोत्तर स्तर तक पढ़ाई की व्यवस्था होने के कारण लोकभाषाओं को बड़ा बल मिला है और विविध विधाओं में साहित्य–सृजन होने लगा है। इसके कुछ वर्षों पहले तक यह (कुरमाली) विशुद्ध रुप में लोक–साहित्य के रुप में ही मिलता था।

कुरमाली लोकसाहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है। यह परिमाण में जितनी समृद्ध है, काव्यगत विविधताओं में भी उतना ही उत्कृष्ट है। इसकी विविध विद्याओं में सरसता, गम्भीरता, मृदुता, लोच आदि सभी कुछ पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

लोकसाहित्य को जन–जीवन का आइना कहा गया है। इस आइने में अनपढ़, मूढ़ जनता की भावनाओं का, उनकी मनोवृतियों का प्रतिबिम्ब झलकता हैं। भारतीय जनजीवन की सदा से ही यह प्रवृत्ति रही है कि वे अपने सुख–दुःख की बातों को सहज ढंग से लोकसाहित्य के विविध रूपों में प्रकट करता आया

है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि किसी भी प्रदेश की संस्कृति का जीता–जागता चित्र उसके लोक–साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। समाज के विकास की सूक्ष्मतम रेखा, सामाजिक अवस्था, जनमानस की आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, आवेश–आक्रोश, शौर्य–पराक्रम, राग–वैराग्य, मनन–चिन्तन सभी की सटीक एवं सजीव अभिव्यक्ति लोक–साहित्य के माध्यम से होती है।

कुरमाली लोक–साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके मुख्य दो रूप मिलते हैं– गद्यरूप और पद्यरूप। इसके गद्यरूपों में लोक कथा, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ हैं। काव्य–रूप में लोकगीत हैं। लोकगीतों के विविध रूप हैं जो मौसम के अनुसार गाये जाते हैं। इन लोकगीतों में कुरमाली संस्कृति, रीति–रिवाज, विचार–धारा, चिन्तन–पद्धति कृषक–जीवन, धर्म, विश्वास, आनन्द–वेदना एवं दार्शनिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं। इस संदर्भ में एक बात का उल्लेख करना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है कि कुरमाली के जनकवियों के गीत भी बहुत पुराने हैं। ये गीत भी जन–मानस के कण्ठाहार बन गये हैं। यद्यपि ये गीत लोकगीतों की परिधि में नहीं आते। फिर भी, इनकी लोकप्रियता इन्हें लोकगीतों के समीप खड़ा कर देती है, परन्तु, लोकगीतों की संख्या इनसे कहीं ज्यादा है।

कुरमाली लोक–साहित्य की जो सामग्रियाँ मिलती हैं, उन्हें हम मोटे तौर पर पांच वर्गों में रख सकते हैं–

1. लोकगीत, 2. लोक–कथायें, 3. लोकनाट्य,
4. कहावतें, 5. पहेलियाँ।

1. लोकगीत–

कुरमाली में लोकगीतों की संख्या बहुल है। आज भी ये गीत लोक–मुख में जीवित हैं। गीत अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी हैं। कुरमाली गीतों की परम्परा अति प्राचीन है। कोई भी अनुष्ठान गीत एवं नृत्य के बिना सम्पन्न नहीं होता। अधिकांश गीत नृत्यगीत हैं। राग के द्वारा ही गीतों के पार्थक्य और वैशिष्ट्य को समझा जा सकता है। कुरमाली जीवन के हरेक पहलू, विविध दृष्टिकोण और बहुआयामी विचार–धाराओं को कुरमाली लोकगीत संस्पर्श करता है।

कुरमाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषता यह है कि अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर के रूप में हैं। छन्द–विधान के नियम से पूर्णतः मुक्त हैं। इसके अपने

छन्द हैं जो गेय हैं। गीतों के लय द्वारा ही शैलीगत तत्त्व को पहचाना जा सकता है। कहीं--कहीं स्वतः अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

कुरमाली लोकगीतों को कई वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे– (क). संस्कार–गीत, (ख). ऋतु–गीत, (ग). देवी–देवताओं के गीत, (घ). श्रम–गीत, (ड़). खेल–गीत, (च). जाति–गीत, (छ). प्रबन्ध–गीत आदि। प्रबन्ध–गीत के अन्तर्गत महाराई के गीत आ सकते हैं। अन्य जनपदीय भाषाओं में जो पंवारे गीत मिलते हैं। उसी के समकक्ष कुरमाली के महाराई गीत हैं। ये गीत बहुत लम्बे होते हैं। इसमें कुरमी समाज के रीति–रिवाज, संस्कार, अनुष्ठान, वंशादि का वर्णन रहता है। इसे कुरमी समाज का वेद कहा जा सकता है। संक्षेप में कुरमाली के लोकगीत हैं– उधवा, ढप, बिहा, डमकच, सरहूल, नटुआ, डाँइड़धरा, जावा–करम, एढ़ेइया, डाबका, बाँदना, कुंवारी झुपान आदि।

साधारणतः कुरमाली के लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। करम गीतों में अंकुरोदय, पुनर्विवाह, कृषि–कर्म, हास्य–व्यंग्य, जीवन–यापन की पद्धति का उल्लेख मिलता है। विवाह गीतों में कुरमाली संस्कृति, सामाजिक व्यवहार, खान–पान, दैनिक कर्म, रहन–सहन की छाप परिलक्षित होती है। कुरमाली समाज में कन्या का महत्वपूर्ण स्थान है। वह परिवार के लिए बोझ नहीं समझी जाती। जिस प्रकार वन की शोभा पुष्प हैं, उसी प्रकार घर की शोभा कन्या। प्रस्तुत गीत में इसका कितना सरस वर्णन हैं–

बाबा बने माझे, फूटल धधकी फूला
हाय रे! बन सोभी गेला।
घारा माझे बेटी रे जनम लेला
हाय रे! घारा सोभी गेला रे।

कुरमाली के कुंआरी झुपान गीतों में जादू–टोना, तंत्र–मंत्र एवं अन्धविश्वास का वर्णन मिलता है। डाँइड़धरा, ढप आदि गीतों में दार्शनिक भाव झलकता है तो डमकच गीतों में भाव–सौन्दर्य के साथ–साथ हास्य का पुट भी मिलता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुरमाली लोकगीतों में जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ और सजीव चित्रण हुआ है।

2. लोककथाएँ–

कुरमाली में लोककथाओं का विशाल भंडार मिलता है। साधारणतः लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना ही रहा है। लोग रात को घर में,

खलिहान के कुम्बा या धंधौरा के चारों ओर बैठकर जाड़े की लम्बी रात काटने के लिए कहानियाँ कहते हैं। कुरमाली लोककथाओं में अलौकिक और असम्भव बातों की भरमार रहती है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि जो लोककथाएँ अमेरिका, यूरोप एवं हमारे देश के अन्य लोकभाषाओं में प्रचलित है, थोड़ा–बहुत अन्तर के साथ कुरमाली में भी उपलब्ध है। कुरमाली के लोककथाओं को मुख्य रूप से तीन वर्गों में रख सकते हैं। 1. धार्मिक लोक कथाएँ, 2. शिक्षाप्रद लोककथाएँ और 3. मनोरंजन प्रधान लोककथाएँ।

'करमा–धरमा' तीन ठकुराइन, आर नि रहम, आदि धार्मिक लोककथा के अन्तर्गत परिगणित किये जा सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धिक दाम, राइकस आर अमरी, गरखिया आर राजकुमारी, अटकुरा राजा, मूंगा–मोती, करम–कापाड़ आदि शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। बाउना, बाँड़ासियाड़, पुइतू बूढ़ा, सियारेक चउछालि, बेनिया आर चारवाहा आदि मनोरंजन प्रधान कथाएँ हैं।

3. लोकनाट्य–

हमारे देश में लोकनाट्य की परम्परा बहुत प्राचीन हैं। यद्यपि लोकनाट्यों में नाटक के सभी तत्त्व नहीं मिलते, फिर भी नाटक के कुछ न कुछ तत्त्व तो अवश्य ही मिलते हैं। वस्तुतः साहित्यिक नाटक के नींव ये लोकनाट्य ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। कुरमाली के लोकनाट्य हैं– छौ नृत्य, नटुआ नृत्य, डमकच और माछानी।

छौ–नृत्य में नर्त्तक अपने मुंह पर मुखौटा धारण करता है और अपने अंग–प्रत्यंग के हाव–भाव द्वारा भावों को अभिव्यक्त करता है। कथा–वस्तु के रुप में पहले गीत गाया जाता है। गीत के द्वारा ही दृश्य भी बदला जाता है। यह मौसमी नृत्य है। परन्तु, अपनी लोक प्रियता के कारण अब यह अखाड़े से निकलकर अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर आ गया है।

नटुआ बहुत पुराना नृत्य है। गीत के द्वारा कथावस्तु का परिचय दिया जाता है। यह वीर रस का नृत्य है। नर्त्तक अपने शरीर को रंगीन फीतों से सुसज्जित करता है और अपने हाथों में ढाल और तलवार लेकर नृत्य करता है। उसकी भंगिमा युद्ध की स्थिति की होती हैं।

डमकच विवाह के अवसर पर होने वाला नृत्य है। जब वर विवाह करने के लिए चला जाता है तो घर की स्त्रियाँ मर्दों का पोशाक पहनकर नृत्य करती हैं। कभी–कभी वे विवाह का अभिनय भी करती हैं तो कभी किसी अन्य

कथावस्तु को लेकर अभिनय करती हैं। गीत प्रश्नोत्तर के रुप में होते हैं जिससे हम कथोपकथन शैली कह सकते हैं।

माछानी लोकनाट्य में स्त्री–पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं। गीतों के द्वारा एक दूसरे को प्रश्न करते हैं। गीत ही इसकी कथावस्तु है। बीच–बीच में गद्य शैली का प्रयोग होता है। इस नृत्य में दृश्य भी बदलते हैं। कथावस्तु व्यंग्यात्मक शैली में होती हैं।

4. कहावतें–

कुरमाली कहावतों के सम्बन्ध में कहा जा सकता हैं कि हास्य, व्यंग्य, ललकार, चेतावनी, सूचना, सूक्ति के द्वारा गूढ़ बातों की शिक्षा दी जाती हैं। मानव–जीवन की कोई ऐसी गतिविधि नहीं जिसे कहावतों के क्षेत्र से बाहर कहा जा सकें। कुरमाली लोकोक्तियों में लोक–जीवन के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, रुचि–अरुचि, ईर्ष्या लोभ, सभी की सूत्र व्याख्या हुई है। इसके अतिरिक्त कुरमी जाति के आचार–विचार, रीति–रिवाज, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यंजना मिलती हैं। जीवन के सत्य और यथार्थ रुप इन लोकोक्तियों में दिग्दर्शित होते हैं। वर्ण्य–विषय के आधार पर कुरमाली कहावतों के कई वर्ग बन सकते हैं। जैसेः–

धर्म सम्बन्धी	–	जे करे पुइन, से हेइ ढिपा सुइन।
नीति सम्बन्धी	–	हेंठ मुड़िया, बेड़े एँड़िया।
कृषि सम्बन्धी	–	आमे बाम, तेंतेइरे टान।
पुष्टि सम्बन्धी	–	एक बहुइं ठाकुर, दुइ बहुइं कुकुर। तीन बहुइं देखे भाकार भुकुर।।
शिक्षा सम्बन्धी	–	नदी धारेक चास, मिछाइ कर आस। घुसल चट नेहाइ परे।
आलोचना सम्बन्धी	–	सुमेक धन सइताने खाय, बांचे से आदालत जाय।
सूचना सम्बन्धी	–	सावनेक गाछी आर बाछी। डंगुआ जेनिक घार आर दामड़ा गरुक हार।
अर्थ पोषण	–	माछेक मायेक पूतेक सक, आधा सांप आधा बक।
व्यंग्य	–	कन बिहाइं दुइ गड़े आरता।
संस्कृति	–	हांड़ी किनथिन ठंकी के आर केनिआइ, करथिन देखि के।

जाति सम्बन्धी — बांस बने डोम काना।
घासी खजे कुमनी आर चासा खजे डिमनी।

5. पहेलियाँ–

ग्रामीण जनता में पहेलियों का बड़ा व्यापक प्रचार है। कुरमाली समाज में पहेलियाँ मनोरंजन के लिए कहते हैं। रात्रि में भोजनोरान्त कहीं एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो एक दूसरे को पहेलियाँ पूछ कर अपना मनोरंजन करते हैं। इसे तो मनोरंजन होता ही है, साथ–साथ बुद्धि को तीव्रतर बनाने का प्रयास भी है। कुरमाली में पायी जाने वाली पहेलियों को हम कई वर्गों में रख सकते हैं। यथाः

भोजन सम्बन्धी — लकलक डांड़ी चकचक पात।
खाइत के मधुरस, उलगेइत के कपास।
–ईख

प्राणी सम्बन्धी — आबट गरु दाँवब केसे।
गिरल पइना बिछब केसे।
–सांप

प्रकृति सम्बन्धी — राइते गरु गठाला, दिने गरु नाइ।
कन डहरे गरु गेला गठे गोबर नाइ।
–तारे

अंग–प्रत्यंग संबंधी — बाघ–बाघिन हार जते, कुकुर बुने धान।
बनेक बाँदर नुड़ा झाड़े, खेड़िया किसान।
उत्तर– दांत, जीभ, पेट, हाथ।

फल–फूल संबंधी — गाछेक नाम हीरा
ताहाँ फरे गुड़ बेइगन जीरा।
– महुआ

इसके अतिरिक्त खेती सम्बन्धी, भोजन सम्बन्धी, घरेलू–वस्तु सम्बन्धी अनेक पहेलियाँ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुरमाली लोक–साहित्य का अपना एक अच्छा–खासा इतिहास हैं और अपने गर्भ में साहित्यिक विविध निधियों को संजोये हुए हैं। खेद है कि इतने समृद्ध साहित्य का आज तक अपेक्षित अध्ययन नहीं हो सका है। अस्तु, मंथर गति से ही सही, अब इसका पल्लवन हो रहा है।

***

कुरमाली के संस्कार गीत

कुरमाली भाषा का नामकरण कुरमी जाति के नाम पर हुआ है। इस भाषा के विकास या रुप–विधान में कुरमियों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है। यह भाषा केवल कुरमियों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि समय के अन्तराल में अन्य जातियों ने भी इसे अपनाया है और उनके भाव–विनिमय का साधन बन गयी है।

कुरमाली एक अन्तर प्रान्तीय भाषा है। यह बिहार के छोटानागपुर, संताल परगना, उड़ीसा के क्योंझर बोनई, बामड़ा, मयूरभंज, सुन्दरगढ़ एवं पश्चिम बंगाल के सीमान्त जिलों में जो झारखण्ड की सीमा से सटे हैं, में बोली जाती हैं। इसके विस्तार क्षेत्र के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रचलित है–

"सिरव शिखर नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर।"

कुरमाली भाषा का लोकसाहित्य विषय–वैविध्य की दृष्टि से विशाल एवं उच्च काव्य मूल्य की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। काव्यरुप में लोकगीत हैं। लोकगीतों के भी विविध रुप हैं जो मौसम के अनुसार गाये जाते हैं। ये गीत–करम, एड़ेइया, बाँदना, ढप, टुसू, बिहा, डमकच, डाबका, सरहूल, डाँइड़धरा, उधवा, कुँवारीझुपान नाम से जाने जाते हैं। इन लोकगीतों में कुरमाली जन–मानस के समस्त आचार–विचार, हर्ष–विषाद, रूढ़ियाँ, आशा–आकांक्षाएँ, प्रवृत्तियाँ एवं संस्कार प्रतिबिम्बित होते हैं। अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर शैली में हैं। कुरमाली लोकगीतों की विशेषता है कि विविध प्रकार के गीतों के राग–अलग–अलग हैं तथा अलग–अलग ताल भी। किसी भी गीत की पहचान उसके राग से ही होती है। विविध प्रकार के गीतों के वर्ण्य–विषय भी पृथक–पृथक हैं। अधिकांश लोकगीत किसी न किसी अनुष्ठान या संस्कार से सम्बन्धित हैं। कुरमाली समाज का कोई अनुष्ठान या पर्व–त्योहार ऐसा नहीं है जो लोक–गीतों के बिना सम्पन्न होता हो। जीवन का कोई पक्ष, भाव तथा क्रिया–कलाप ऐसा नहीं जो इन लोकगीतों की परिधि में न आता हो। कुरमाली समाज की समग्र सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना का दिग्दर्शन उनके लोकगीतों में किया जा सकता हैं।

यहाँ पर हमारा प्रसंग कुरमाली के संस्कार गीतों का है। भारतीय जन–जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। संस्कार का धर्म के साथ अविछिन्न सम्बन्ध है। शास्त्रों में संस्कारों की संख्या सोलह बतलाई गई है। पर कुरमाली

समाज में ये सोलह संस्कार सम्पन्न नहीं होते हैं। अन्य समाज में प्रचलित सोहर, मुण्डन, यज्ञोपवीत, कर्ण–छेदन, टीका आदि से सम्बन्धित संस्कार गीत कुरमाली में नहीं मिलते। यज्ञोपवीत का विधान कुरमाली समाज में नहीं है। इस समाज में भी मुण्डन, कर्ण–वेधन, अन्न–प्राशन का विधान तो है। परन्तु, इन्हें केवल औचारिक सामाजिक कर्म–काण्ड के रूप में ही लिया जाता है। फलतः इनसे सम्बन्धित कोई पृथक गीत नहीं मिलते।

प्रत्येक समाज को तीन संस्कारों से गुजरना पड़ता है– जन्म संस्कार, विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार। कुरमाली समाज भी इन संस्कारों से परे नहीं है। अन्य जनपदीय भाषाओं के लोकगीतों की भाँति कुरमाली में भी संस्कार गीतों की संख्या अन्य विषयों के गीतों से बहुत अधिक है। संस्कारों का महत्व प्रत्येक समाज में है क्योंकि इन्हीं से समाज संचालित और विकसित होता है। भारतीय परम्परा में इन संस्कारों का बहुत अधिक महत्व है। लोकगीतों का संस्कार से अनिवार्य सम्बन्ध है। फलस्वरूप प्रत्येक नेग गीतों के द्वारा ही सम्पन्न होता है।

स्थूल रूप से कुरमाली विवाह संस्कार गीतों को दो वर्गों में रखा जा सकता है; वरपक्ष के गीत तथा कन्यापक्ष के गीत। पुनः नेगाचार के अनुसार वरपक्ष और कन्यापक्ष के गीतों को कई श्रेणियों में रखा जा सकता है; जैसे लग्न, चुमावन, मण्डपाच्छादन, बड़ी पारने, पानी सहने, बाँध कोड़ने, अम्ल खाने, परिछन, चुमावन, द्वार छेकंने के गीत आदि। इनके अतिरिक्त और भी छोटे–छोटे रस्म हैं। यथा –गुवालुका, घटीलुका या पेटी पटका। यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि छोटे–बड़े सभी रस्मों के गीत कुरमाली में प्राप्त होते हैं। यहाँ पर कुछ प्रमुख संस्कारों से सम्बन्धित गीतों का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है।

वरपक्ष के संस्कार गीत में प्रथमतः लग्न–चुमावन का रस्म सम्पन्न होता है। वर पक्ष की ओर से लग्न लायी जाती हैं। उस लग्न को वरपक्ष की स्त्रियों द्वारा चुमाया जाता है। माँ बेटे को लग्न में गुवा–पान लाने का आग्रह करती है। तत्सम्बन्धी एक गीत प्रस्तुत है–

उठ गो बेटा, बइसु गो बेटा
लगन लेहु गुवा–पान गो
कइसे हामें उठम माइ गो
कइसे हामें बइसम गो।
भुंइयो धरी उठु बेटा।

लग्न–चुमावन के पश्चात् ही वर को उबटन (हल्दी–तेल) लगाने का रिवाज है और यह रस्म प्रतिदिन शाम को भाभी को पूरा करना पड़ता है। इस समय ननद व्यंग्य–वाण से भाभी को प्रहार करती है। उबटन लगाते समय भाभी पसीने से तर–तर हो जाती है। पीसने से तर–तर देखकर ननद भाभी को अपने नैहर से नौकरानी मँगाने को कहती है। प्रत्युत्तर में भाभी कहती है कि उसके पिताजी को इतना सामर्थ्य नहीं कि वे नौकरानी भेज दें। प्रस्तुत गीत इसी से संदर्भित हैं:–

बाबा, हरदी माखाइते भउजि घामी गेला
भउजि बड़ी सुखिनी रे।
बाबा भउजिक बापे कही रे पाठाये देहाक
देतेइक कामिनी, डलाये देतेइक बिमनी रे।
बाबा, हामर बाप हेके रे, जनमेक कंगाल
कहाँ पावतेइक कामिनी, डलाये देतेइक बिमनी रे।

अधिवास के दिन वर के घर में काफी चहल–पहल रहती है। घर–परिवार को लोग सोचते हैं कि अब नई बहू आने में विलम्ब नहीं हैं। मण्डपाच्छादन (छमड़ा–मड़वा) के बाद बड़ी पारने का नेग है। बांस के एक नये छाता में बड़ी पारने का काम सम्पन्न किया जाता है। उरद की दाल की बड़ी बनाकर छाता पर रखी जाती हैं। बड़ी बनाने के लिए उरद की दाल पीसने का काम भाभी करती है, जिससे उसकी बाँहों में दर्द होने लगता है। इस पर ननद भाभी को उलाहना देती है।

पुरुबेका लड़ही–पाटी, पश्चिमें का सिलोटिया,
पिसइते घँसइते हो प्रभु, साले लागल बाँहिया
बाबा, मांगु गे धनी, गटा चारी रे कामिनी।

अधिवास के दिन ही वर के घर की स्त्रियाँ नये घड़े लेकर गीत गाती हुई किसी तालाब या नदी का पानी लाने के लिए जाती है, जिसे पानीसहा/जलसहा कहा जाता है। इस पवित्र जल को मण्डप में रखा जाता है। यह रस्म दोनों पक्ष की ओर से किया जाता है। वरपक्ष की स्त्रियाँ कन्या का नाम लेकर उसके भाग्य को कोसती हैं कि उसका भाग्य कितना खोटा है कि कहीं पानी नहीं मिलता। इसी प्रकार कन्यापक्ष की स्त्रियाँ वर का नाम लेकर उसके भाग्य को कोसती हैं। दोनों ही पक्ष की स्त्रियाँ एक दूसरे पक्ष को पानी लाने का पारिश्रमिक मांगती है। प्रस्तुत है इससे सम्बन्धित एक गीत–

जल सहे गेली, जल ना मिले,
फालनी जल ना मिले।
तर एसन धिक जीवन लौ कन्या, जल ना मिले
ठेसे–बजेड़े आने गो बाबा, कोजल एकम जल
कांटाइं–झंटाइं आनलँ गो निरमल पानिया
माने–माने बाहिर कर गो बाबा पाँच टाका रे।

वर–प्रस्थान के पूर्व आम–विवाह की रस्म पूरी किया जाता है। वर का आम–वृक्ष के विवाह के अवसर पर "अम्ल" खाने का नेग होता है। अम्ल खाने वालों में वर की माँ, चाची, फुफू आदि रहती हैं जो दिनभर के उपवास के पश्चात् अम्ल खाती हैं। आम–विवाह का सारा कार्य वर के बहनोई (जीजा) द्वारा कराया जाता है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे नेग से संदर्भित होते हैं। अम्ल खाने समय वर से पूछा जाता है कि जिस आम पेड़ के नीचे अम्ल खा रहे हो, वह किसने रोपा है? वर उत्तर देता है कि यह वृक्ष मेरे बाबाजी का लगाया हुआ है–

कने तर आम गाछ रपी देतोऊ?
कने तर अम्ल खातोऊ?
आजाइं मर आम गाछ रपी देताक।
आजिइं मर अम्ल खाती गो।

इस नेग के सम्पन्न होने के क्रम में सालियों का हास–परिहास चलता है। सालियाँ जीजा से कहती हैं–

आम तेंतेइर बेड़े चेंका, बहनोई हेके बड़े लेका।
नाटइ ना बांधे जाने, तावे बहनेइ छँदऽ–रँदऽ।

कुछ गीतों में बहनोई का नाम, पता, आने के उद्देश्य के सम्बन्ध में तथा उसको एक लालची प्रकृति के आदमी के रुप में चित्रित किया गया है।

आम–विवाह के पश्चात् वर विवाह के लिए उसी स्थल से प्रस्थान करता है और जब तक कहीं भी उसका विवाह न हो तब तक वह घर वापस नहीं लौटता है। बारात जब चली जाती है तो घर की स्त्रियाँ मर्दों का पोशाक पहनकर रातभर डमकच नृत्य करती हैं। एक डमकच नृत्यगीत प्रस्तुत है:–

राँचीकर उड़ल घाघर, पाँचिरे बइसल हो
का कहों रे घाघर, पिया नाइ मर घारे।

पिया जदि रहे तेल, एक ठंठि मारे तेल
का कहों रे घाघर, पिया नाइ मर घारे।

अधिकांश डमकच गीत हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण होते है। कोई–कोई गीतों में देवर–भाभी के प्रेम–प्रंसग का भी उल्लेख मिलता है। एक गीत प्रस्तुत है–

आमे का धँपा देखी, लेबदा चालाली हो
बड़ऽ–बड़ऽ आमगिला, खैंचाइ साजलि हो
छटऽ–छटऽ आमगिला, देवर देखी भूलाली हो।

वर–पक्ष के गीतों में परिछन के गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। यों तो विवाह–गीतों में गाली का साम्राज्य रहता है। ये गीत एक तो कांटे की तरह चुभने वाले होते हैं तो दूसरी ओर सुरुचि हास्य–व्यंग्य युक्त होते हैं। अधिकतर गीतों में नयी दुल्हन को नीचा दिखाने तथा विविध प्रकार से अपमानित करने की चर्चा है। यदि कन्यापक्ष की ओर कम सामान मिलता है तो कन्या को सुनना पड़ता हैं–

सुने हेलों बड़ऽ घारेक छटऽ बेटी

कइ लो बहु, जड़ा गागरा।
कइ लो बहू, आलंख–पालँख।

यही नहीं, नीचे देखकर चल रही नयी बहू को ननद कहती है कि हमारे यहाँ की बालू इतनी स्वच्छ है कि किसी को भी चीनी का भ्रम हो जाता है। ननद कहती हैं– कहीं ऐसा न हो कि तुम उसे चीनी समझकर खाना जिससे तुम्हारे दाँत टूट जायँ। इससे सम्बन्धित एक गीत–

कोंचो गाँवेक मुड़ाइं, सरु–मटऽ बाला
बहू सरु मटऽ बाला।
चीनी कही ना फांकिस लो बहू
दांत हेतोऊ बुचा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक गीतों में वर को ससुराल में किए गये व्यवहार, आवभगत, खान–पान, कन्या के सौन्दर्य आदि का वर्णन मिलता है।

वरपक्ष की अपेक्षा कन्यापक्ष को अधिक अनुष्ठान एवं संस्कार सम्पन्न करना पड़ता है। कन्यापक्ष के गीतों में पानचन्दन, लग्न, उबटन, मण्डपाच्छादन,

बड़ीपारा, चुमावन, घारभरा, खीर खाने, विदाई, संगीछाड़ा आदि प्रमुख हैं। कुरमाली विवाह–संस्कार के सम्बन्ध में यदि कहा जाये कि प्रत्येक नेग के गीत है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कहा भी गया है– 'जतेक डेग, ततेक नेग'। अधिकांश गीतों का सम्बन्ध लोकाचार से है। फलतः विविध अनुष्ठानों के अवसर पर उनसे सम्बन्धित गीत अनिवार्य रुप से गाये जाते हैं। जहाँ वरपक्ष के गाये जाने वाले गीतों में हर्षोल्लास के भाव दिखाई पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर कन्यापक्ष के गाये जाने वाले गीतों में मूलरुप से करुण–भाव धारा प्रवाहित होती है।

अब कन्यापक्ष के विशिष्ट अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख करना समुचित प्रतीत होता है। पानचन्दन वरपक्ष को कन्या के घर में प्रवेश करने का द्वितीय चरण है। इसे विभिन्न नामों से अभिहित किया जाता है। जैसे– आशीर्वादी, बरतू, दुवाइर खूँदा इत्यादि। खान–पान के पश्चात् 'पानचन्दन' का नेग प्रारंभ होता है। एक गीत में कन्या अपने माता–पिता और भाई को कोसती हैं कि उसे दूर देश में ब्याही जा रही है–

बाबा, बाबा कहली, बाबा नेही सुनेला
डाली टाकाक लगे, बेटी बिदाइ देला दूरन देसे।
साड़ी–गौंवाड़ीक लभे माइ, बेटी बिदाइ देला दूरन देसे।
सारा धोतिक लभे भाये, बिहा देला दूरन देसे।

पानचन्दन के बाद लग्न का दिन निश्चित किया जाता है। साधारणतः लग्न तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन या नौ दिन के हुआ करते हैं। इस अवसर पर लग्न बांधने के गीत गाये जाते हैं। कुरमाली विवाह में विवाह के अवसर पर जिन फूलों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती हैं, उन फूलों से सम्बन्धित एक गीत यहाँ प्रस्तुत है–

कनऽ फूले लगन बाबा, कनऽ फूले बिहा गो?
कनऽ फूले होवत बिदाइ गो?
गुलौंइच फूले लगन बाबा, आंकद फूले बिहा गो
पारास फूले होवत बिदाइ।

लग्न के बाद निर्धारित तिथि को वर गाजे–बाजे के साथ कन्या के घर आता है। कन्यापक्ष के सभी लोगों में कौतूहल और उत्सुकता रहती है। विशेषकर महिलाएँ वर को देखने के लिए आतुर रहती हैं। वे अपनी मनोभावों को गीतों के द्वारा अभिव्यक्त करती है। जब वर कन्या के घर पहुँचता है तो कन्या के चाचा

गुवा–टीका लगाकर वर का स्वागत करता है। उस समय महिलायें जो गीत गाती है, वे व्यंग्यात्मक, कटाक्ष, एवं परिचयात्मक होते हैं। इस रस्म के अवसर पर वर पर किया गया व्यंग्यात्मक गीत प्रस्तुत है–

आवल सुन्दर वर, बसल पीपर तर
पीपर बिनी–बिछी खाय।
कहु बरा बापे केरा नाम गो,
तबे लागबे दुवाइर गो।

विवाह के पूर्व कुरमाली संस्कृति में प्रथमतः कन्या को पीतल के गहने पहनाने का रिवाज है। वर तथा कन्या दोनों पक्ष के लोग इस अवसर पर मण्डप में बैठ जाते हैं। कन्या की फुफू अल्पना बनाने का काम सम्पन्न करती है। इसके बाद कन्या को पीतल की चुड़ी पहनायी जाती है। पीतल की चुड़ी पहनाते समय वर के पिता की मनःस्थिति को देखकर स्त्रियाँ कटाक्ष करती है।

पीतर पिंघाइते ससुर खुंजूर–मुंजूर
काहे ससुर खुंजूर–मुंजूर
तरे घारे बाहरातऊ– सामातऊ
देखी नयना जुड़ातऊ गो।

'पीतर–पिंधान' के बाद 'महुआ विवाह' का नेग होता है जिसमें कन्यापक्ष की महिलाएँ अम्ल खाती हैं। वर–पक्ष में भी कन्या का जीजा सारा काम सम्पन्न करता है। इस अवसर पर बहनोई को कटाक्ष करते हुए गीत गाये जाते हैं। 'महुआ विवाह' के बाद विवाह की चरम स्थिति 'सिन्दरादान' है। सिन्दरादान के पश्चात् ही कन्या दूसरे गोत्र की हो जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत बड़े मार्मिक होते हैं। बेटी घर की ज्योति स्वरूप होती है। जिसे लक्ष्मी की संज्ञा दी जाती है। पर विडम्बना यह है कि जिस घर में पैदा होती है उस घर को आलोकित न कर दूसरे घर को प्रकाशमान बनाती है। प्रस्तुत गीत में इसका कितना सटीक वर्णन हुआ है–

बने फूटे धधकी फूला, माइ गो बनी करे आलऽ
गो माइ बना करे आलऽ।
घारा माझे–बेटी जनम लेला, घारा करे आलऽ
बेटी छवांक मिद्दाइ जनम गो माइ
परेक घारा करे आलऽ।

एक अन्य गीत में कन्या की तुलना फूल से की गई है। जिस प्रकार फूल वन को सुशोभित करता है उसी प्रकार बेटी के जन्म लेने घर की शोभा बढ़ती है। फूल के झड़ जाने से वन शोभाविहीन होता है, उसी प्रकार बेटी के चले जाने से घर शून्य हो जाता है। कुरमी समाज में कन्या का महत्वपूर्ण स्थान है।

बेटी–विदाई के क्षण अत्यन्त कारूणिक, मर्मस्पर्शी और हृदय– विदारक होते हैं। सगे–सम्बन्धी वियोग की वेदना से विह्वल हो उठते हैं। उस समय गाजा–बाजा और शहनाई की गूंज वियोग को द्विगुणीत कर देती है। उस समय कोई ऐसा नहीं, जिसकी आँखों से अश्रुधारा न बहती हो। माँ बेटी से कहती है कि यह विधाता का अटल नियम है कि बेटी पराया धन है। प्रस्तुत गीत में इसका कितना मार्मिक चित्रण हुआ है.

जाहू बेटी ससुर घारा, नाहिं गो रदन
सुखे–दुखे काटबे समय सैंया आपन।
बेटी–छवा पराधीना, विधिकर लेखन गो।

विदाई के समय वर–कन्या को गोद में लेकर गाँव की अन्तिम सीमा तक पहुँचाया जाता है। कन्या की सहेलियाँ अपनी सहेली को छोड़ने के लिए वर से पैसा माँगती हैं। पैसा देने में वर–पक्ष यदि किसी प्रकार की आनाकानी करें तो कन्या की सहेलियाँ वर पक्ष को व्यंग्य करती है–

संग छाड़ा पइसा बरा दये राखें
तबे संगति लये जाबे।
संग छाड़ा पइसाइं जदि कांगाल हेबे
ले रे बरा धार पइसा
सिल्ली बाजारे जुतवा किनिये लेबे।

निष्कर्ष स्वरुप कहा जा सकता है कि कुरमाली समाज में विवाह–गीतों का विशिष्ट स्थान है। विवाह संस्कार पर गाये जाने वाले गीतों का क्षेत्र बड़ा विशाल है। विवाह संस्कार गीतों में मानवीय भावनाओं, विविध विधानों, प्रथाओं का उल्लेख रहता है। कुरमाली संस्कार गीत रस, लय तथा मर्म–स्पर्शिता की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। कुरमाली विवाह गीतों की एक अनूठी विशेषता यह है कि गीतों के राग, ताल और शहनाई की आवाज सुनकर कोई भी दूरस्थ व्यक्ति जान पाता है कि अभी कौन–सा रस्म सम्पन्न हो रहा है। कुरमाली संस्कार गीतों में कहीं मुक्तक पद्धति भावाभिव्यक्ति हुई है तो कहीं–कहीं लम्बे–लम्बे गीतों के माध्यम से।

***

छोटानागपुर का कुरमाली संगीत

छोटानागपुर के लोगों में गाने और नाचने की एक सुदीर्घ और समृद्ध परम्परा रही है। यदि छोटानागपुर की संस्कृति को गीतों और नृत्यों की संस्कृति कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। लोकसंगीत वस्तुतः लोक–मानस की अनुपम देन है। संगीत की रसमयी निधि ने अबतक छोटानागपुरी जन–जीवन को डूबो रखा है और संगीत की यह धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है। संगीत यहाँ के लोगों अमूल्य की थाती है।

छोटानागपुर का संगीत विभिन्न प्रकार के गीतों और राग– रागिनियों से बना है जो भाव, भाषा, छन्द, अर्थ आदि की दृष्टि से अद्वितीय है। गीतों के राग और छन्द की अपनी विशिष्टता और पहचान है।

छोटानागपुर और इसके सीमावर्ती क्षेत्रों के गीत–वाद्य की शैली मूलतः एक रही है। यद्यपि यहाँ के लोगों में भाषाई पार्थक्य है। परन्तु, संगीत में आन्तरिक समानता परिलक्षित होती है।

कुरमाली यहाँ की एक प्रसिद्ध भाषा है और इसमें गीतों का विपुल भंडार मिलता है। कुरमाली के प्राचीन गीतों की भाषा बोल–चाल तथा प्रश्नोत्तर शैली में रही है। गीत अत्यन्त सहज और सरल हुआ करते थे। गीतों में छन्द–विध ान का कोई नियम नहीं था। राग या लय के द्वारा ही गीत जीवंत थे। ताल, सुर, राग और मात्रा की अपनी एक अलग पहचान है। यहाँ संगीत केवल आनन्द प्राप्त करने का एक साधन ही नहीं था, बल्कि लोग इसे मोक्ष का मार्ग भी मानते थे।

कुरमाली गीतों में अनेक राग–रागिनियाँ प्रचलित हैं। गीत के अनुसार ताल बजते हैं और मौसम के अनुसार गीत गाये जाते हैं। फलतः उसके ताल और राग बदलते हैं। अनुष्ठान के अवसर पर स्त्री–पुरूषों का सामूहिक नृत्य गायन होता है और गीतों के माध्यम से ही अपने ह्रदय के उद्‌गार को अभिव्यक्त करते हैं। इन्हें संगीत और कला विरासत में मिलती रही है। नृत्य और गीत कुरमाली जन–जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं तथा संगीत ही जीवन के धरोहर हैं। इनके लोकगीत, वाद्य–यंत्र और नृत्य मनोहर हैं। गीतों से इनके निर्मल और निष्कलंकित जीवन की झांकी मिलती है। नृत्य गीत के उपकरणों से प्रयुक्त कला–कृतियाँ देखते ही बनती हैं। नृत्यगीत में प्रयुक्त मांदर, ढोल, नगाड़ा, टुइला, केंदरा, गुबगुबी, बाँसुरी आदि सुन्दर और सुमधुर वाद्य–यंत्र हैं।

कुरमाली संगीत को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः— 1. लोक संगीत 2. शिष्ट संगीत।

कुरमाली के अधिकांश लोकगीत नृत्य—गीत हैं। गीतों की रचना में नृत्य और ताल का पूरा—पूरा ख्याल रखा गया है। सभी गीत मौसमी हैं जिनके ताल, लय और बाजे के बोल मौसम के अनुसार अलग—अलग होते हैं। अधिकांश गीत किसी न किसी अनुष्ठान और पर्व—त्योहार से सम्बन्धित हैं। एक मौसम के गीत दूसरे मौसम में गाने की परिपाटी नहीं है। सुरों के आधार पर भी कुरमाली गीतों की पहचान होती है और सुर के आधार पर ही गीतों के पार्थक्य को भी जाना जा सकता है। कुरमाली लोकनृत्य वामावर्त्त शैली में है।

कुरमाली के लोकगीतों में ढप, बिहागीत, डमकच, डाबका, नटुआ, सरहूल, डाँइड़धरा, उधवा, गेना, पैरी, करम, एड़ेइआ, कुंवारीझुपान, बांदना, महाराइ, आदि हैं।

ढपगीत अगहन से फागुन महीने तक गाया जाता है। गीत के साथ ढप नामक वाद्ययंत्र बजाया जाता है। इसे 'घेरा' भी कहते हैं। इसके साथ—साथ चिमटा, छेबका, टेटके आदि वाद्य—यंत्र बजाये जाते हैं। इस गीत के साथ नर्त्तन नहीं होता है। ढप गीतों के वर्ण्य—विषय आध्यात्मिक, दार्शनिक, प्राकृतिक चित्रण और सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं।

विवाह गीत को हम संस्कार गीत भी कह सकते हैं। मूलतः ये स्त्रियों के गीत हैं और विवाह के अवसर पर ही गाये जाते हैं। विवाह गीतों को दो वर्गों में रखा जा सकता है— 1. वर पक्ष के गीत और 2. कन्य पक्ष के गीत। विवाह के प्रत्येक रस्म के लिए अलग—अलग गीत हैं तथा ताल और बाजे भी भिन्न—भिन्न हैं। विवाह गीत के ताल की यह विशेषता है कि ताल को सुनकर ही किसी रस्म होने की प्रक्रिया को जाना जा सकता है। कन्यपक्ष के गीत अत्यन्त कारुणिक होते हैं। विवाह गीतों में गान की भांति झांप ताल पाया जाता है, जो 10 मात्रिक हैं। विवाह गीत के वाद्य—यंत्र हैं— ढोल, नगाड़ा, शहनाई, ढाक, कुरूधुतू, भेड़ आदि।

डमकच स्त्रियों का नृत्यगीत है। बारात के चले जाने पर स्त्रियाँ मर्दों का पोशाक पहन कर रातभर नाचती हैं। डमकच के सभी गीत मुक्तक छन्द में हैं।

ढप का नृत्य विवाह संस्कार से सम्बन्धित हैं। जब वर विवाह कर लौटता है तब वर और कन्या को घर में प्रवेश कराने के पहले भाई और भाभी

या माता–पिता वर–वधू को गोद में लेकर नृत्य करते हैं। विधिवत् विवाह में ढाबका नृत्य अनिवार्य माना जाता है।

नटुआ वीररस का नृत्य है। इसमें गीत का स्थान गौण है। ताल के द्वारा ही नर्तन होता है। नर्तक अपने शरीर को रंगीन फीते से सुसज्जित करता है और अपने हाथ में ढाल और तलवार लेकर न त्य करता है। हाथ–पैर और चेहरा की भंगिमा से ही युद्ध की स्थिति का प्रदर्शन करता है। नटुआ–नृत्य अकेले या समूह दोनों में सम्भव है। ढाक, नगाड़ा और शहनाई इसके वाद्य–यंत्र है।

सरहूल मूलतः नृत्यगीत हैं। जाहेर–थान में सरहूल– पूजन आदि की क्रिया की समाप्ति के पश्चात् स्त्री–पुरूष सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। गीत के साथ, नगाड़े और शहनाई बजाये जाते हैं।

छौ नृत्य एक मौसमी नृत्य है। परन्तु, इसकी लोकप्रियता के कारण आजकल सालों भर नाचा जाता है। इसमें नर्त्तक अपने चेहरे पर मुखौटे धारण करता है। नृत्य का परिचय गीतों के माध्यम से दिया जाता है। फुलवारी से छौ नृत्य के गीत बने हैं तथा झूमर गीत के लय के आधार पर। छौआड़ी बाजा सभी झूमर बोल के टुकड़े हैं। छौ नृत्य में व्यवहृत वाद्य–यंत्र हैं– ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि।

डाँइड़धरा कुरमाली का सामूहिक नृत्य गीत है। इसे हम बारह मासिया गीत के नाम से भी आभिहित कर सकते हैं। स्त्री–पुरूष एक दूसरे के हाथ या कमर को पकड़कर नाचते हैं। यह नृत्य वामावर्त्त है। साधारणतः डाँइड़धरा और पांता नाच को लोग एक ही समझते हैं। परन्तु, यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना श्रेय कर होगा कि दोनों में किंचित् अन्तर है। डाँइड़धरा नृत्य में कमर के नीचे के अंगों का संकोचन होता है जबकि पांता–नृत्य में सम्पूर्ण शरीर का। इसके वाद्य–यंत्र केवल मांदर है।

कुरमाली के **उधवा** गीत को हम यात्रा गीत भी कह सकते हैं। राह चलते समय लोग समवेत स्वर में गाते हैं। अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर शैली में हैं। ये गीत ताल से मुक्त हैं। परन्तु, अब इसे भी ताल में बांधने की चेष्टा की जा रही है।

पैरी गीत को झुंटिया मांजा गीत कहते हैं। गीत और ताल के साथ पैर की भाव–भंगिमा दर्शनीय होती है। ढोल–नगाड़ा इसके वाद्य–यंत्र हैं।

करम कुरमाली का अनुष्ठानिक गीत हैं। मूलतः यह स्त्रियों का गीत है। प्रत्येक अनुष्ठान या पूजन–विधि अनुसार गीत के राग बदलते हैं। कुछ गीत नृत्य–गीत हैं। गीत के साथ ढोल या मांदर बजाया जाता है।

एड़ेइया नृत्यगीत कुरमाली संगीत की अनुपम उपलब्धि है। जैसा कि नामकरण से ज्ञात होता है कि यह ढ़ाई डेग अर्थात् ढाई कदम का नृत्य है। एक गीत में बारह प्रकार के ताल बजते हैं। यह स्त्री–पुरूषों का सामूहिक नृत्य है। इसके वाद्ययंत्र झांझ और मांदर है। कुंवारीझुपान गीत को हम जादू–टोना या तंत्र–मंत्र के गीत कह सकते हैं। यह श्रावण–भादों महीने में गाया जाता है। संतानहीन स्त्री को पुत्र–रत्न की प्राप्ति के लिए गीतों के ताल के साथ झुंपाया जाता है। इसे पुरूष ही गाते हैं। मनसा एवं अन्य देवी–देवताओं का गीत गा–गाकर आह्वान किया जाता है। गीत के साथ ढोलक बजाया जाता है।

बांदना गीत वस्तुतः मवेशियों के बन्दना के गीत हैं। इसके कई भेद हैं। जैसे– दिगवानी, चांचर, बरदखूंटा या बरद खेला एवं आशीष के गीत। इसमें कोई नृत्य नहीं होता। गीतों के साथ ढोल, और नगाड़े बजाये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त टुसू, गेना, महराइ, आदि लोकगीत हैं। महराइ गीत को तो कुरमाली की गीता कहा जा सकता है। लोकनृत्यों में काठीनाच, भगता नाच आदि हैं। शिष्ट नृत्य के अन्तर्गत नर्त्तकी नाच, बाईनाच, घोड़ा आदि परिगणित किये जा सकते हैं।

शिष्ट संगीत

कुरमाली के शिष्ट संगीत के अन्तर्गत भादरिया, झूमर, कवि गीत आदि आते हैं। नृत्य में रास–नृत्य या नर्त्तकी–नाच को लिया जा सकता है। शिष्ट संगीत का प्रादुर्भाव 14वीं शताब्दी के बाद से माना जा सकता है। इस वन्य–प्रदेश में चैतन्य महाप्रभु के आगमन के पश्चात् कीर्त्तन छन्द के गीतों द्वारा वैष्णव धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ। उसी के समानान्तर अनपढ़ लोगों के बीच झूमर गीत छन्द में रासलीला के माध्यम से वैष्णव धर्म अधिक प्राचारित–प्रसारित हुआ। जिस प्रकार कीर्त्तन को स्थायी बनाने के लिए राधा–कृष्ण के मंदिर का निर्माण होने लगा। उसी प्रकार झूमर छन्द के आधार पर रासमंच का निर्माण हुआ। रासनृत्य को कुरमाली पारम्पारिक नृत्य किसी भी स्थिति में नहीं कहा जा सकता। कीर्त्तन गायन की अपेक्षा झूमर–गायन का क्षेत्र व्यापक है। कीर्त्तन गायन में राधा–कृष्ण के नाम का केवल उच्चारण किया जाता है जब कि झूमर गायन में राधा–कृष्ण की सम्पूर्ण जीवन–लीला का वर्णन है। यह लोककवियों

की विशिष्ट देन है कि गीतों के माध्यम से श्री कृष्ण के जीवन–चरित्र को जन–जन तक पहुँचाया। यही कारण है कि झूमर के गीत क्षेत्र में पंचपरगना को अत्यन्त लोकप्रियता मिली।

झूमर संगीत कुरमाली जन–जीवन के अभिन्न अंग है। यह सालों भर गाया जा सकता है। झूमर गीतों का प्रारम्भ विनन्द सिंह और गौरांगिया के समय से माना जाना चाहिए। वस्तुतः इस वनांचल में झूमर साहित्य के एक विशाल दुर्ग का निर्माण हुआ। बाद में अनेक जनकवि हुए, जिन्होंने झूमर गीतों की रचना की। यह सुखद आश्चर्य की बात है कि देश में कितने उथल–पुथल हुए परन्तु, संगीत पर कोई आंच नहीं आयी। राजा जमीन्दार आदि झूमर के पृष्ठपोषक रहे हैं। झूमर की वेगवती धारा अविरल रूप से बहती रही और इसके माध्यम से विविध चिन्तनधारा प्रस्फुटित होती रहीं।

कुरमाली में विविध छन्दों के झूमर मिलते हैं। पयार छन्द के गीत जनकवियों की अनुपम भेंट है। पयार छन्द गीतों में कड़ी के बदल जाने से बाजा भी बदल जाता है और नृत्य होता है वह बाजे के अनुसार होता है। झूमर गीत नृत्य के साथ और बिना नृत्य के भी गाया जा सकता है। परन्तु, दोनों में आनन्द प्राप्त होता है। कुरमाली गीतों के राग ऐसे होते हैं कि मांदर से नहीं चल सकते बल्कि ढोलक उपयुक्त वाद्य–यंत्र है। पंचपरगना इलाके में झूमर के प्रादुर्भाव के साथ ही नर्त्तकी नृत्य केवल झूमर में ही सम्भव है। कुरमाली लोक–संगीत एवं शिष्ट–संगीत की अपनी विशेषता और पहचान है।

झूमर की गति धीमी होती है। इसके राग, ताल, लय, बाजा, धीमी गति के होते हैं। इसे हम बिलम्बित या मध्यम गति भी कह सकते हैं। झूमर के छः भेद है– जड़न, बुरूटाँइड़, फुलवारी, डहरवा, छौआड़ी और चाइल। प्रत्येक गीत की कड़ी में चार तत्त्व होते हैं– स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। अभी प्रयोग के द्वारा यह निष्कर्ष निकला है कि झूमरगीत शास्त्रीय संगीत से फीके नहीं है।

भादरिया गीत द्रुत लय के गीत होते हैं। भादरिया गीतों की भाषा, सुर, ताल, लय, वादन सभी क्षेत्रों में झूमर से सरल है। भादरिया गीतों में मांदर और बांसुरी जैसे मधुर ध्वनि वाले यंत्री का व्यवहार होता हैं। परन्तु, सुर के लिए झूमर और भादरिया दोनों में आजकल हारमोनियम का व्यवहार किया जा रहा है। भादरिया गीत को 'दादरा' के समकक्ष माना गया है।

झूमर क्लासिकल गीतों एवं तालों से कम नहीं है। जैसे– शास्त्रीय गीतों के बोल, ताल में द्विगुण, तिगुण करके नहीं बनता क्योंकि इसकी संरचना ऐसी विशेषता होती है कि प्रत्येक बोल के टुकड़े पर भी द्विगुन, चौगुन करके दिखाया जा सकता है–

विवाहगीत– हिरी हिरी झिरी–झिरी जुमना

1	2	3	4	5– 1	2	3	4	5	
धा	गे	धा	गे	धिन–ता	गे	ता	ग	धिन	=10 मात्रा
डा	गुर	डा	गुर	गुर–डा	गुर	डा	गुर	गुर	=10 मात्रा
डा	गुर	गुर	गुर	ऽ–ता	किटि	किटि	ता	कि	=10 मात्रा

कुरमाली गीतों के बोल को तिगुन, चौगुन करने की बनता है। जब कि कलासिकल में इसकी कोई गुंजाइश नहीं हैं। शास्त्रीय संगीत के एक ताल 12 मात्रिक होते हैं जब कि डहरवा में भी 12 मात्रा होते हैं।

एक ताल के बोल या ठेका इस प्रकार हैं–

धा	गे	दिन	ता,	क	तक	दिन	ता,	तेरे	कता	गदी	धिन	=12 मात्रा
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	
												स्थायी–
ध	उर	झे	दा	झे	दा	झे	दा	धि	ऽ	न	ऽ	=12 मात्रा
रा	ऽ	धि	के	ऽ	ऽ	जा	ई	बे	गे	मि	लु	
												बोल–
ऽ	ऽ	झे	दा	झे	दा	झे	दा	धि	ऽ	न	ऽ	=12 मात्रा
ना	ऽ	ग	र	ऽ	के	पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	=12 मात्रा

ठेका–

ऽ	ऽ	उर	धि	ना	किटी	ताग	ताग	ता	ता	किटी ताग

=12 मात्रा

भादरिया गीत को 'दादरा' कहते हैं। ये त्रैमात्रिक हैं। भादरिया (काहरवा) 4 मात्रिक होते हैं जिससे खेमटा झूमटा कहा जाता है।

गीत– काकरऽ आनगाई गाछऽ दारुन रे

सामलता काकरऽ आनगाई चांपा डाइर रे।

बोल–

झा	ते	ता	किरी	झा	ऽ	झे	झे	न	ताग	झेन	ऽ

=12 मात्रा

झा	गुर	गुर	झा	तिन	ऽ	झा	ऽ	ऽ	झा	ऽ	ऽ

=12 मात्रा

अन्तरा के बोल के मात्रा 23 हैं तथा त्रैमात्रिक गीत है।

स्थायी बोल–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ति	न	झा	ऽ	ति	न	ऽ	झा	ति	ऽ	ति	न
झा	ति	न	झे	दा	ऽ	ता	क	ता	किटि	ता	न

दादरा बोल–

धा के 2, ना के 2 ।।

वाद्य–यंत्र की विशेषताएँ

यहाँ पर कुरमाली वाद्य–यंत्रों के सम्बन्ध में भी बताना समुचित होगा।

ढोल– ढोल ताल को समान रुप से आबद्ध कर रखता है। दूसरी बात यह है कि गीत के धुवा और कड़ी को बदलने की ओर इंगित करता है। तेर, खेट, ता, किटी, ताक, ताल ढोल से भी सम्भव है जबकि अन्य वाद्य–यंत्रों से इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसी मान्यता है कि ढोल को दो भागों में बांटकर डुगी और तबला का निर्माण किया गया है।

मांदर– मांदर मिट्टी के बने होते हैं। यह ढोलक के पूरक के रुप में तैयार किया गया है। इसके सुर बंधे होते हैं। ढोल और नगाड़ा गीत के जिस स्वर ध्वनि को पूरा नही कर पाते हैं, उसे मांदर के द्वारा पूरा की जाती हैं। तुंग, दां ध्वनि मांदर से ही निःसृत हो सकती हैं। ढोल या नगाड़े से नहीं। झूमर की आवश्यकता के अनुसार स्वर के विलगाव में जब ढोलक असमर्थ हुआ तो मांदर की आवश्यकता

पड़ी। मांदर कई प्रकार के होते हैं। आकार के अनुसार आवाज में अन्तर पाया जाता है।

नगाड़ा— ढोल की ध्वनि को ऊँचा करने तथा गाम्भीर्य लाने के लिए नगाड़ा का व्यवहार होता है। नगाड़ा आड़ी की वस्तु है अर्थात् कुछ–कुछ अन्तराल के बाद बजाया जाता है। नगाड़े की आवाज डुगी का काम करती है।

टेटके— टेटके वाद्य–यंत्र वादन क्रिया को घेरे रखता है। इसके एक तरफ को बांस की फेटियों से बजाया जाता है। नगाड़ा ढोल की ध्वनि— गेड़ेन, जागिन, किटीताक, ये सभी टेक पर बजते हैं। पर वे गीत के स्वर को पूरा नहीं कर पाते। टेटके इस ध्वनि को पूरा करता है। इसके अतिरिक्त ढाक आदि वाद्य–यंत्र भी हैं।

स्वर यंत्रों में शहनाई, बांसुरी, मुरली, केंदरा, टुइला, आनन्दलहरी, एकतारा आदि हैं। कहा जा सकता है कि बांसुरी से फुलेट, केंदरा से वायलिन, टुइला से सितार, एकतारा से तानपुरा का विकास हुआ है एवं आनन्दलहरी बाँया तबला के समकक्ष है।

आज कुरमाली संगीत विकास के पथ पर आरुढ़ है। कुरमाली संगीत को नये आयाम दिये जा रहे हैं। गीतों के साथ हारमोनियम, बेहला, बेन्जों, सितार, तानपुरा आदि शास्त्रीय स्वरयंत्रों का व्यवहार किया जा रहा है। ढोल, मांदर और नगाड़े के स्थान पर डुगी–तबला आदि वाद्य–यंत्रों का भी व्यवहार किया जा रहा है। छौ–नृत्य में शहनाई के स्थान पर फूलेट का व्यवहार किया जा रहा है। पुरानी परम्परा की लीक से हटकर कलासिकल एवं फिल्मी धुन पर आधारित गीतों की रचना की जा रही है। यहाँ पर एक गीत का उल्लेख ही पर्याप्त हैं–

1. माई डियर ओ ललिता,
   कम हियर सुन मर कथा,
   बंधु हामर हते गेछे, गुड फ़ोर नोथिंग गो।
   व था हेला जौबुन दुइ दिन।
2. कम माइ डियर तजिया फियर,
   कनसल्ट कर आसिया नियर।

राँची में आकाशवाणी की स्थापना से विस्मृत और मरणोन्मुख कुरमाली संगीत को एक नयी दिशा मिली हैं।

कुरमाली और शास्त्रीय संगीत के आन्तरिक साम्य को दर्शाना भी यहाँ उचित होता है।

कुरमाली	शास्त्रीय संगीत	मात्रा
फुलवारी	कहरवा	08 मात्रिक
बुरुटांइड़	भरतगा	06 मात्रिक
डहरवा	खेमटा	12 मात्रिक
जड़न	दादरा	06 मात्रिक
बुरुटांइड़	काश्मिरी खेमटा	06 मात्रिक
छौआड़ी	आड़ खेमटा	12 मात्रिक
बुरुटांइड	दादरा	06 मात्रिक
चइल	एकताला	16 मात्रिक
भादरिया झुमटा	दादरा	06 मात्रिक

कुरमाली के खेमटा, चाइल, झुमटा की अपनी विशेषताएँ हैं। चौतीसा पयार छन्द के गीतों के प्रत्येक कड़ी में ताल, सुर और बाजा बदलते हैं।

कुरमाली संगीत को शास्त्रीय संगीत के साथ तुलना करके एवं स्वर लिपि तैयार कर स्व. राजा उपेन्द्र नाथ सिंह देव, स्व. महिम महतो, स्व. हेमा कोइरी, स्व. श्री पदो महतो, स्व. मनसुख महतो, स्व. रामसाय महतो, स्व. राम जीवन सिंह, नन्दलाल गोस्वामी, स्व. श्रीकान्त महतो, स्व. भुवनेश्वर महतो आदि ने एक अनुपम कार्य किया है। स्व गिरीश चन्द्र महन्ता ने पारम्पारिक वाद्य–यंत्रों के अलावे शास्त्रीय संगीत के वाद्य–यंत्रों की सहायता से कैसेट तैयार किया है। इधर रामसाय महतो ने कुरमाली के सभी प्रकार के गीतों की स्वरलिपि तैयार की हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि कुरमाली संगीत की सम्भावनाएँ अगर अनन्त नहीं तो व्यापक अवश्य है।

***

कुरमाली के लोककवि

कुरमाली एक अन्तर प्रान्तीय भाषा है। इसके विस्तार–क्षेत्र के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रचलित है– 'सिख शिखर नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर'। कुरमाली का क्षेत्र राजनीतिक मानचित्र द्वारा परिसीमित नहीं किया जा सकता। यह केवल छोटानागपुर में ही नहीं, बल्कि उड़ीसा के क्योंझर, बोनई, बामड़ा, वीरभूम, सुन्दरगढ़, पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत झाड़ग्राम, पश्चिम बांकुड़ा, वीरभूम, मानभूम पुरूलिया एवं छोटानागपुर के राँची, हजारीबाग, गिरिडीह, धनबाद, बोकारो, सिंहभूम तथा संतालपरगने में भी बोली जाती है।

कुरमाली साहित्य परिमाण में वृहद् होने के साथ–साथ काव्यगत विविधताओं में भी समृद्ध है। इसके गद्यरूपों में लोककथा, कहानी, नाटक, उपन्यास, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा पहेलियाँ हैं। काव्यरूप में लोकगीत हैं। लोकगीतों के भी विविध रूप हैं जो मौसम के अनुसार गाये जाते हैं।

कुरमाली लोकसाहित्य का एक अच्छा–खासा इतिहास है। कुरमाली के आदिकालीन गीतों के रचयिता अज्ञात है। मध्यकाल में रचित लोकगीतों के रचयिताओं की एक दीर्घ सूची है। इसी प्रकार आधुनिक काल में भी पद्य विधा को समृद्ध करने में अटूट योगदान रहा है।

कुरमाली के मध्यकाल (सन् 1750–1850) से शिष्ट साहित्य का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु का झारखण्ड प्रदेश में पदार्पण के पश्चात् वैष्णव भावना का प्रचार–प्रसार हुआ। तत्कालीन कवियों ने रामायण और महाभारत से कथावस्तु लेकर गीतों की रचनाएँ कीं। राम–कृष्ण को नायक मानकर उनकी लीलाओं को ललितपदों में रचकर गीतों का रूप दिया। मध्ययुगीन अधिकांश कुरमाली कवियों ने तुकान्त गीतों की रचना की है। इस समय तुक गीतों का एक आवश्यक अंग बन गया था। गीतों को सरस और मधुर बनाने के लिए मुख्य प्रवृत्ति तुकान्त गीतों की ओर थी। परन्तु, पूर्णरूपेण यह नहीं कहा जा सकता है कि उनमें तुक के नियमों का पूर्णतः निर्वाह हुआ है। सामान्यतः गीत चार कड़ी की भनिता सहित है। 'पयार' छन्द के चौंतीसा गीत भी इस युग के कवियों की एक विशिष्ट देन है।

कुरमाली के मध्यकाल के जनकवियों में विनन्दिया, गौरांगिया, बाउलदास (जगा), बरजूराम, नरोत्तमदास, दुर्योधना, पीताम्बरदास, रामकृष्ट, त्रैलोक्यनाथ,

हाड़ीराम, डिमा, उदय, भोलानाथ, हलधर, बोधा, खेपा, कैलाश, कमला, सरदुआ, सिदाम, रसराज, सहिस, जादूराय, कान्हाई, सतुदास, शंकर, माली प्रमाणिक, शिरोमणि हाजरा, अजमत जोलहा आदि प्रमुख हैं जिनके गीत जनमानस के कण्ठाहार बन गये हैं।

कुरमाली के प्रमुख कवि विनन्दिया के गीत पंचपरगना क्षेत्र के अतिरिक्त पुरूलिया जिला के सीमान्त गाँवों तथा मयूरभंज में भी बहु प्रचलित हैं। वर्ण्य–विषय के आधार पर विनन्दिया के गीतों को हिन्दी के सूरदास के समकक्ष रखा जा सकता है।

कुरमाली के एक अन्य लोकप्रिय कवि गौरांगिया हैं। ये विनन्दिया के समकालीन थे। उनके झूमरगीतों के विषय राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना रहा है। पयारछन्द के गीत उनकी प्रतिभा की देन है। इनके गीत अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

इसी प्रकार उड़ीसा के मयूरभंज जिले के प्रमुख कवियों में बाउलदास, (जिन्हें जगा के नाम से जाना जाता है) तुलसीदास, भीमचरण, आदि हैं। इनके गीत श्रृंगार, वात्सल्य और भक्ति–भावना से ओत–प्रोत हैं। इन कवियों ने उपमा अलंकार का बाहुल्य प्रयोग किया है। इस संदर्भ में बाउलदास का एक गीत द्रष्टव्य हैः–

भूख पियासा आसा, पिया संगे गेल रे
जिया काहे सखी, रहल अकेल रे।
पहिल पिरितिया, जेसन पानी ऊपर तेल रे
सेंसे सखी, मरूभूमि करि देल रे।

बरजूराम कुरमाली के एक अन्यतम कवि हैं। उन्होंने भक्ति–भावना से ओत–प्रोत गीतों की रचना के साथ–साथ दार्शनिक भावों के गीतों की रचना की है। इनके गीत इतने प्रसिद्ध हुए कि जब कोई गायक किसी गीत की भनिता भूल जाता था, उस समय गीत का तारतम्य बनाने रखने के लिए बरजू राम का नाम जोड़ देता था, भले ही वह गीत किसी अन्य कवि का रहा हो। इसी से उनकी प्रसिद्धि का पता चलता है। उनका एक बहुप्रचलित, लोकप्रिय एवं जन–जन का कण्ठाहार बना गीत प्रस्तुत हैः–

भूसा कुटइते नर, बिसरलाइ हरिहर
अन्त काले पंथ भूलि गेल
नर जनम विधि काहे देल।

पीताम्बरदास का अविर्भाव काल उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त और बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। उन्होंने राधा–कृष्ण की लीलाओं पर अनेक झूमरगीतों की रचना की है।

कुरमाली के कवि नरोत्तमा के गीत लोकमानस में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनका जन्म पश्चिम बंगाल के पुरूलिया जिलान्तर्गत टोरांग नामक गाँव में 19वीं शताब्दी में हुआ था। इनके गीत संयोग–श्रृंगार और विप्रलम्भ श्रृंगार से सम्बन्धित हैं।

रामकृष्ट गांगुली का जन्म पातकम के बारीडीह नामक गाँव में सन् 1861 ई. के आस–पास हुआ था। उन्होंने अनेक झूमर गीतों की रचना की हैं। इनके गीतों के सम्बन्ध में कहा जाता है। "रामकृष्ट के गीतों में दर्द समाया हुआ है, जो तीर बनकर लोगों के दिल और दिमाग पर से तिरसा हुआ हृदय में आकर बैठ जाता है।"

दुर्योधना रामकृष्ट के समकालीन कवि थे। उन्होंने उच्चकोटि के गीतों की रचना की हैं। इनके गीत ताल, लय, सुर और गेयता की दृष्टि से धनी हैं।

खेपा कुरमाली के एक प्रसिद्ध कवि हुए। उनके गीतों में उद्भ्रान्ति है, विभ्रांत, असहाय अवस्था का चित्रण है तो दूसरी ओर एक मधुर चुहुल भी।

कुरमाली के कवियों के सम्बन्ध में एक उक्ति प्रचलित है:

जेसन मदेक गड़ा मातकम
तेसन कविक गड़ा पातकम।

कहने का तात्पर्य यह है कि झूमर गीतों के अधिकांश रचयिता पातकम के रहे हैं।

एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि झूमर युग का प्रारम्भ विनन्द सिंह से हुआ और भवप्रीता से इस अध्याय की समाप्ति हुई। भवप्रीतानन्द ने कुरमाली बंगला, और अंगिका में झूमर रचना की है। भवप्रीता के गीत 'झूमर रस मंजरी' नामक पुस्तक में संकलित हैं। इधर देवघर से 'भवप्रीतानन्द पदावली' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई। जिसमें उनके 310 गीत समाविष्ट किये गये हैं।

कुरमाली के आधुनिक कवियों में संत कवि सृष्टिधर अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। इन्होंने अनेकानेक गीतों की रचना की हैं। इनके गीतों का वर्ण्य– विषय रहा है:– राधा–कृष्ण प्रसंग गीत, कृषि सम्बन्धित गीत, बोधगीत, आध्यात्मिक

गीत एवं राजनीति से संदर्भित गीत। इनके गीतों में एक ओर समाज के शोषित दलित वर्गों को आगे बढ़ने का आह्वान है तो दूसरी ओर भगवद्भक्ति से ओत–प्रोत भावों का गुंफन भी। इन्हीं के समकालीन एक और अन्य कवि संत महिपाल हुए। इन्होंने विविध विषयों से सम्बन्धित गीतों की रचना की हैं। आधुनिक अन्य कवियों में श्रीकान्त, महिम, मानसिंह, काशीनाथ नापित, नलिनी रंजन, जगन्नाथ, रामेश्वर, अनन्त केसरिआर, नसीरूद्दीन, नन्दलाल गोस्वामी, गणेशराम सिन्हा, हराधन, सुनील, किरीटी, कैलाश बिहारी, दुलाल, कीर्तिवास कर्मकार, नरसिंह महतो दीनार्क, लखीकान्त, केशव चन्द्र आदि के गीत अपने–अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। कुरमाली के आधुनिक काल के कवियों ने कमोवेश झूमर गीतों की सृजन–परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा है।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि मध्यकाल से अब तक कुरमाली कवियों की एक लम्बी सूची है। फलतः पद्यरूप में कुरमाली का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

***

वन के नूपुर

आप लोगों ने अयोध्या, मथुरा, काशी और प्रयाग की कूंज तो सुनी होगी, बीहड़ के नूपुर नहीं, तनिक सुनिए तो सही।

'छोटानागपुर' में अनेक तरह की बोलियाँ बोली जाती हैं। कुछ ही दूर के बाद लोक–भाषा में अन्तर होता गया है। यहाँ के कवियों ने अपनी–अपनी भाषा में गीत, कीर्त्तन, भजनादि रचे हैं। परन्तु, ये कवि पढ़े–लिखे न होने के कारण अपनी रचनाएँ लिपिबद्ध न करा सके। अतः उनकी कृतियाँ लोक–कथन–श्रवण में ही जीवित रहीं। पीछे चलकर लोक गीत–प्रेमियों ने इन बिखरे गीतों को किताबी रुप दिया। यदि पहले साहित्य–प्रेमी इस पर ध्यान दिये होते तो अवश्य ही इन्हें उचित स्थान मिलता और छोटानागपुर के इन लोक–संगीत का साहित्य प्राप्त हुआ होता। जिस प्रकार ब्रज भाषा, मैथिली और मागधी आदि साहित्य में स्थान पा चुकी हैं। परन्तु, यह कहना युक्ति संगत न होगा कि इन कवियों ने साहित्य और समाज को कुछ नहीं दिया। इनकी कृतियों से पता चलता है कि ये उच्च कोटि के कवि थे। लोक–मुख में जीवित रहने के बावजूद यहाँ के गीत काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं। हाँ, लोक–वाणी में जीवित रहने के कारण इनके शब्दों में थोड़ा–थोड़ा अन्तर अवश्य होता गया है जैसा कि स्वाभाविक भी है।

छोटानागपुर के रईस, राजे–महाराजे गीत एवं नृत्य के काफी शौकीन होते थे। उनके यहाँ 'रास' रचायी जाती थी। यही कारण है कि इन कवियों ने कविता न रचकर गीतों की रचना की। अधिकांश गीत रामायण और महाभारत पर आधारित हैं। दूसरे शब्दों में इनको राम गीत–काव्य और कृष्ण गीत–काव्य कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। यहाँ के हर निवासी की साँस में झूमर गीत मिला हुआ है। गीतों के द्वारा ही तत्कालीन जनता में आशा, विश्वास और निष्ठा का संचार किया गया था। समाज को एक नयी ज्योति मिली थी। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य–वाग्ड्.मय की मूल आत्मा हैं– रामायण और महाभारत। यें दोनों भारतीय संस्कृति के दो फेफड़े–से हैं।

आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण के माध्यम से तत्कालीन युग का आदर्श प्रतिष्ठित किया और नीतिशास्त्र को गेय रुप दिया जिससे सम्पूर्ण समाज को प्रेरणा मिली, एवं ठोस ऐतिहासिक आधार भी मिला। यदि तुलसीदास को 'रामचरितमानस' के द्वारा भारतीय संस्कृति और मानव–धर्म को जीवित रखने

का श्रेय प्राप्त हैं तो इन कवियों को उस 'रामचरितमानस' को अपनी भाषा में गीत–संगीत–बद्ध कर तथा कथित मधुर संदेश लोक–मानस तक पहुँचाने का श्रेय हैं। लोगों को गीत के माध्यम से रामायण और महाभारत की कथाओं का ज्ञान हुआ। रामायण में तुलसीदास से लेकर आज तक का समाज जिन आदर्शों को लेकर चला है, वह 'मानस' का ही आदर्श हैं। इसमें साहित्य, समाज, धर्म और दर्शन का अद्‌भुत सामंजस्य मिलता है। ब्रह्म, शब्द–ब्रह्म होकर सत्यं–शिवं–सुन्दरम् का संदेश प्रसारित करता है।

अवधी एवं ब्रज भाषा के कवियों से इन कवियों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। उक्त भाषाओं में ब्रजभाषा में हम दो प्रकार के कवि पाते हैं– 1. रामाश्रयी और 2. कृष्णाश्रयी।

किसी ने राम को अपना नायक चुना तो किसी ने कृष्ण को। राम–काव्य के उपासक तुलसी हैं तो सूर, नन्द, मीरा, रसखान कृष्ण–काव्य के। तुलसी ने राम को धीरोदात्त, लोकनिष्ठ, कर्मठ और लोक–मर्यादा पुरूषोत्तम के रूप में चित्रित किया है। इन्होंने काम–क्रीड़ा को महत्व नहीं दिया। राम के प्रेम में मर्यादा है, उच्छृंखलता नहीं। उनके प्रेम में एक निष्ठा है। इसी प्रकार लोक–कवियों के गीतों में भी राम का चरित्र वही रहा। इनके चरित्र में कहीं लेशमात्र भी कलंक नहीं लगने पाया है। वस्तुतः राम भारतीय साहित्य की आदर्श आत्मा हैं। राम की तरह कृष्ण भी भारतीय साहित्य की आत्मा हैं, लेकिन मधुरात्मा। हमारे समक्ष कृष्ण के दो रूप आते हैं– एक में वे महान् राजनीतिज्ञ, महानवीर, सेनानायक, कुटनीतिज्ञ हैं और दूसरे में लीला–बिहारी हैं। हिन्दी साहित्य में अधिकांशतः कृष्ण के श्रृंगारिक रूप का वर्णन हुआ है। सूरदास कृष्ण–काव्य के प्रथम गायक हैं जिन्होंने कृष्ण के वात्सल्य और श्रृंगार का चित्र खींचा है। छोटानागपुर के कवियों की दृष्टि भी सूरदास की तरह ही रही है। जैसे एक गीत के प्रसंग में जितने भी साज बजाये जाते हैं, सबके स्वर मिले होते हैं। प्रस्तुतीकरण में भी स्वरों के रूप भिन्न होते हैं। लेकिन उनका भाव एक होता है। वैसे ही हमारे देश के कोने–कोने में स्वर तो भिन्न हैं लेकिन उनकी आत्मा और अनुभूति एक हैं; क्योंकि संस्कृति एक है। हमें नहीं सोचना चाहिए कि छोटानागपुर मैदान से एक अलग पठार है, यहाँ के निवासी मैदानी लोगों से भिन्न हैं और उनकी भावना, निष्ठा, संस्कृति तथा धर्म भी भिन्न हैं।

सूर, तुलसी, बिहारी, रसखान, मीराँ की तरह यहाँ के कवियों ने सर्वप्रथम भगवान की स्तुति की है। इसके बाद भक्तिपूर्ण एवं श्रृंगारिक गीत रचे

हैं। विनन्द सिंह, गौराँगिया, रामकृष्ट, नरोत्तमदास, दीना, त्रिलोकनाथ, बोधा, और दुर्योधना प्रमुख कवि हैं। इन्होंने ब्रजभाषा के कवियों की राह को अपनाया है। यहाँ पर सभी कवियों की कृतियों पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं है। नमूने के लिए कुछ गीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

बिहारी और विद्यापति की तरह इन कवियों ने श्रृंगार रस में मर्यादा का पर्दा खोलकर रख दिया है। गीत प्रायः सभी रसों में हैं। अलंकार, तुक, और छन्द का भी प्रयोग हुआ है। ये कवि भक्त होने के साथ–साथ रसिक भी हैं। सूर, तुलसी, मीरा, की तरह गीत रचना के पहले भगवान की स्तुति की है; देखिए–

बंदउँ गुरूपद पदुम परागा।
सुरूचि सुवास सरस अनुराग।
–तुलसी

चरण कमल बन्दौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै,
अन्धे को सब कुछ दरसाई।।
–सूर

मन रे! परसि हरि के चरण।
दासि मीरां लाल गिरिधर,
अगम तारण तारण।।
–मीरांबाई

श्री गुरू गोविन्द पदे करिये उद्देश्य,
बन्दी माता गौरी गनेश,
दयाकर सारदा सेस।
रवि, ससि तुमि हे महेश
दयाकर सारदा सेस।।
– विनन्द सिंह

अब हम लोकगीतों की श्रृंगारिकता पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होगा कि इन कवियों की राधा एक नायिका, परकीया और प्रेयसी है। कृष्ण के साथ केलि–क्रीड़ा; रास रचना ही उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। मैथिली में विद्यापति की राधा पहले तो किशोरी है, उसके बाद मुग्धा और विलासिनी एवं अन्त में कृष्ण में विलिन। जैसे–

सैसव जौवन दुहुँ मिली गेल
स्त्रवनक पथ दुहुँ लोचन लेल
खने–खने अंधरे आगे करूवास।

बंगला के कवि चण्डीदास की राधा विद्यापति से बिल्कुल भिन्न है। उसका अपना अस्तित्त्व हैं। वह कोमल ह्रदयी है साथ–साथ भावुक भी। इनकी राधा परकीया नायिका है। जैसे–

तुमि मोर पति तुमि मोर गति मन नाहिं आन मय।

चण्डीदास की राधा इतनी कोमल है कि क्षण भर के लिए कृष्ण का वियोग सह नहीं सकती। जैसे–

एसन पिरीत कभु देखि नाई सुनि।
पराणे, पराणे बांधा आपने आपनि।

सूरदास की राधा चण्डीदास और विद्यापति की राधा से भिन्न है। वह कृष्ण की पत्नी है, ब्रजवनिता है। उसमें शील और मर्यादा का संतुलित समन्वय है। वह आदर्श रमणी है जिसके चरणों में सूर ने अपने को समर्पित कर दिया है:–

राधा परम निर्मल नारि।
कहति हैं मन कर्मना करि ह्रदय दुबिधा परि।

इसी प्रकार विनन्द सिंह ने भी राधिका को कृष्ण की प्रेयसी के रुप में चित्रित किया है–

एक वृष भानु सुता, कि कहे रुपेर कुथा।
जल आनिबारे से बाहिर भेला राधिका।
हंस गमन जिमि चाल चलायं राधिका।

सूरदास और नन्ददास की तरह छोटानागपुर के कवियों ने भी संयोग–श्रृंगार और वियोग–श्रृंगार के गीत रचे हैं। जैसे–

प्रथम माधवी मासे,
उनमत ब्रज देशे गोपीनीरे।
हेरि, हेरि नवरस कुंजे,
बन मन जरे रे।।

--विनन्द

गजेन्द्र गामिनी धनी,
जीनी नव तरंगिनी
मंजीर सबद जेन,
अली गुँजे चन्द्रावदनी चले प्रेम काजे!

—गौरांगिया

सोलह श्रृंगार करि, जतो ब्रज नारी,
केह लाल, केह पील, केह पीत साड़ी।
दधि बेचन हारी, दधि बेचन हारी।

—विनन्द

अधरे दशन दाग, मेटिल सिंदुर राग, कइसे भेला,
कैसे भेला जे धनी बेनिया उजार कि कइसे भेला?

—भवप्रीता

सूर की भाँति इन सबका, संयोग—श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलंभ—श्रृंगार की ओर अधिक झुकाव रहा है। वियोग की प्रायः सभी अन्तर्दशाओं का वर्णन हुआ है। जैसे—

वसन्त समये दुति, गो, हे नाई मोर ब्रज पति,
नाना फूल, फुले मधुमासे।
सुनो, सखी गो, अबला धैरज धरि किसे?
साम सुन्दर वर कबे से आवयं मोर,
सखिया पंथ हेरि, रही दिन ताकिया।
व्याकुल गोपीगन, फिरत बने बन
एसन समये दागा देली,
कहाँ तजि गेला बनमाली।

इसी प्रकार भवप्रीता के गीतों में भी:

आर ना बांचब सखिया,
बिनु कालिया के देखिया।

काला के बांसिया काल भेल,
गोकुल कुल हरि लेल।
चहुँ दिसि देक, प्रणय गरल चालिया।

–भवप्रीता

आंखि आड़े होवोना हे
तिलेक बांचको ना, श्याम तिलेक बांचको ना,
दुखिनीर पाये हे जातना दिवोना।

–रामकृष्ण

यहाँ सभी कवियों के गीतों पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं हैं। फिर भी यह सर्वमान्य हैं कि इनके गीत किसी भी क्षेत्र से अछूते नहीं रहे हैं, पर दुःखद बात यह है कि न तो इनके गीतों का संकलन है और न कवि–जीवन–वृतांत ही। इस पर शोध की आवश्यकता है। लेकिन हर्ष इस बात का है कि इन गीतों में भी वही प्रणय–निवेदन, आत्म–निवेदन, दीनता, भाव–प्रेषणीयता, द्रवणता, माधुर्य और सहजनीयता हैं जो हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य गीतकारों–सूर–तुलसी और मीरा के गीतों में हैं।

***

कुरमाली का लोक–साहित्य

कुरमाली भाषा का नामकरण कुर्मी जाति के नाम पर हुआ है। 'कुर्मि' शब्द में 'आली' प्रत्यय लगकर कुरमाली शब्द बना है। इसे कुर्माली, कुड़माली, कुरमालीठार, महतोवाली, महतोभाषा आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। झारखण्ड क्षेत्र की अधिकांश भाषाओं का नामकरण जाति के आधार पर हुआ है। जैसे– मुण्डा से 'मुण्डारी', संताल से 'संताली', हो से 'हो', खड़िया से 'खड़िया', उराँव से 'उराँव', या 'कुडुख' तथा कुरमी से 'कुरमाली'। इसके विपरीत बंगला, मैथिली, भोजपुरी, मगही, उड़िया, नेपाली, गुजराती आदि भाषाओं के नामकरण के आधार भौगोलिक है। यही नहीं, दक्षिण भारत की भाषाओं के नामकरण भी स्थानवाची हैं। परन्तु, झारखण्ड क्षेत्र में भाषाओं के नाम स्थानवाची न होकर जाति या समुदाय सूचक है।

कुरमाली एक अन्तर प्रान्तीय भाषा है। कुरमाली की एक– लोकोक्ति– उड़िष्य शिखर नागपुर, आधा–आधी खड़गपुर में इसकी सीमा–रेखा की ओर इंगित किया गया है। अर्थात् उड़ीसा, छोटानागपुर, शिखरभूम तथा तथा पश्चिम बंगाल के खड़गपुर तक इसकी सीमा है यह भाषा बिहार के राँची, हजारीबाग, गिरिडीह, धनबाद, सिंहभूम, संतालपरगना, पश्चिम बंगाल के पुरूलिया, झाड़ग्राम, पं. बांकुड़ा, वीरभूम, उड़ीसा के क्योंझर, बोनई, बामड़ा, मयूरभंज और सुंदरगढ़ में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त असम और बांग्लादेश में भी कुरमाली भाषी लोग पाए जाते हैं। किन्तु, इन क्षेत्रों में बोलने वालों की संख्या बहुत सीमित है।

कुरमाली भाषा का क्षेत्र एक ऐसे सन्धिस्थल पर अवस्थित है, जिसकी उत्तरी सीमा पर मगही, उत्तर पूर्व में अंगिका, पश्चिम में कुडुख तथा नागपुरी, दक्षिण–पश्चिम में 'हो' और पूर्व में बंगला बोली जाती है। उडीसा का कुरमाली क्षेत्र चारों ओर उड़िया से घिरा है।

कुरमाली सदा से ही साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित रही है। पता नहीं लोकसाहित्य मर्मज्ञों, अनुसंधाताओं, नविज्ञानवेत्ताओं तथा जातिविज्ञान वेत्ताओं का ध्यान इधर क्यों नहीं गया? विगत कई वर्षो से राँची विश्वविद्यालय में जनपदीय भाषाओं की स्नातकोत्तर स्तर तक पढ़ाई की व्यवस्था होने के कारण लोकभाषाओं को बड़ा बल मिला है और विविध विधाओं में साहित्य–सृजन होने लगा है। इसके कुछ वर्षों पहले तक कुरमाली विशुद्ध रूप में लोकसाहित्य के

रूप में ही मिलता था। कुरमाली लोकसाहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है। यह परिणाम में जितना समृद्ध है, काव्यगत विविधताओं में भी उतना ही उत्कृष्ट है। इसकी विविध विधाओं में सरसता, गंभीरता, मृदुता, लोच सभी कुछ पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

लोकसाहित्य को जनजीवन का आइना कहा गया है। इस आईने में अनपढ़ मूढ़ जनता की भावनाओं का, उनकी मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब झलकता है। भारतीय जन–जीवन की सदा से ही यह प्रवृत्ति रही है कि वे अपने सुख–दुःख की बातों को सहज ढंग से लोकसाहित्य के विविध रूपों में प्रकट करता आया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किसी भी प्रदेश की संस्कृति का जीता–जागता चित्र उसके लोक–साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। समाज के विकास की सूक्ष्मतम रेखा, सामाजिक अवस्था, जन–मानस की आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, आवेश–आक्रोश, शौर्य–पराक्रम, राग–वैराग्य, मनन–चिंतन सभी की सटीक एवं सजीव अभिव्यक्ति लोकसाहित्य के माध्यम से होती है।

कुरमाली लोकसाहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके मुख्य दो रूप मिलते हैं– गद्य रूप और पद्य रूप। इसके गद्य रूपों में लोककथा, मुहावरें, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ हैं। काव्य रूप में लोकगीत हैं। लोकगीतों के विविध रूप हैं, जो मौसम के अनुसार गाये जाते हैं। इन लोकगीतों में कुरमाली संस्कृति, रीति–रिवाज, विचारधारा, चिंतन–पद्धति, कृषक जीवन, धर्म, विश्वास, आनंद–वेदना आदि भाव अभिव्यक्त हुए हैं। इस संदर्भ में एक बात का उल्लेख करना अत्यंत समीचीन प्रतीत होता है कि कुरमाली के जनकवियों के गीत बहुत पुराने हैं। ये गीत जन–मानस के कण्ठहार बन गये हैं। यद्यपि ये गीत लोकगीतों की परिधि में नहीं आते। फिर भी इनकी लोकप्रियता इन्हें लोकगीतों के समीप खड़ा कर देती है। परन्तु, लोकगीतों कि संख्या इनसे कहीं ज्यादा हैं।

कुरमाली लोकसाहित्य की जो सामग्रियाँ मिलती हैं, उन्हें स्थूल रूप में पाँच वर्गो में रखा जा सकता है– 1. लोकगीत, 2. लोककथाएँ, 3. लोकनाट्य, 4. कहावतें, और 5. पहेलियां।

1. लोकगीत–

कुरमाली में लोकगीतों की संख्या बहुत हैं। आज भी ये लोकगीत लोक–मुख में जीवित हैं। गीत अत्यंत सरस और मर्मस्पर्शी हैं। कुरमाली गीतों की परम्परा अति प्राचीन है। कोई भी अनुष्ठान गीत एवं नृत्य के बिना सम्पन्न

नहीं होता। अधिकांश गीत नृत्य–गीत हैं। प्रत्येक माह के गीतों के ताल, सुर, लय अलग–अलग हैं। राग के द्वारा ही गीतों के पार्थक्य, और वैशिष्ट्य को समझा जा सकता है। जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं, ऐसा दृष्टिकोण, ऐसा स्पन्दन नहीं, जो कुरमाली लोकगीतों के संस्पर्श से अछूता हो।

कुरमाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषता यह है कि अधिकांश गीत प्रश्नोत्तर के रूप में हैं। छन्द–विधान के नियम से पूर्णतः मुक्त हैं। इसके अपने छन्द है, जो गेय हैं। गीतों के लय द्वारा ही शैलीगत तत्त्व को पहचाना जा सकता हैं। कहीं–कहीं स्वतः अलंकारों का प्रयोग हुआ हैं। कुरमाली लोकगीतों को कई वर्गों में रखा जाता है। जैसे– संस्कार–गीत, ऋतु–गीत, अनुष्ठानिक–गीत, श्रम–गीत, खेल–गीत, जाति–गीत, प्रबंध गीत आदि। प्रबंध गीत के अन्तर्गत महाराई गीत आते हैं। ये गीत बहुत लंबे होते हैं। इसमें कुरमी समाज के रीति–रिवाज, संस्कार, अनुष्ठान, वंश आदि का वर्णन हैं।

कुरमाली के प्रमुख लोकगीत हैं– उधवा, ढप, बिहा, डमकच, सरहूल, नटुआ, डाँइड़धरा, जावा, करम, एढ़ेइआ, डाबका, बाँदना, कुवाँरीझुपान आदि। कुरमाली लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यहाँ पर प्रत्येक गीतों का विस्तारपूर्वक परिचय देना संभव नहीं है। परन्तु, संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुरमाली के लोकगीतों में कुरमाली समाज के रीति–रिवाज, जीवन–यापन की पद्वति, तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, सामाजिक सम्बन्थ, इतिहास दर्शन, संस्कृति आदि का चित्रण ही मुख्य विषय रहा है।

कुरमाली के मध्ययुग (1750–1850) से शिष्ट साहित्य का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि सन् 1485 के आस–पास चैतन्य महाप्रभु का पदार्पण झारखण्ड प्रदेश में हुआ था। उन्हीं के द्वारा इस क्षेत्र में वैष्णव भावना का प्रचार–प्रसार हुआ। कुरमाली कवि भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

मध्ययुगीन कुरमाली कवियों ने तुकान्त गीतों की रचना की है। तुक गीतों का आवश्यक अंग बन गया है। गीतों को सरस बनाने के लिए मुख्य प्रवृत्ति तुकान्त गीतों की ओर थी। परन्तु, यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें तुक के नियमों का पूर्णतः पालन किया गया है। गीतों में प्रायः हाय–हाय, अहो रे, गो, हाय रे हाय, मरि हाय रे, बाबा आदि प्रत्येक पंक्ति के अंत में गाए जाते हैं। ये टेक पद का काम करती हैं। इसका गीतों के अर्थ से कोई संबंध नहीं रहता। सामान्यतः गीत चार कड़ी की भनिता सहित है। प्यार छन्द के चौतीसा गीत भी

इस युग के कवियों की एक विशिष्ट देन है। इस काल के कवियों की रचना शैली भिन्न–भिन्न थी तथा कुरमाली के गीतों में अन्य भाषाओं के शब्दों का समावेश होने लगा था।

2. लोककथा–

कुरमाली में लोक–कथाओं का विशाल भंडार मिलता है। साधारणतः लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना ही रहा है। लोग रात को घर में, खेत–खलिहान के कुम्बा में या 'धँधौरा' के चारों ओर बैठकर जाड़े की लम्बी रात काटने के लिए कहानियाँ कहते हैं। कुरमाली लोककथाओं में अलौकिक और असंभव बातों की भरमार है।

कुरमी समुदाय प्रधानतः कृषिजीवी है। इनका सम्बन्ध खेत–खलिहान, वन–जंगल, पशु–पक्षी और प्राकृतिक उपादानों से अधिक रहा है। प्राकृतिक वस्तुओं से सहायता मिलने की बातें अनेक कथाओं में मिलती है। अतः पहाड़, नदी, पेड़ आदि को पूजनीय स्वीकार किया गया है। अनेक कथाओं में चाँद, सूरज, पृथ्वी, नदी, घास आदि की उत्पत्ति का वर्णन भी मिलता है। एक ओर अनेकानेक कारण–निर्देशक कथाएँ मिलती हैं तो दूसरी ओर पर्व–त्योहार की उत्पत्ति सम्बन्धी कहानियाँ भी मिलती हैं।

कुरमाली लोककथाओं में जड़–चेतन वस्तुओं को अपने समान चेतनशील माना गया हैं। पहाड़, नदी, वृक्ष, बाघ, भालू, सर्प, बिच्छू, पक्षी, चींटी को नायक का सहायक स्वीकार किया गया है। फलतः इन्हें कुरमाली लोक–कथाओं में असीम प्यार और श्रद्धा मिली है। अनेक कथाओं में मानव–कन्या की मानवेतर प्राणियों से विवाह होने की चर्चा मिलती है। कुरमाली लोक–कथाओं में अन्ध–विश्वास, तंत्र–मंत्र, झाड़–फूँक, आश्चर्य, क कृतघ्नता, लालच, ईर्ष्या, भूत–प्रेत, परी, ठगी, चालाकी, धूर्तता की बातें मिलती हैं। भूत–प्रेत, राक्षस और परी कथाओं में अलौकिक और विस्मयकारी घटनाओं का दिग्दर्शन होता है तो दूसरी ओर झाड़–फूँक, भूत–प्रेत, ग्राम–पूजा सम्बन्धी कथाएँ आज भी समाज में स्थान बना रखी हैं। सामाजिक कथाओं में राजा–प्रजा, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, ननद–भाभी, भाई–भाई, माँ–बेटा आदि आदर्श और अनैतिक सम्बन्धों को दर्शाया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुरमाली लोककथाओं में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक बातों के अतिरिक्त समाज में प्रचलित व्यवस्था, प्रथा–कुप्रथा, रीति–रिवाज, अंध–विश्वास, श्रद्धा–भक्ति, आचार–व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों को उजागर किया गया है।

3. लोकनाट्य–

हमारे देश में लोकनाट्य की प्रथा बहुत प्राचीन है। यद्यपि लोकनाटयों में नाटक के सभी तत्त्व नहीं मिलते, फिर भी नाटक के कुछ न कुछ तत्त्व तो अवश्य मिलते हैं। वस्तुतः साहित्यिक नाटक की नींव ये लोकनाट्य ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। कुरमाली के प्रमुख लोकनाट्य हैं– छौ नृत्य, नटुआ नृत्य, डमकच, माछानी, आदि। छौ नृत्य में नर्त्तक अपने मुख पर मुखौटा धारण करता है और अंग–प्रत्यंग के हाव–भाव द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करता है। कथा वस्तु के रूप में पहले गीत प्रस्तुत किया जाता है। गीत के द्वारा ही दृश्य परिवर्तन होता है। यह मौसमी नृत्य है। परन्तु, अपनी लोकप्रियता के कारण अब यह ग्रामीण अखाड़े से निकलकर अन्तर्राष्ट्रीय रंग–मंच पर आ गया है। नटुआ एक पारम्परिक नृत्य है। नर्त्तक अपने शरीर को रंगीन फीतों से सुसज्जित करता है और अपने हाथों में ढाल और तलवार लेकर नृत्य करता है। उसकी भंगिमा युद्ध की स्थिति की होती है। वस्तुतः यह वीर रस का नृत्य है। डमकच विवाह के अवसर पर होने वाला नृत्य है। जब वर विवाह करने के लिए चला जाता है तो घर की स्त्रियाँ मर्दों का पोशाक पहनकर नृत्य करती है। संवाद गीतों के रूप में कहती हैं। कभी–कभी विवाह का अभिनय तो कभी–कभी अन्य कथावस्तु को लेकर अभिनय करती हैं। गीत प्रश्नोत्तर के रूप में होते हैं, जिसे हम कथोपकथन शैली कह सकते हैं।

4. कहावतें–

कुरमाली कहावतों के सम्बन्ध में बलपूर्वक कहा जा सकता है कि हास्य–व्यंग, ललकार, चेतावनी, सूचना, सूक्ति के द्वारा गूढ़ बातों की शिक्षा दी जाती हैं। मानव–जीवन की कोई ऐसी गतिविधि नहीं जिसे कहावतों के क्षेत्र से बाहर कहा जा सके। इसके अतिरिक्त कुरमी जाति के आचार–विचार, रीति–रिवाज, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यंजना मिलती है। वस्तुतः जीवन के सत्य इन लोकोक्तियों में दिग्दर्शित होते हैं। जैसे–

धर्म सम्बन्धी	– जेइं करेइ पुइन, से हेइ ढिपा सुइन।
नीति सम्बन्धी	– हेंठ गुड़िया, बेड़े एँड़िया।
कृषि सम्बन्धी	– आमे बान, तेंतेइरे टान।
	– सावनेक गाछी आर माघेक बाछी।

शिक्षा सम्बन्धी — नदी धारेक चास, मिछाइ करे आस।
— घुसल चट नेहाइ परे।

आलोचना संबंधी — सुमेक धन सयताने खाय,
बाँचे से अदालत जाय।

जाति सम्बन्धी — बाँस बने डम काना।
— कोल कुरमी कड़ा, बेद सासतर छाड़ा।

राजनीति संबंधी — बेजाइं काठे महुआ सिझे, आर बेजाइं
काथाइं कुरमी बुझे।

यहाँ पर उन सभी लोकोक्तियों का समावेश करना असंभव है जो लोक—जीवन के किसी—न—किसी कोने को स्पर्श करते हों।

5. पहेलियाँ—

ग्रामीण जनता में पहेलियों का बड़ा व्यापक प्रचार है। समाज में पहेलियाँ मनोरंजन के लिए कहते हैं। साधारणतः देखा जाता है कि कुम्बा में सोते समय या धंधौरा के बगल बैठकर पहेलियाँ कहना और सुनना देहात में आम बात है। उदाहरणार्थ यहाँ पर कुछ पहेलियाँ प्रस्तुत की जा रही है—

भोजन सम्बन्धी — लकलक डाँड़ी, चकचक पात।
खाइत के मधुरस, उलगेइंत के कपास।
—ईख

प्राणी सम्बन्धी — आबट गरू, दाँवब केसे।
गिरल पइना, बिछब केसे।
—साँप

अंग—प्रत्यंग संबंधी — बाघ—बाघिन हार जते,
कुकुर बुने धान
बनेक बाँदर नुड़ा झाड़े,
रेवड़िया किसान।

उतर — दाँत, जीभ, पेट, हाथ।

फूल—फल संबंधी — गाछेक नाम हीरा।
ताहाँ फरे गुड़, बेइगन जीरा।

उचित प्रतीत नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते है कि कुरमाली लोक–साहित्य का अपना अच्छा–खासा इतिहास है और अपने गर्भ में साहित्यिक विविध विधाओं को संजोये हुए है। खेद है कि इतना समृद्ध साहित्य का आज तक अपेक्षित अध्ययन नहीं हुआ है। परन्तु, मंथरा गति से ही सही, अब इसका पल्लवन हो रहा है। कुरमाली की कई विधाओं पर शोध–प्रबंध लिखे जा चुके हैं और अनेक छात्र–छात्राएँ शोधरत हैं। अभी तक जिन व्यक्तियों को पीएच. डी. डिग्री से सम्मानित किया गया है, उनका उल्लेख करना समुचित प्रतीत होता है।

1. डा. एन. के. सिंह, कुरमाली बोलीः एक भाषा तात्विक अध्ययन, (शांतिनिकेतन विश्वभारती)।
2. डा. संतोष कुमारी जैन, कुरमाली लोकगीतः साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन (राँची विश्वविद्यालय)।
3. डा. हरदेव नारायण सिंह, कुरमाली लोककथाओं की कथानक रूढ़ियाँ : एक अनुशीलन (मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)।
4. डा. अदिकन्द महन्ता, उड़ीसार कुरमाली लोकगीत, (राँची विश्वविद्यालय)।
5. डा. चन्द्र मोहन महतो, कुरमाली का व्याकरण (राँची विश्वविद्यालय)।
6. डा. मनोरमा कुमारी, कुरमाली लोकोक्तियों का अध्ययन, (राँची विश्वविद्यालय)।
7. डा. परमेश्वरी प्रसाद महतो, कुरमाली के बाँदना गीतों का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन (राँची विश्वविद्यालय)।
8. डा. विभूति भूषण महतो, पश्चिमी सीमांत बंगलार कुरमाली लोकगीत, (राँची विश्वविद्यालय)।
9. डा. राम नारायण महतो, कुरमाली झूमर : वस्तु और शिल्प, (राँची विश्वविद्यालय)।
10. डा. मानसिंह महतो, हिन्दी और कुरमाली के रास लीला साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।
11. डा. गीता कुमारी सिंह, कुरमाली लोकसाहित्यः विश्लेषणात्मक अध्ययन।
12. डा. विजय कुमार मुखर्जी, कुरमाली कृष्णकाव्यः परम्परा और वैशिष्ट्य।
13. डा. वृन्दावन महतो, ट्रेडिशनल रिलिजियो फिलोसोफिक आस्पेक्ट ऑफ दी कल्चर सिस्टम ऑफ दी कुरमीज इन छोटानागपुर प्लेटो।
14. डा. राजाराम महतो, कुरमाली विवाह गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन।

***

आशंका रहती है। यह लोकोक्ति धान की फसल के अच्छे–बुरे होने की ओर इंगित करती हैं।

3. सावनेक गाछी आर माघेक बाछी– छोटानागपुर में धान की खेती करने **के दो तरीके हैं– एक रोपा और दूसरा बुना। 'रोपा' खेती में पहले खेत के किसी निर्दिष्ट स्थान पर 'बीहन' तैयार करने के लिए धान बोया जाता है जिसे 'बीहन गाढ़ी' कहते हैं। बीहन तैयार हो जाने पर धान के पौधों को उखाड़कर सम्पूर्ण खेत में रोप दिया जाता है। ठीक इसके विपरीत 'बुना' करने की खेती में खेत के सम्पूर्ण हिस्से में धान छींट दिया जाता है और खेत का जो हिस्सा रिक्त रह जाता है, उसमें धान के घने पौधों को उखाड़कर खाली स्थानों में पुनः रोप दिया जाता है जिसे 'गाछी' देना कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि यदि सावन महीने में 'गाछी' दी जाय तो बहुत ज्यादा फसल होने की आशा रहती हैं। इसी प्रकार जो गाय माघ महीने में बच्चा जन्म दे वह बछड़ा या बछड़ी शक्तिशाली और नीरोग होता है।**

4. सौ चासेक एक ताक– हर कार्य के निष्पादन हेतु अच्छे अवसर की तलाश रहती हैं। कृषि–कर्म में भी सुअवसर की अपेक्षा होती हैं अन्यथा किए–कराये पर पानी फिर जाता है। चाहे हम किसी प्रकार की खेती क्यों न करे, यदि अच्छा मौका न मिला तो हमे हानि उठानी पड़ती है।

5. घाइतेक चास बेघाइतेक बास– खेती करने में सदैव अच्छे अवसर की आवश्यकता पड़ती है। हम चाहे कठिन परिश्रम करें यदि हमें अच्छा मौका न मिला तो सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति को जीवित रहने के लिए किसी सुरक्षित स्थान की आवश्यकता पड़ती है।

6. नदी धारेक चास मिछाइ करे आस– किसी नदी के किनारे की जाने वाली खेती की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि नदी में कब बाढ़ आ जाए और खड़ी फसल को नष्ट कर दें। अतः नदी के किनारे की जाने वाली खेती बहुत सोच–समझ कर करनी चाहिए।

7. जँदे–जँदे पानीक सत, तँदे–तँदे कुरमीक जत– यह तो निर्विवाद रुप से सत्य कहा जा सकता है कि कुरमी जाति खेतीहर जाति है। अतः उन्हें जहाँ आसानी से पानी मिल जाए, वहीं वे अपना निवास स्थान बना लेते हैं क्योंकि खेती के लिए पानी की परमावश्यकता है।

8. चासा चिन्हाइ आइड़े आर ताँती चिन्हाइ पाइड़े– एक कुशल कृषक की पहचान उसके खेत की मेड़ से होती है। जिस प्रकार 'पाँचन' या 'गहमा' (एक

प्रकार की साड़ी) की पाड़ से एक कुशल ताँती (बुनकर) की पहचान होती है। छोटानागपुर में खेत की मेड़ का बड़ा महत्व हैं क्योंकि यहाँ की जमीन ऊबड़–खाबड़ खेत की मेड़ को इस प्रकार तैयार करता है कि खेत का पानी रिसे नहीं।

9. चासे रुप नासे— प्राचीनकाल में कृषि को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। परन्तु, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि खेती–बारी करने वाले व्यक्ति का शारीरिक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, क्योंकि कृषकों को जाड़ा, वर्षा तथा गर्मी की चिलचिलाती धूप में भी काम करना पड़ता है। यही नहीं, मिट्टी, कीचड़, गोबर आदि का साहचर्य उसके जीवन का अंग होता है। ऐसी स्थिति में शारीरिक–सौन्दर्य को बनाये रखने की कल्पना कैसे की जा सकती हैं।

10. जेठिन गबर, सेठिन दबड़— जिस खेत में खाद के रुप में गोबर दिया जाए, वहाँ पर फसल दुगुनी होने की अपेक्षा की जा सकती है।

11. पहिल मकरी, ताकर परे छकरी— प्रस्तुत लोकोक्तियों में बाल–विवाह निषेध की ओर संकेत किया गया है। साधारणतः देहातों में पहले बाल–विवाह का अत्यधिक प्रचलन था। परन्तु, इस लोकोक्ति में कहा गया है कि जब तक लड़का खेती करने लायक न हो जाये तब तक उसे विवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि शारीरिक रुप से परिपक्व होने पर ही कोई व्यक्ति खेती कर सकता है। निश्चित रुप से यह लोकोक्ति हमें बाल–विवाह नहीं करने का संदेश देती हैं।

12. पहिल खँपा, तबे रपा— यह लोकोक्ति बाल–श्रम निषिद्ध की ओर संकेत करती हैं। लड़कियों को तब तक खेती–बारी या रोपनी के कार्य में नहीं लगाना चाहिए, जब तक वह अपना जुड़ा (खँपा) स्वयं बनाने में समर्थ न हो। ऐसा माना जाता है कि वयस्क होने पर ही लड़कियाँ अच्छी तरह से जुड़ा बना सकती हैं। आज बाल–श्रम कानूनन अपराध माना गया है। परन्तु, कुरमाली के अनेक ऐसे संस्कार है जो हजारों–हजार वर्षों से प्रचलित हैं। ऐसे उदात्त संस्कारों का अन्य समुदाय या समाज के लिए अनुकरणीय है। उदाहरणार्थ— दहेज–प्रथा निषेध, बाल–विवाह निषेध, बाल–श्रम निषेध, विधवा–विवाह करने इत्यादि।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कुरमाली में अनेकानेक लोकोक्तियाँ हैं जो कृषि–कर्म की ओर इंगित करती है। यहाँ पर तो दृष्टान्त के रुप में कुछ लोकोक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं। कुरमाली लोकोक्तियों में कुरमाली जीवन के विविध पहलुओं का सटीक वर्णन हुआ है।

***

छोटानागपुर की उपलब्धिः लोकगीतों के परिवेश में

छोटानागपुर में अनेक तरह की बोलियाँ बोली जाती हैं। थोड़ी ही दूरी के बाद लोक–भाषा में अन्तर होता गया है। छोटानागपुर का पंचपरगनियाँ - सिल्ली, बुन्डू, तमाड़, सोनाहातु और राहे– इलाका झूमर के लिए विशेष प्रसिद्ध है। मानभूम में झूमर कुरमाली–झूमर के नाम से प्रसिद्ध है, हमारे यहाँ पंचपरगनियाँ के नाम से। परन्तु, इससे नहीं समझना चाहिए कि इसका क्षेत्र केवल मानभूम ही है, बल्कि संथाल परगना तथा समस्त छोटानागपुर है। 'कुरमाली' शब्द 'कुर्म' में 'आली' प्रत्यय लगाकर बना है। कालान्तर एवं स्थानान्तर के कारण इसमें भोजपुरी, मागधी, मैथिली, उड़िया, बंगला भाषा का समावेश हुआ है। श्री देवकी नन्दन प्रसाद के शब्दों में– 'समस्त गीत ही भोजपुरी की जमीन पर कुरमाली की सेटिंग है।'

यहाँ के गीतकारों में दुर्योधना, विनन्दिया, रामकृष्ण, खेपा, बोधा, त्रैलोक्यनाथ, द्विज आदि हैं। सभी गीतकारों के गीत नृत्य–गीत हैं और ताल, लय, सुर, और गेयता की दृष्टि से वे धनी हैं। इन लोकगीतों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है – वे गीत जो शुद्ध प्रादेशिक हैं। जैसे –

वसन्त समये दुती, गृहे नाइ मोर ब्रजपति,
नाना फूल–फूले मधुमासे, सुन,
सखी, गो अबला धीरज धरि किसे।।

दूसरी श्रेणी में उन गीतों को रख सकते हैं जिनमें बंगला भाषा का बाहुल्य है। जैसे–

गीये छिलाम मधुपुरी, देखे एलाम फिरी।
मनेर यतन कत, पेयेछे नागरे।।

श्री देवकीनन्दन जी के शब्दों में– "विनन्दिया के गीत ब्रजभाषा की टकसाल के ढले हैं और उस पर भाषाओं के मिश्रण का सम्मोहन है। उसके शंकरी कलेवर पर भक्ति का तीनखाव हैं। शब्दों का लोच भावों भरी भूमि में चार चाँद जोड़ देते हैं और रसानन्द में विभोर करने में अपना सानी नहीं रखता।"

रामकृष्ण के गीतों में एक दर्द है, एक टीस है जो तीर बनकर गायक, श्रोता और रसिक के दिलोदिमाग पर से तिरता हुआ ह्रदय में आकर बैठ जाता है। 'खेपा' के गीतों में उद्भ्रान्ति है, विभ्रम है, असहायवस्था का चित्रण है तथा दूसरी ओर एक मीठा दर्द है।

बोधा के गीतों में एक सूल है। प्रियतम से मिलने की एक तीव्र उत्कंठा है। सीधे–साधे शब्दों में भावों के पूंज है।

अब हमें विचार करना है कि इन लोकगीतकारों ने साहित्य और समाज को क्या दिया। छोटानागपुर के लोगों का जन–जीवन ही संगीतमय रहा है; क्योंकि लोकगीतों का जन–जीवन के साथ सामीप्य है। इनमें ग्रामीण जीवन के प्रेम, लालसा, उल्लास, विषाद आदि का चित्रण होता है। ये लोकगीत ग्रामीण जन–जीवन की परिधि के भीतर हैं। इनमें जीवन की शुद्धता, वास्तविकता, मार्मिकता, एवं जन–जीवन की स्वाभाविक सहज अनुभूतियाँ प्रकट होती है। ये साहित्यिक नियमों से आबद्ध नहीं होते। यही कारण है कि जन–जीवन के गहराई तक पहुँच पाये। वास्तव में लोक–गीत मानव संस्कृति और समाज का वास्तविक प्रतिनिधि है। किसी देश की संस्कृति, रीति–रिवाज, विचारधारा, चिन्तन–पद्धति एवं दर्शन की जानकारी के लिए लोकगीत ही सहायक हो सकते हैं। यह अंलग बात है कि सूर, तुलसी मीरा, के गीतों को साहित्य में स्थान मिला और इन लोकगीतों को नहीं। लोकगीतों में मनोरंजन की भावना होती हैं। यद्यपि लोकगीतकार इसे मोक्ष का साधन भी मानते हैं। यही कारण है कि इन गीतकारों ने गीत रचना के पूर्व भगवान की स्तुति या मंगलाचरण की है। अस्तु, इसमें परमानन्द की प्राप्ति होती है। लोकगीतों का सम्बन्ध पारिवारिक जीवम से होता है। प्रेम, विरह, संयोग, पर्व–त्यौहार, उत्सव, विवाह, ऋतु, पूजा, नृत्य आदि के विषय होते हैं। जन–जीवन के निकट होने के कारण समाज के सभी वर्गों पर इनका प्रभाव पड़ता है।

ये लोकगीत, लोक–कथन–श्रवण में ही जीवित है। लिखित पाण्डुलिपियाँ भी है जो धीरे–धीरे प्रकाश में आ रही हैं। पीछे चलकर लोकगीत–प्रेमियों ने इन बिखरे गीतों को किताबी रुप भी दिया। यदि पहले साहित्य–प्रेमियों ने इस पर ध्यान दिया होता तो अवश्य ही इन्हें समुचित स्थान मिलता। इनकी कृतियों से मालूम होता है कि ये उच्च कोटि के गीतकार ही नहीं, बल्कि इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी।

छोटानागपुर का सामन्तवर्ग सदा से ही गीत और नृत्य के शौकिन रहे हैं। उनके यहाँ 'रास' रचायी जाती थी। यही कारण है कि इन कवियों ने साहित्य–गीत की रचना न कर गीतों की रचना की। गीत प्रायः रामायण और महाभारत पर आधारित है। दूसरे शब्दों में इनको राम काव्य और कृष्ण काव्य

कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। सभी कवि साकार ब्रह्म के उपासक थे। इनमें वैष्णव, शैव, शाक्त का समन्वय है। कहीं–कहीं निर्गुण की झलक भी मिलती है। रहस्यवादी गीतों की भी कमी नहीं है।

पंचपरगना के लोकगीत–साहित्य मानस और सूर–सागर का संगम है। अब हम थोड़ा लोकगीतों के साहित्यिक प्रारुपों का विवेचन करें तो ज्ञात होगा कि इन लोकगीतों में साहित्य के विविध अंगों– अलंकार, रस, गुण, छन्द, तुकादि का प्रयोग हुआ हैं। सूर, मीरा, रसखान, बिहारी, तुलसी, जैसे मध्यकालीन एवं रीतिकालीन कवियों के साथ इनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इन्होंने भी ब्रजभाषा के कवियों की राह को अपनाया है। जिस तरह सूर ने श्री कृष्ण की बाल–लीला, गोपियों के साथ केलि–क्रीड़ा, गोचारण, बाँसुरी महिमा, गोपियों के संयोग और वियोग का मनोहारी चित्र खींचा है उसी प्रकार विनन्द सिंह के गीतों में हम पाते हैं। विनन्द सिंह का काव्य क्षेत्र सूर के समान है। इसमें विनन्द को अद्‌भुत सफलता मिली है। यदि विनन्द सिंह को कुरमाली का सूर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

लोकगीत में प्रायः सभी रसों का वर्णन हुआ है। अनुप्रास, उपमा, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, स्मरण, उल्लेख आदि अलंकारों की तो भरमार है। सभी गीत छन्दबद्ध है। उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण देखिये–

"श्याम–वरण तनु जेसन उदित भानु।"

सूर की तरह विनन्द सिंह ने श्रीकृष्ण के विविध लीलाओं का वर्णन किया है। वियोग श्रृंगार के क्षेत्र में तो उन्होंने कमाल कर दिया। श्रीकृष्ण के वियोग में गोपियाँ ही नहीं रोती बल्कि–

"सारी शुक सारी, रोवत डारी–डारी।

ए सारी कहु सारी, कहाँ गेला हरि।।"

संयोग श्रृंगार में भी इन कवियों ने खूब लिखा है। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का भी अत्यन्त मनोहारी वर्णन हुआ है। श्रीकृष्ण को केवल एक नृत्य–प्रवीण के रुप में ही चित्रित नहीं किया गया है, बल्कि वे सच्चिदानन्द–स्वरुप हैं जिनकी महिमा अपरम्पार है, अनादि है, असीम है, अनन्त हैं। वे ही भव–रुपी सागर पार कराने वाले हैं। श्रीकृष्ण की बांसुरी भी इनसे अछूती नहीं रही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में साहित्य के विविध क्षेत्रों का समावेश हुआ है। विशेषकर सूर के काव्य–क्षेत्र के साथ इन लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता हैं। यहाँ पर सभी क्षेत्रों पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं हैं। यहाँ पर हम उनके गीतों का समान्य परिचय दे पाये। इस पर काफी अध्ययन की आवश्यकता है। पर दुःख का विषय है कि इन लोक–कवियों की जीवनी अन्धकार में हैं। इस पर शोध की आवश्यकता है।

लोकगीतों में उधवा, डमकच, सोहराई गीत, टुसू गीत, करम गीत, रोपनी गीत, नटुआ गीत, छौ–नृत्य गीत, ढप गीत इत्यादि हैं। ढप गीत तो बिल्कुल रहस्यवादी गीत हैं। पहेली, मुहावरे, लोकोक्तियों की भी भरमार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुरमाली के लोकगीतों का एक सबल साहित्य बन सकता है।

***

छोटानागपुर के सूर : विनन्द सिंह

छोटानागपुर में विभिन्न प्रकार की बोलियाँ बोली जाती हैं। हर चार–छः मील के बाद लोकभाषाएँ बदलती गई हैं। हर बोली का निजी महत्व है। अपनी मातृ–भाषा के माध्यम से यहाँ के लोककवियों ने अपनी–अपनी भाषाभिव्यक्ति की है। इन लोक–गीतों में छोटानागपुर की संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज तथा परम्परा के चित्र की झाँकियाँ मिलती हैं।

राँची जिले के पूर्वांचल में रहने वाले (सिल्ली, तमाड़, बुन्डू, राहे, सोनाहातु) लोग पाँच परगनियां के नाम से विख्यात हैं। इन क्षेत्रों में कई तरह की जातियाँ रहती हैं। उनकी भाषा 'पंचपरगनिया' हैं। इस विशाल क्षेत्र में कुरमाली बोली जाती है। वस्तुतः पंचपरगनिया डा. ग्रियर्सन के अनुसार कुरमाली की उपभाषा है।

यहाँ पर हम सिल्ली क्षेत्र के कवियों की कृतियों पर प्रकाश डालेंगे। यहाँ के कवियों के लोकगीतों की स्वतंत्र परम्परा है। इनके लोकगीतों का आधार रामायण और महाभारत है। इन कवियों ने राम–कृष्ण को अपना नायक मान कर उनकी लीलाओं को ललित पदों में रचकर लोकगीतों का रूप दिया है। इनके वर्ण्य–विषय की तुलना किसी भी मध्यकाल के हिन्दी कवियों से की जा सकती हैं। अधिकांश कवि वैष्णव मतावलम्बी थे। वैष्णव– धर्म में युगल मूर्ति की आराधना की परिपाटी है। उसमें ब्रह्मा के साथ माया, विष्णु के लक्ष्मी, राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ राधा की उपस्थिति अनिवार्य है। राधा–कृष्ण को इन्होंने अपने गीत में अधिक प्रश्रय दिया है। राधा–कृष्ण की लीलाओं को अपना वर्ण्य–विषय बनाया।

वात्सल्य–रस के आचार्य सूर की तरह विनन्द सिंह भी वैष्णव मतावलम्बी थे। सूर ने श्रीकृष्ण की बाल–लीला, गोपियों के साथ केलि–क्रीड़ा, गोचारण, बांसुरी–महिमा, गोपियों के संयोग और वियोग–श्रृंगार का मनोहारी वर्णन हुआ है। विनन्द सिंह का काव्य–क्षेत्र भी सूर के सामान कृष्ण के वात्सल्य, संयोग और वियोग श्रृंगार का है। इन क्षेत्रों में विनन्द सिंह को अद्‌भूत सफलता मिली है। हम क्रमशः इनके प्रत्येक क्षेत्र पर विवेचन करेंगे। यदि विनन्द सिंह को छोटानागपुर का सूर कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस लेख में हम कृष्ण–गोचारण–सम्बन्धी गीतों पर विशेष रुप से प्रकाश डालेंगे। दोनों भाषा में सादृश्यता है। गीत–

जमुना किनारे बन, ताइ गिरि गोबर्द्धन।
राम–कान्हु मिली दुइ जने, धेनु चराइ वृन्दावने।।
आम, जाम तरु छाया, बसिले शीतल काया।
लुहु–लुहु बहिले पवने, धेनु चराइ वृन्दावने।।
धेनु रने–बने चरे, निर्झर काननेते झरे।
देखिते सेइ स्थाने, धेनु चराइ वृन्दावने।।
गोप–गोपाल साथ बिहरत प्राणनाथ।
विनन्देर सदा पड़े मने, धेनु चराइ वृन्दावने।।

अर्थः यमुना के तट पर घना जंगल है। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गाय चराने के लिए वृन्दावन में जाते हैं। वहाँ पर आम–जामुन के बड़े–बड़े वृक्ष हैं। उसकी शीतल छाया तन–मन–नयन को सुख पहुँचाती है। शीतल वायु शनैः शनैः बह रही है। वन में गायें चर रही हैं। झरना कल–कल ध्वनि करता हुआ बह रहा है। जहाँ गायें चर रही हैं वह स्थान अत्यन्त रमणीय है। ग्वाल बालकों के साथ कृष्ण भी जंगल में विहार कर रहे हैं। कवि कहते हैं कि कृष्ण के गोचारण का दृश्य उनके मन–मन्दिर में सदा मौजूद रहे। गीत–

संगे गोपाल लाल, बिहरत नन्द लाल।
सेइ देखी मन मोहाइला, कौन बने धेनु चराइला।।
बने–बने नाना फुले, शिशुगण तुली–बुले।।
सेइ रसे भूली रहाइला, कन बने धेनु चराइला।।
पाले–पाले चरे धेनु, तरु मूले जइसे कान्हु।
बन–फुल गांथी पिंधाइला, कन बने धेनु चराइला।।
गेरु–धोती–रांगा–माटि, तिलेकेर परिपाटि।
भाल–भाल साज कराइला, कन बने धेनु चराइला।।
रीझे रंगे माती गेल, दिन अवसान भेल।
विनन्द सिंह कहाइला, कन बने धेनु चराइला।।

अर्थः ग्वाला बालकों के साथ श्रीकृष्ण वृन्दावन में बिहार कर रहे हैं। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर मन विमोहित हो जाता है। नाना प्रकार के फूल खिले हैं। ग्वाल बालक फूल तोड़कर माला बना रहे हैं। गायें यमुना के तट पर चर रही हैं। ग्वाल बालक रंग–विरंग के कपड़े से सुसज्जित हैं, सब के माथे पर तिलक लगा हुआ है। इस प्रकार हँसते–खेलते दिन बीत रहा है।

बलराम श्रीकृष्ण के साथ स्पर्द्धा की भावना रखते हैं। वे सदा श्रीकृष्ण को चिढ़ाते थे। कभी जंगल में अकेले छोड़ देते थे। श्रीकृष्ण कितने मार्मिक शब्दों में अपने दाऊ को नहीं छोड़ने का आग्रह करते हैं। देखिएः–

घने–घने बलराम सिंगा बजाइ।
अहीरे यमुना तीरे, रहबे हो भैया सुनि, भैया सुनि लेहो।।
रहों दादा छाड़ी न राखब, भैया सुनि लेहो।।

बलराम और श्रीकृष्ण जंगल में गायों को चराने गये हैं। अब शाम हो चली है। बलराम अपनी गायों को इकट्ठा कर गृह–प्रस्थान करने वाले हैं। उसी समय श्रीकृष्ण की सांवली–उजली गाय जंगल की ओर भाग जाती है। कृष्ण अपने दाऊ की प्रतीक्षा करने के लिए कहते हैं। वे कहते हैं दादा (बड़े भैया) मुझे छोड़कर मत जाना। यहाँ श्रीकृष्ण का कितना भोलापन झलकता है। गीत–

फिरिलों सकल धेनु, पुनः डाके राम कान्हु।
एबे घर चलो, सकल गो धन गण आइलो।।
विनन्द सिंह गाइ, सेइ ध्वनि सुनि पाय।।

बलराम श्रीकृष्ण से कहते हैं कि सभी गायें आ रही हैं। अब हमें घर चलना चाहिए। तुम मेरे पास चले आओ। गायें घर की राह पकड़ ली हैं। वे दौड़ी–दौड़ी जा रही हैं। बाछुरें, बछिया डकार रही हैं। सूर्य भी अस्ताचल को जा रहा है। कवि कहते हैं कि बछड़ों की आवाज कवि के कानों में गूंज रही है। गीत–

संगे गोपाल लाल, आगे–आगे धेनु चाल।
यमुना डहरे चली जाइ रे, आइस मोर नन्देर कान्हाइ।।
विनिन्दया फिरि फिरि आइ रे, ऐसो मोर कांधेर कान्हाइ।।

अर्थः श्रीकृष्ण ग्वाल बालकों के साथ घर के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। आगे–आगे गायें दौड़ी–दौड़ी जा रही हैं। गायों के चलने से धूल–कण उड़ रहे हैं जिससे श्याम–रुपी चन्द्रमा धूमिल पड़ रहा है। यहाँ उपमा अलंकार का चमत्कार देखिए। श्रीकृष्ण अपने हाथ–पैरों पर बंधे लाल–पीले फीते को हिलाते–डुलाते चल रहे हैं। उनका सारा शरीर आभूषणों से सुसज्जित है। सिर पर मोर पंख शोभायमान है। कवि श्रीकृष्ण के इस रूप को बार–बार देखना चाहते हैं।

श्रीकृष्ण का वियोग ब्रजवासियों के लिए एक पल भी असह्य था। श्रीकृष्ण को देखने के लिए उनकी आँखें तरसती थीं। देखियेः

सुन–सुन धनी कहे नवरंगिनी,

सुनि लेहु ओहे देख गोधन, पहुँचल आयी की सुनि लेहु।

अर्थः ब्रज बालाएँ एक दूसरे को कहती–फिरती है कि सुनो! अब श्रीकृष्ण गोचारण कर वापस आनेवाले हैं। गायें दौड़ती हुई आ रही हैं। उस समय श्रीकृष्ण की झलक कुछ दूर पर दिखाई पड़ती है। उनके मस्तक पर सूर्य की किरणें पड़ने से वे अत्यन्त ही आभामय दीख रहे हैं। ब्रजबालाएँ दौड़ती हुई यशोदा के पास आती हैं और उनके आगमन की सूचना देती है।

ब्रजपुरे ब्रज भाइ, ध्वनि सुनि पाइ।

नागर घरे आई, सबे गोपिन वेणु बनाइ।

अर्थः ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण की बांसुरी की ध्वनि सुनाई पड़ती है। उन्हें मालूम हो गया कि अब नागर (श्रीकृष्ण) घर आ रहे हैं। श्रीकृष्ण की अगुवानी के लिए गोपियाँ साज–श्रृंगार करने में व्यस्त हैं। अपने अंगों को मलय, कस्तूरी, चन्दन तेल से सुगन्धमय बना रही हैं। अतः गोपियाँ एक दूसरे को सिन्दूर, काजल के द्वारा सुसज्जित करने के लिए कहती हैं। वे अपनी–अपनी वेणियां सँवारने लगती हैं। इस प्रकार गोपियां सुसज्जित होकर श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ निकल रही हैं।

इस प्रकार हम विनन्द सिंह के गोचारण सम्बन्धी अनेक गीत पाते हैं। यहाँ पर प्रत्येक गीत का उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

***

छऊ नृत्य

'छऊ नृत्य' झारखण्ड का सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य है। अपनी प्रसिद्धि के कारण विद्वानों, अन्वेषकों और दर्शकों के लिए जिज्ञासा का विषय बन गया है। देश–विदेश के विद्वानों इसके सम्बन्ध में केवल अनुसंधान ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि प्रशिक्षण भी प्राप्त कर रहे हैं। इस लोकनृत्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कह पाना अत्यंत कठिन है।

साधारणतः कुछ लोगों का मानना है कि मानभूम शैली के छऊ नृत्य की उत्पत्ति बाघमुण्डी में हुई थी। इसकी उत्पत्ति के सम्बंध में काल–निर्धारण करना भी कठिन है। लेकिन इतना तो मानना ही पड़ेगा कि छऊ नृत्य का सम्बन्ध शिवोपासना से है। सम्पूर्ण झारखण्ड प्रदेश के संदर्भ में देखा जाए तो कहा जा सकता है कि यहाँ के लोग प्राचीन काल से शैव मतावलम्बी रहे हैं। आज भी पूरे क्षेत्र में शिवमंदिर और शिवलिंग देखे जा सकते हैं तथा शिव की पूजा अनिवार्य रूप से की जा रही है। यहाँ शिव मंदिर जितने पुराने हैं, किसी अन्य देवी–देवताओं के नहीं। एक बात उल्लेखनीय है कि आज से कुछ वर्षों पहले तक छऊ नृत्य का प्रदर्शन चैत्रसंक्रान्ति के पूर्व बिल्कुल निषिद्ध था। छऊ नृत्य का यह सिलसिला जेठ महीना यानी आषाढ़ तक सीमित था। यह आषाढ़–स्नान 'हारूप पोखर' में हुआ करता था। इसके बाद छऊ नृत्य का प्रदर्शन बिल्कुल निषिद्ध था। परन्तु, यह इतना लोकप्रिय हो गया है कि अब तो सालों भर इसका प्रदर्शन देश–विदेश में होने लगा है।

छऊ भारत की एक विशिष्ट नृत्य–शैली है। इस नृत्य को शैली का नाम छऊ पड़ा। इस सम्बंध में मतभेद है। कुछ लोग 'छौ' शब्द की उत्पत्ति 'छावनी' से मानते हैं तो कुछ का मत है कि 'छौ' शब्द 'छाया' से आया है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि स्थानीय भाषा 'छोवा' से 'छौ' शब्द बना है। 'छोवा' का अर्थ लड़का है याने लड़कों (बच्चों का नृत्य)। इसी प्रकार अन्य लोग 'छौ' शब्द को उत्पत्ति 'छाया' एवं छम' से भी मानते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग 'छौ' का अर्थ ढंग विलास एवं साज–गान लगाते हैं।

स्व. राजा उपेन्द्र नाथ सिंह देव ने लिखा है कि छऊनृत्य की उत्पत्ति शिव की उपासना–भाव से हुई है। चैत्र–संक्रांति में शिव की उपासना की जाती है। उस समय लोग हाथ में सर्प, हड्डी, जानवरों के चर्म आदि लेकर भूत–प्रेत, बैताल आदि का रूप बनाकर शिवजी की बारात का रूप धारण कर नभत्य किया करते थे। आगे चलकर यही 'छऊ नृत्य' कहा जाने लगा।

श्री दुलाल चौधरी का मानना है कि 'छौ' का वास्तविक अर्थ आक्रमण करना है तथा यह वीर रस का नृत्य है।

छऊ नृत्य के ही समान एक अन्य लोकनृत्य है जिसे 'नटुआ' या 'पाइका', नृत्य कहा जाता है। यह नृत्य भी मूलतः वीर–नृत्य है। सम्भवतः नटुआ नृत्य से 'छऊ नृत्य की उत्पत्ति हुई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

छऊ नृत्य की उत्पत्ति के सम्बंध में पूछने से प्राप्त हुआ कि पहले चैत्र–संक्रांति की रात को शिव पूजा के अवसर पर रात्रि–जागरण करते हुए भोक्ताओं के मनोरंजन के लिए 'काप' या 'छेइब' किया करते थे। कुरमाली भाषा में 'छेइब' का अर्थ नकल करना होता है। इसी से 'छेइब' 'छौ' शब्द बना है। 'काप' या 'छेइब' का तात्पर्य विविध हास्यप्रद उपादानों से शरीर को आभूषित कर इस प्रकार हाव–भाव प्रदर्शन करना जिससे दर्शकों में स्वतः हास्य का भाव आ जाए। यहीं 'छेइब' कालान्तर में 'छौ' का रूप धारण कर लिया होगा। इसके पश्चात् इस कला में सुन्दरता और सजीवता लाने के लिए मूर्तिकारों से विषयानुकूल मुखौटा तैयार करने में सहयोग लिया गया होगा।

मनाने का समय– छऊ नृत्य चैत्र–संक्रांति को रात बारह बजे के बाद धूमधाम के साथ प्रारम्भ किया जाता है। इस रात के नृत्य को 'मुलखी' नाच कहा जाता है। इसके बाद यह जेठ महीने तक चलता है। कुछ दशक पहले तक नृत्य चैत्र–संक्रांति के पहले प्रदर्शन करना निषिद्ध था। परन्तु, इसकी लोकप्रियता ने इस परम्परा को तोड़ दिया है। इस नृत्य के प्रदर्शन की तैयारी चैत्र महीने के प्रारम्भ से भी शुरू हो जाती थी। नर्त्तकों को विशिष्ट प्रदर्शन के लिए बहुत अभ्यास करना पड़ता था। वस्तुतः यह पूर्वी भारत का एक विख्यात नृत्य है।

विशेषता– यह एक फुर्तीला नृत्य है। कूद–कूद कर अभिनय करना इसकी विशेषता है। इसमें नर्त्तक प्रसंगानुसार अंग–संचालन और विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से अभिनय करते हैं। छऊ नृत्य मूलतः युद्ध नृत्य है। यही कारण है कि इसमें स्त्रियों की सहभागिता नहीं होती। स्त्री की भूमिका पुरूष ही करते हैं। मयूरभंज छऊ नृत्य की शैली में अब स्त्रियाँ भी भाग लेने लगी हैं। परन्तु, पुरूलिया शैली के छऊ नृत्य में इसका अभाव पाया जाता है। छऊ नृत्यों की विभिन्न शैलियों के अवलोकन से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि इसकी मुख्य तीन प्रवृत्तियाँ हैः

1. प्रकृति की अनुकृति– बाघ, भालू, बगुला, मोर आदि के रूप में नृत्य करना।
2. लौकिक मानवीय क्रिया–कलापों का अभिनय– जैसे शिकार करने का अभिनय, नाव–चालन, ढेंकी कूटना, धान काटना आदि।

3. ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं पर आधारित नृत्य।

छऊ एक मुखौटा नृत्य है। मुखौटा को स्थानीय भाषा में 'मोहड़ा' या 'मुखोस' कहते हैं। नर्त्तक अपने चेहरे पर मुखौटा धारण कर नृत्य के समय शरीर की भाव–भंगिमा या अंग–संचालन कर भावाभिव्यक्ति करता है। इस नृत्य में अंगों की भाव–भंगिमा के साथ मुखौटा की स्थिरता का कमाल देखते ही बनता है। एक ही व्यक्ति मुखौटा बदलकर कई प्रकार के रोल अदा करता है।

नृत्य शैलियाँ– छऊनृत्य का मुख्यतः बिहार, बंगाल और उड़ीसा के तीन जिलों में प्रचलन है– पुरूलिया (मानभूम) सरायकेला और मयूरभंज। इन्हीं के आधार पर इस नृत्य की तीन शैलियाँ विकसित हुई हैं। पुरूलिया और सरायकेला के छऊ नृत्यों में मुखौटा का व्यवहार होता है जबकि मयूरभंज–शैली में मुखौटा का प्रयोग नहीं होता है। ये मुखौटे कागज, कपड़ा और क्ले (लस्सेदार मिट्टी) के बने होते हैं। पुरूलिया जिलान्तर्गत बाघमुन्डी थाना के चड़िदा नामक गाँव मुखौटा बनाने के लिए विख्यात है।

1. पुरूलिया शैली– पुरूलिया छऊनृत्य की शैली को 'मानभूम' भी कहा जाता है क्योंकि पुरूलिया का प्राचीन नाम मानभूम है। इस शैली के नृत्य में तांडव भाव– भंगिमाओं की प्रधानता रहती है। नर्त्तक तीव्र गति से नृत्य करते हैं। वे बाहें फैलाये, लट्टू के समान चक्कर काटते हुए नृत्य करते हैं। नर्त्तक अपने अंग–संचालन द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करता है। इस अंग संचालन को शास्त्रीय भाषा में टोपका या चाल कहते हैं। नृत्य को प्रभावशाली ढंग से विभिन्न प्रसंगों से डफलियों के माध्यम से रोचक और आकर्षक बनाते हैं। पुरूलिया शैली के नृत्य में व्यवहृत किये जाने वाले मुखौटे में बड़े–बड़े ध्वज होते हैं जो वेश कीमती साज–सामानों से निर्मित होते हैं।

पुरूलिया 'छौ' शैली के नृत्य साधारणतः पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं। जैसे– महिषासुर–वध, अभिमन्यु–वध, रावण–वध, सीता–हरण, कृष्णलीला, किरात–अर्जुन युद्ध, शिशुपाल–वध आदि। किसी–किसी नर्त्तक दल द्वारा 'मेल' छऊनृत्य तथा 'एका' नृत्य का भी प्रदर्शन किया जाने लगा है तथा आधुनिक आवश्यकता को देखते हुए नित नये आयाम दिये जा रहे हैं। नृत्य के पहले गीतों द्वारा कथावस्तु परिचय दिया जाता है। छऊनृत्य के ताल की अपनी विशिष्टता है। नृत्य और संगीत के क्षेत्र में छोटानागपुर की खास विशेषताएँ हैं। आज छऊ नृत्य हमारे देश का एक उत्कृष्ट सांस्कृतिक धरोहर बन गया है। भारतीय नाट्यकला के समानान्तर छऊ नृत्य भी लोकनाट्य कला है, इसमें कोई सन्देह

नहीं। शंकर लाल मुखर्जी का मानना है कि लोकनृत्य सभी प्रकार के 'क्लासिकल' नृत्यों की नींव है।

2. सरायकेला शैली— पुरूलिया छऊनृत्य की भांति सरायकेला के छऊनृत्य की शैली भी मुखौटा का व्यवहार होता है। परन्तु, ये मुखौटे लघु आकार के ध्वजरहित होते हैं। सरायकेला की धरती पर ही इस प्रसिद्ध छऊनृत्य का सृजन माना जाता है। यहीं इसका विकास हुआ। इस शैली नृत्य को सरायकेला के राजपरिवार का संरक्षण मिला तथा इसी घराने के लोगों ने इसमें नयापन लाया। स्व. कुमार साहब विजय प्रताप सिंहदेव ने इस शैली को नयी दिशा दी तथा लास्य का पुट भरा। इसके पश्चात् राजकुमार शुभेन्दु नारायण सिंहदेव ने इस शैली के नृत्य को नया मोड़ दिया। सन् 1937—38 में इन्होंने यूरोप की यात्रा की और छऊ नृत्य का प्रदर्शन किया। 1963 में राजकुमार शुभेन्दु को नेशनल अकादमी डांस ड्रामा से सम्मानित किया। अभी पुराने नर्त्तकों में श्री केदार साहू हैं। उन्होंने विश्व के अनेक देशों में छऊ नृत्य का सफलता पूर्वक प्रदर्शन किया है।

नृत्य और संगीत के क्षेत्र में छोटानागपुर/झारखण्ड की अपनी निजी विशेषताएं हैं। यहाँ के लोगों के संगीत—प्रेम के संदर्भ में कहा गया है— 'सेनगे सुसुन काजी के दुरङ्. अर्थात् चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत है।

छऊ नृत्य प्रकृति से जुड़ा हुआ हैं। प्रकृति के क्रिया—कलापों का अनुकरण करना मानव मात्र की मनोवृति रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नृत्य आदिम रूप में प्रकृति की अनुकृति मात्र ही था। कालान्तर में रामायण और महाभारत की कथाओं का इस नृत्य के माध्यम से मंचन किया जाने लगा। अपने वन्य—जीवन में मानव ने वन्य पशुओं एवं प्राकृतिक उपादानों की अनुकृति करते हुए अपना एवं अपने परिजनों का मनोरंजन किया और कालान्तर में अपने क्रिया—कलापों को संगीत, ताल और लयबद्ध अभिनय करने में आनन्द आया होगा। बहुत सम्भव है कि अनपढ़ ग्रामीण जनता के बीच छऊ नृत्य के द्वारा रामायण और महाभारत की कथाओं का दृश्यों के माध्यम से अवगत कराना रहा है जिस प्रकार लोककवियों द्वारा रामायण और महाभारत के विविध संदर्भों के गीतों की रचना द्वारा पौराणिक ग्रन्थों का परिचय कराना रहा है।

छऊ नृत्य छोटानागपुर का सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य बन गया है। यह अपने सीमित दायरे को पारकर विश्व रंगमंच पर पहुंच गया है। यहाँ के अनेक छऊ नृत्य दलों ने विदेशों में छऊ नृत्य का प्रदर्शन कर ख्याति अर्जित की है। 'छौ' के विख्यात कलाकार स्व0 गम्भीर सिंह मुण्डा और श्री नेपाल महतो को भारत सरकार की ओर से पद्मश्री की उपाधि देकर सम्मानित किया गया है।

***

प्रकृति के प्रतिष्ठापक पर्वः सरहूल

झारखण्ड प्रदेश के दो मुख्य पर्व हैं– सरहूल और करमा। दोनों ही त्यौहार यहाँ के लोग बड़े उमंग और उत्साह के साथ मनाते हैं। यों तो छोटानागपुर/झारखण्ड में ऐसा कोई महीना नहीं जिसमें कोई न कोई पूजा या त्यौहार न मनाया जाता हो। यहाँ का कोई भी अनुष्ठान नृत्य एवं गीतों के बिना सम्पन्न नहीं होता। नृत्य और गीत यहाँ के लोकमानस की मूल संस्कृति रही है।

गाछ–वृक्ष, नदी, पहाड़ तथा अन्य प्राकृतिक उपादानों को पूजने की एक सुदीर्घ परम्परा भारतीय संस्कृति की एक अनूठी और समृद्ध परम्परा है। आम, महुआ, वरगद, कदम्ब, करम, शाल, पीपल आदि वृक्षों की पूजा हमारे देश में होती रही है। 'सरहूल' पूजा भी इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। इस पर्व में साल वृक्ष की पूजा की जाती है।

फूलों का पर्व सरहूल आदिवासियों का एक पवित्र तथा महान पर्व है। 'सरहूल' को उरांव लोग 'खद्दी', मुण्डा, संताल और हो–'बाहा' या 'बा' याने फूल तथा खड़िया समाज इस पर्व को 'जिंकोरा' नाम से अभिहित करते हैं। समग्र रूप से सरहूल का तात्पर्य फूलों के त्यौहार से है। त्यौहार को 'सरना स्थल' में मनाने की प्रथा है।

'सरना' का शाब्दिक अर्थ एक पेड़ विशेष है जिसे हिन्दी में साल/सखुवा कहा जाता है। कुड़ुख भाषा में इसे 'मक्कानौर' तथा मुण्डारी, खड़िया, हो तथा संताली भाषा में 'सरजोम' कहा जाता है। सरना त्यौहार सरना धर्मावलम्बियों का एक पवित्र पर्व है जिससे हिन्दी में–'सरहूल' कुड़ुख़ में 'खद्द ख़ेख़ेल बेंजा' और अन्य आदिवासी समाजों में 'बाहा' पर्व कहते है। इस पर्व में सरना मतालम्बी प्रकृति को प्रतीक मानकर ईश्वर की आराधना की जाती है।

झारखण्ड में बसने वाली उरांव, मुण्डा, खड़िया, संताल, हो, आदि आदिम–जातियाँ सरहूल का पर्व बड़े उल्लास के साथ मनाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह पर्व केवल आदिवासी लोग ही मनाते हैं, बल्कि इस प्रदेश में बसने वाली अन्य जातियां भी मनाती है।

आदिवासी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकृति–पूजा सरहूल चैत शुक्ल पक्ष के तृतीया से प्रारम्भ होकर पूरे माह तक विभिन्न गाँवों में मनाया जाता है। चैत आदिवासियों के लिए नये साल का प्रारम्भिक महीना माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस महीने में धरती माता का विवाह सूर्य भगवान के साथ होता

है। इनके प्रणय–सूत्र में बंध जाने से धरती माता सालों भर भूमि–पुत्रों को अन्न जल, फूल–फल तथा जीवन–निर्वाह के विविध आवश्यकताओं को प्रदान करती है। यह पर्व तीन दिनों तक मनाया जाता है। वस्तुतः इस पर्व को मनाने की कोई एक निश्चित तिथि नहीं है। प्रत्येक गाँव में अपनी सुविधानुसार अलग–अलग तिथियों में मनाया जाता है। यद्यपि यह त्यौहार आदिवासियों का है फिर भी इसके मनाने की विधि एवं तिथि में पार्थक्य पाया जाता है।

उराँव जनजाति यह पर्व या पूजा 'सरनास्थल' पर मनाती है। पुजारी के रूप में पाहन रहता है। उसके साथ में महतो, कीटवार, पानीभरवा आदि रहते हैं। प्रथम दिन मिट्टी के नये घड़े में पानी भरकर बड़ी पवित्रता के साथ रखा जाता है। इस दिन मछली, केंकड़ा आदि मारने की प्रथा है। दूसरे दिन प्रातः काल पाहन अपने सहयोगियों के साथ गाँव में मुगियाँ पकड़ते हैं। गाँव के सभी लोग ढोल–नगाड़ा बजाते हुए पाहन को कंधे पर बैठाकर पूजा–स्थल लाया जाता है। पाहन को नयी पीली धोती एवं माथे पर सफेद पगड़ी पहनाई जाती है। पाहन पूजा–स्थल पहुँच कर अरवा चावल की गुंडी (चुनी) से घड़े और नये सूप में थाप लगाता है। उसके बाद सिन्दूर का टीका लगाता है। अक्षत एवं साल फूल पूजा में चढ़ाया जाता है। पुजारी के पीछे एक आदमी कंधे पर तलवार लिए खड़ा रहता है। पूजा के पूर्व पकड़ी गई मुर्गियों की बलि चढ़ायी जाती है। ये मुर्गियां संख्या में पांच तथा विभिन्न रंगों की होती है। मुर्गियों की बलि सरनादेवी के नाम पर होती है। पूजा आराधना करते समय यदि मुर्गी दाना नहीं चुगे तो उसे बलि नहीं चढ़ायी जाती है। जो मुर्गी चारा बिनना शुरू करती है तो उसे बलि दी जाती है। मुर्गी के दाना नहीं चुगने पर यह समझा जाता है कि देवी अप्रसन्न है और यदि मुर्गी दाना चुगे तो समझा जाता है कि 'सरनादेवी' खुश हो गई है। तब मुर्गियों की बलि दी जाती है। बलि चढ़ायी गई मुर्गियों के मांस का अरवा चावल के साथ पकाकर पूजा–स्थल पर उपस्थित लोगों के बीच प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। हड़िया (चावल से बना शराब) का तपावन दिया जाता है तथा पूजा में अर्पित किए गये हड़िया का सेवन किया जाता है।

नये घड़े में रखे पानी के घटने–बढ़ने से आने वाले वर्षा का अनुमान लगाया जाता है कि वर्षा कम होगी और घड़े की पानी ज्यों का त्यों रहता है तो यह माना जाता है कि वर्षा अच्छी होगी। ऐसा भी विश्वास है कि अगर सरना देवी प्रसन्न हो जाए तो घड़े में रखा पानी बढ़ जाता है। प्रसाद वितरण के बाद सिन्दूर का टीका पूजन स्थल पर उपस्थित लोगों को लगाया जाता है। संध्या

के समय जिस सखुवा फूल को 'सरना' में चढ़ावा दिया गया हो, को लेकर बाजा गाजा के साथ घर–घर में खोंस दिया जाता है जिसे फूल खोसी कहते हैं। प्रत्येक घर में लोग पाहन के पैर धोकर तेल लगाते हैं। कहीं–कहीं पर पाहन, पुजार और महतो को नये घड़े का पानी सिर से पैर तक डालते हैं और वहीं से नाचना गाना प्रारम्भ होता है। एक गीत द्रष्टव्य है: "हार लर लर हाय हियो–हियो–हियो खद्दी मनोउ मनोत भइया रे फागु मनोत सायर खद्दी मनोत सारेय कोयहीं दल–दल ही न नोच होले ओनोच भला होले ठेपोन मोखोय' अर्थात् पाहन कहते हैं कि अब हम लोग सरहूल पर्व मनायेंगे, फगुवा मनायेंगे, खेलेंगे। दूसरी बात यह है कि पाहन संदेश देते हैं कि काम करोगे तो आराम से खाओगे–पियोगे नहीं तो बैठकर अपनी अंगुली को चुसते रहोगे। इस प्रकार सम्पूर्ण गाँव में घर–घर घूमकर 'फूल खोंसी' की जाती है। आशीर्वाद के रूप में पाहन सेवा के दरवाजे के चौखट में सखुवा फूल खोंस देता है। फूल खोसी की यह परम्परा केवल आदिवासियों तक ही सीमित नहीं है बल्कि गाँव में निवासित विभिन्न जाति और धर्म के मानने वालों को भी आशीर्वाद मिलता हैं। फूल खोंसी करते समय गाँव के प्रत्येक घर से पाहन को सम्मान स्वरूप कुछ न कुछ अरवा, उसना चावल मिलता है। उस चावल को गाँव के किनारे पकाकर सामूहिक भोजन किया जाता है जिसे 'सूड़ीखाना' कहते हैं। रात में गुड़ एवं चावल मिलाकर सखुवा पत्ता में मोटी–मोटी रोटी बन्द कर पानी में सिद्ध करते हैं और घर–घर बांटते हैं। सरहूल पूजा सम्पन्न होने के बाद ही उरांव लोग नया फल–फूल खाते हैं। सरहूल मनाकर उरांव लोग सेंदरा (शिकार) के लिए निकलते हैं।

संताल लोग पर्व फागुन महीने में मनाते है। संताली में सरहूल को 'बाहापर्व कहा जाता है। संताली में बाहा का अर्थ फूल होता है। आदिकाल से ही संताली समाज में प्रकृति–पूजा का विशेष महत्व और स्थान है। प्रकृति के प्रति उनकी अटूट आस्था और अनन्य प्रेम रहा है। जब सरजोम बाहा (सखुवाफूल) बनों में खिल उठता है तब बाहा पर्व मनाया जाता है। संतालों में बाहा पर्व मनाने का मूल उद्देश्य उनका अगला वर्ष सुखद, समृद्धिशाली हो तथा कृषि और मवेशी निरापद रहें।

संतालों का 'बाहा पर्व' जाहेरथान में सम्पन्न होता है। संतालों के धार्मिक प्रधान नायके और कुदुम नायके होते हैं। वे ही जाहेरथान में बाहापूजा सम्पन्न करते हैं।

बाहा पर्व के प्रथम दिन गाँव के युवक जाहेरथान आकर दो छावनी

बनाते है। एक छावनी में अपनी महान देवी जाएरा एरा तथा 'माराड बुरू' के लिए तथा दूसरी छावनी 'गोसाई एरा' के लिए होती है। उसके बाद उस स्थान को गोबर से लीपकर शुद्ध किया जाता है। पूजा उपासना करने वाले लोग गाँव के बाहर स्नान करने जाते हैं। पूजा के दिन सभी पूरी पवित्रता के लिए सजग रहते हैं। पूजा के पूर्व रात्रि को 'नृत्यगृह' में सारी रात नगाड़ा बजाया जाता है। बोंगा (देवता) के साथ सभी लोग वहाँ उपस्थित रहते हैं।

सरहूल/बाहापर्व के अवसर पर संताल समाज में अपनी परम्परा पर अटूट विश्वास दिखाई पड़ता है। इनकी मान्यता है कि जिस व्यक्ति पर महान देवी 'जाएरा एरा' की आत्मा की सवारी होती है, वह पुरूष विशिष्ट रूप विशेष रूप से श्रृंगार करता है वह आभूषण धारण करता है तथा उसके हाथ में एक झाडू भी होती है। माराड़ बुरू के हाथों मृत्यु का अस्त्र–शस्त्र रहता है फिर 'जाहेरथान' (पूजन स्थल) पहुँचते हैं। जाहेरथान जाने के समय गाँव के बच्चे युवा नाचते गाते वहाँ पहुंचते हैं। यहाँ पहुंचकर जाहेर एरा पूजन–स्थल को साफ–सुथरा करती है। नायके उनसे अनुरोध करता है कि वह अपने साथ लायी हुई सारी चीजें चटाई पर रख दें। इसके बाद नायके बोंगा के हाथ पांव धोता है तथा उन पर अभिषेक रूप में जल छिड़कता है। पुनः जाहेरथान में वापस आ जाते हैं। इसके बाद माराड़ बुरू सखुए के पेड़ पर चढ़ जाता है और साल फूल को तोड़कर नीचे गिराता जाता है। जाएरा एरा उन फूलों को चुनकर एक नयी टोकरी में जमा करती है। माराड् बुरू वापस आते समय रास्ते में महुआं का फूल चनता है। फूल चुनने के बाद जब वह जाहेरथान पहुँचता है तो उसे भक्ति–श्रद्धा के साथ चटाई पर बैठाया जाता है। नायके ठीक उसके सामने बैठता है। वह धूप–दीप, सिन्दूर, जल दूब, इलि दी जाती है। बलि चढ़ायी गई मुर्गियों के खून को होठों से सटाते हैं। पूजा–समाप्ति के बाद उन मुर्गियों के मांस को चावल के साथ पकाया जाता है। नायके सहित गाँव के सभी लोग मांस–मिश्रित चावल को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं।

जाहेरस्थान में पूजा–अनुष्ठान समाप्त होने के बाद लोग अपने–अपने घर वापस जाते है और बोंगा के नाम पर मुर्गियाँ, सुअर की बलि चढ़ाते हैं। तीसरे पहर गाँव के लोग पुनः जाहेरस्थान पहुंचते हैं और सभी मिलकर नायके को गाँव वापस ले आते हैं। तदन्तर गाँव के प्रत्येक घर में नायके की आवभगत की जाती है। प्रत्येक घर में नायके का पाँव पखारा जाता है। नायके गाँव के सभी लोगों को साखू का फूल आशीर्वाद स्वरूप भेंट करता है। इसके बाद होली खेली जाती

है। इस होली में केवल पानी का व्यवहार होता है। संताली स्त्रियाँ भी पानी की होली खेलती हैं। संतालों का विश्वास है कि पानी की होली खेलने से द्वेष, ईर्ष्या, बैर और वैमनस्य के भाव धुल जाते हैं। ये लोग 'बाहा पोरोब' के बाद ही कृषि–कार्य प्रारम्भ करते हैं।

मुण्डा समाज में सरहूल पर्व को 'बाः पोरोब' की संज्ञा दी गई है। इस त्यौहार को मनाने के पीछे मुण्डा समाज में कई किवदन्तियां प्रचलित हैं। ऐसी मान्यता है कि फूलों से लदे सखुए के वृक्षों की ओट में छिपकर छोटानागपुर की पहाड़ियों, एवं घने जंगलों से आच्छादित होने के कारण आदिवासियों की रक्षा दुश्मनों से हुई थी। फलस्वरूप सखुए के फूलों की पूजा अर्चना वसन्त ऋतु से प्रारम्भ हुई जो कालान्तर में उनका यह परम्परागत पर्व बन गया। सरहूल–पूजा के संदर्भ में कांडे मुण्डा ने और कई जनश्रुतियों की चर्चा की है। एक जनश्रुति यह है कि मुण्डा के पूर्वजों के जीवन में आये संकटों और विपतियों की घड़ी में सखुए के फूलों ने प्राण–रक्षा में सहारा दिया था। इनके पूर्वजों ने अपने दुश्मनों के साथ रण–भूमि में युद्ध करते समय अपने दल के लिए गुप्त पहचान रखी थी जो सखुए का फूल था। साल–फूल के कारण ही उनमें एकता कायम रह सकी और इसी 'सारजोम बाः' के कारण उन्हें युद्ध में विजयश्री मिली।

एक दूसरी मान्यता यह भी है कि जब इनके पूर्वज आखेट के लिए सघन वन में जाते थे और दिशा भूल जाते थे। मार्ग ढूंढते–ढूंढते शाम हो जाती थी । भूख–प्यास और थकान मिटाने के लिए 'सालपेड़' के नीचे वे शरण लेते थे। कभी–कभी पानी की तलाश में लिटा कोड़ा (छोटा लड़का) साल के पेड़ पर चढ़कर चार आँवले का फल चारों दिशाओं में फेंकता और जिस दिशा से 'चमदुंग' की आवाज आती, उसी दिशा की ओर लोग जाते एवं प्यास बुझाते थे।

कभी–कभी शिकार करते समय जंगल में राह भूल जाने के कारण साल–पेड़ के नीचे शरण लेते थे एवं आँधी तूफान से बचने के लिए इसके खोंडर में प्रवेश कर जीवन रक्षा करते थे। फलतः साल–वृक्ष को ईश रूप में पूजा–अर्चना की जाने लगी। एक अन्य किवदन्ती के अनुसार गुप्त पहचान न होने के कारण मुण्डाओं के पूर्वज रणभूमि में घमासान युद्ध करते समय होश–हवाश खो बैठते थे और शत्रुओं के साथ–साथ अपने लोगों को भी मार डालते थे। आगे चलकर युद्ध के समय पगड़ी और कमर में सखुआ के फूल खोंसने लगे। फलतः अपने दल के सेना की पहचान होने लगी और लड़ाई में जीत होने लगी। इसके बाद से ही सरहूल मनाया जाने लगा। वस्तुतः विपत्ति के समय सरई फूल ने मुण्डा

सेना की रक्षा की है। इसी की स्मृति में सरहूल मनाने की परिपाटी चल पड़ी।

खड़िया समाज में सरहूल को 'जंकोर' तथा हो में 'बा' प्रोब याने फूलों का पर्व कहा जाता है। कमोबेश इन समुदायों में भी किंचित् पार्थक्य के साथ सरहूल पर्व बड़े उमंग और उल्लास के साथ मनाया जाता है। 'हो' समाज में इस पूजा के अवसर पर जो न त्य प्रस्तुत किया जाता है, वह दस तालों पर आधारित है। ये ताल हैं– सार, बा, राचा, जापे, चंगुड़िया, गाडुवा, दंवनड़ेया, गेना, जदूर और केमटा। इन तालों के गीत भी अलग–अलग होते हैं।

बलपूर्वक यह कहा जा सकता है कि आदिम जातियों ने पहले–पहले प्रकृति के महत्व को समझा होगा। फलतः उन्होंने प्रकृति के उपादानों को श्रद्धा, भक्ति और आस्था का आलम्ब माना। साल वृक्ष की जड़े, लासा, पत्ते, फूल की बड़ी महत्ता है। जड़ें और लासा धूवन के काम आते हैं। पत्तों से पूजन सामग्री रखने के लिए दोना बनाये जाते है। सखुवा की लकड़ियाँ घर बनाने के काम आती हैं। इसकी टहनियां दतुवन के काम आती है।

यों तो सम्पूर्ण देश में वसन्तोत्सव किसी न किसी रूप में मनाया जाता है। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में मेल्प की पत्तियों की पूजा होती है जबकि चीन, जापान में चेरी के फूलों की द्वारा पूजा होती है। छोटानागपुर में पेड़–पौधों वृक्ष–लताओं में सखुवा ही एक ऐसा वृक्ष है जिसके प्रति आदिवासियों के मन में अपार श्रद्धा है। सम्भवतः यह वृक्ष सर्वाधिक उपयोगी है। यही कारण है कि साल–वृक्ष को एक आराध्य देव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। सरहूल पर्व विश्व के वसन्तोत्सवों की परम्पराओं में झारखण्ड की एक विशिष्ट देन है। आज पर्यावरण की समस्या विश्व के सामने सुरसा की भाँति मुँह बाये खड़ी है। वातावरण को संतुलित रखने के लिए पेड़–पौधों का संरक्षण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बन गया है। ऐसी स्थिति में 'सरहूल' और 'करमा' पर्व आज प्रासंगिक बन गये हैं।

***

कुरमाली गद्य साहित्य का विकास

कुरमाली में गद्य साहित्य का व्यवस्थित विकास सन् 1903 के आस–पास से माना जा सकता है। यद्यपि जी. एफ हेमिल्टन की पुस्तक 'दी गोसपेल ऑफ सन्त मार्क' जिसका प्रकाशन 1903 में दार्जिलिंग में हुआ। उसके अनुसार कुरमाली गद्य के विकास की थोड़ी–बहुत शुरूआत 18वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों द्वारा हो चुकी थी। ईसाई मिशनरियों ने बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद कुरमाली में किया था जो 'बेसहाल मार्क के बनावल' में मिलते हैं। इसके पश्चात् डॉ जार्ज ग्रियर्सन द्वारा विरचित "भारत का भाषा सर्वेक्षण" नामक ग्रंथ के खण्ड पांच, भाग दो में कुरमाली के गद्य रूप मिलते हैं। इसका प्रकाशन 1903 में हुआ था। इसमें मानभूम की कुरमाली में एक लोककथा एवं 'अदालत में एक अभियुक्त का बयान' को प्रस्तुत किया गया है। इसी ग्रंथ में आगे मयूरभंज, क्योंझर और बामड़ा की कुरमाली में एक लोककथा एवं 'दो व्यक्तियों के वार्तालाप' को प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है। विषय–वस्तु की दृष्टि से इन गद्यों को न तो नवीन ही कहा जा सकता और न सृजनात्मक लेखन ही। क्योंकि डा. ग्रियर्सन का मुख्य उद्देश्य कुरमाली भाषा के गद्य–रूप को स्थानीय भेद के साथ प्रस्तुत करना रहा है।

पचपन वर्षों की लम्बी अवधि अर्थात् 1958 ई. में डा. विश्वनाथ प्रसाद एवं डा. सुधाकर झा शास्त्री ने भाषा सर्वेक्षण के सिलसिले में "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ दी सदर सब–डिविजन ऑफ मानभूम एण्ड धलभूम" में मानभूम की कुरमाली लोककथाओं को उद्धृत किया है। एक ही लोककथा को भिन्न शीर्षक देकर अत्यल्प भाषाई परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। यथा–तुपाधन, एक भेड़ी बागालेर छोआ हके, तोपल टाका, एकटा बागाल छोआ, तोपलधन, एक गरखिया गीदर, गाड़ल टाका, एक बागाल छोंआ, गाड़ल खजाना, एक बागाल कर लड़का, गाड़ाटाका, एक भेड़ी चरायाक बेटा, तोपाधन, एवं एक भेड़ी बागालेर बेटा। वस्तुतः इतने शीर्षकों में दो लोककथाओं को ही प्रकारान्त से प्रस्तुत किया गया है। कहानियों की भाषा शैली में थोड़ा–थोड़ा–सा अन्तर है। जहाँ "एक भेड़ी बागालेर छोआ के" कहानी को लम्बी कथोपनकथन शैली में प्रस्तुत किया गया है, वहीं उसी कथावस्तु पर आधारित "एकटा बागाल छोआ" को ग्रामीण परिवेश से आवेष्टितकर कथोपकथन शैली में ही लघुकथा का रूप दिया गया है। कथावस्तु के आधार पर कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ

लोककथा पर आधारित हैं, परन्तु स्थानीय भेद के साथ। ये कहानियाँ तथ्यात्मक दृष्टि से एक हैं, भाषा में सामान्य पार्थक्य के साथ।

सन् 1979 में राँची से प्रकाशित 'छोटानागपुर संदेश' नामक पत्रिका में एच. एन. सिंह द्वारा प्रस्तुत एक लोककथा छपी मिलती है। इसके बाद 1982 में झालदा से प्रकाशित 'मानभूम एक्सप्रेस' पत्रिका में निरंजन महतो की 'बुद्धिकदाम' तथा प्रभावती महतो की 'मीरतुग खजे', 'राक्षसी आर अमरी' तथा 'भाँड़ी लेवेक कायदा कहानियाँ प्रकाशित मिलती हैं। वस्तुतः ये लोककथाएँ ही हैं। कथावस्तु की दृष्टि से ये नयी नहीं कही जा सकतीं। इसी वर्ष प्रो. चन्द्र मोहन महतो द्वारा सम्पादित 'केहनिजुड़ती' नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में कुल सात कहानियाँ हैं, जिनमें दो लोककथाएँ और पाँच आधुनिक कहानियाँ हैं। इन कहानियों की भाषा में कुरमाली के स्थानीय भेद देखे जा सकते हैं। सन् 1983 में डा. शशिभूषण महतो द्वारा सम्पादित "गइद–पइद जुड़ति" में चार कहानियाँ छपी मिलती हैं जो नये विषय–वस्तु को लेकर लिखी गई हैं। सन् 1984 ई. में राँची से प्रकाशित 'नागपुरी कला संगम पत्रिका में एच. एन. सिंह की 'आर नि रहम' कहानी जो लोककथा की कथावस्तु पर नाटकीय शैली में लिखी गयी है, प्रकाशित मिलती है। इसी प्रकार श्रीमती रेखा सिंह विरचित पुस्तक "मानभूमेर लोकसाहित्य व शब्दकोश" में धरम ठाकुर, करम एकादशी, कुरमाली गद्य आदि छोटी–छोटी कहानियाँ बंगला–लिपि परन्तु, कुरमाली में है, समाहित की गई है। विष्णुचरण राय की कहानी 'ठिंग उड़गेल बांसेक ठेंगा' पुरूलिया से प्रकाशित 'सारहुल' पत्रिका में 1985 में प्रकाशित हुई। यह कहानी भी लोककथा पर आधारित है। 1986 में करूणामयी महतो की 'संजति' नामक कहानी 'करमतीर्थ' पत्रिका में प्रकाशित होने का उल्लेख मिलता है। यह कहानी आधुनिक परिवेश पर लिखी गई है। इसी वर्ष तुलीन से प्रकाशित कुरमाली पत्रिका 'बानार' में सरोज कुमार की "डाइर छाड़ाबाँदर" लोककथा प्रकाश में आयी। 1987 ई. के आस–पास सुनील महतो एवं अनन्त महतो द्वारा सम्पादित 'सातुल' नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात कहानियाँ हैं। ये सारी कहानियाँ विविध विषय–वस्तु को लेकर लिखी गई हैं। इन कहानियों में यहाँ की मिट्टी का गंध है। कुछ कहानियाँ आदर्शवादी हैं तो कुछ यथार्थवादी, तो किसी कहानी में झारखंडी संस्कृति की छाप परिलक्षित होती है। इन कहानियों की भाषा एवं व्यंजना शैली अपेक्षाकृत अच्छी है। इधर पिछले कुछ वर्षों से झालदा से भरत महतो द्वारा सम्पादित त्रैमासिक पत्रिका "लोक संस्कृति मानभूम" जो बंगला लिपि में है, में विविध प्रसंगों को लेकर नयी–नयी कहानियाँ

प्रकाशित हो रही हैं। यद्यपि अभी तक कहानी संग्रहों का अपेक्षित प्रकाशन सम्भव नहीं हो सका है, इसे नहीं समझना चाहिए कि कुरमाली में कहानियाँ नहीं लिखी गई है। लेखकों के पास कहानियों का विपुल संग्रह पड़ा हुआ है।

सन् 1983 में स्व. कालिपदो महतो का 'केरिआबहु' नाटक प्रकाशित हुआ। सम्भवतः यह कुरमाली का पहला प्रकाशित नाटक है। इसकी भाषा–शैली इतनी क्लिष्ट है कि पाठकों को ग्राह्य नहीं हुई। भाषा में सारल्य की अपेक्षा पांडित्य प्रदर्शन अधिक है। इस नाटक के प्रकाशित होने के पूर्व अनन्त महतो द्वारा विरचित 'जाहली' नाटक का अनेक बार मंचन हो चुका था। इसी प्रकार उड़ीसा में भी 'मरन–जाला' नाटक का कई बार मंचन हुआ है। इसके अतिरिक्त गोड्डा जिले में कुरमाली नाटक 'फुलबाप' का अनेक अवसरों पर मंचन होता रहा है। ये नाटक पाण्डुलिपि पर ही मंचित हो रहे हैं। अभी तक इन नाटकों का मुद्रण सम्भव नहीं हो सका है। इन नाटकों के अतिरिक्त और अनेक नाटक लिखे गये हैं। यहाँ पर कुछ के नाम लेना ही पर्याप्त है। उदाहरण स्वरूप भगीरथ महतो का 'टुअर', हेमन्त कुमार सिंह का 'रावणवध', विश्वेश्वर महतो का 'बिरसाक मन झारखण्डेक संग', नरसिंह महतो का –उठे माइं कतेक निंदाबे', गीता सिंह का 'पड़हा' और गोविन्द चन्द्र महतो का 'करमा–धरमा' आदि।

सुरेन्द्र नाथ महतो द्वारा प्रणीत 'गाँधीक जय' कुरमाली का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। इसका प्रकाशन वर्ष 1997 है। प्रस्तुत उपन्यास आंचलिक कथावस्तु को लेकर लिखा गया है। परन्तु, उपन्यासकार ने इसे आंचलिक भाव को विस्तार देते हुए राष्ट्रीय स्वरूप देने का प्रयास किया है। इसके पूर्व दशरथ महतो ने 'फुलमनी', सुनील महतो ने 'गिरगिट' तथा रामजीवन सिंह, कैलाश बिहारी महतो एवं नमीता महतो ने अच्छे–अच्छे उपन्यास लिखे हैं। अर्थाभाव के कारण उपन्यास की पाण्डुलिपियाँ लेखकों की झोली में पड़ी हुई हैं। रिझू लिखित उपन्यास "जितू" झालदा से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका लोक संस्कृति मानभूम में क्रमशः छप रहा है।

कुरमाली में व्याकरण–लेखन की परम्परा सन् 1903 ई. से माना जा सकता है। डा. जार्ज ग्रियर्सन ने अपने "लिंग्विस्टिक सर्वे इंडिया" के खण्ड–पाँच, भाग दो में कुरमाली का संक्षिप्त व्याकरण प्रस्तुत किया। इसी को आधार मानकर डा. विश्वनाथ प्रसाद और डा. सुधाकर झा 'शास्त्री' ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ दी सदर सब–डिविजन ऑफ मानभूम एण्ड धलभूम' में कुरमाली के व्याकरण को विस्तार रूप दिया जो 1958 में 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्' पटना से प्रकाशित

हुआ है। इसके पूर्व चक्रवर्ती देवकी नन्दन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'ना धरे आँखिजल आँखि पाते' जो 1953 में प्रकाशित हुई थी, में कुरमाली व्याकरण का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् डा. नन्द किशोर सिंह ने 1962 में अपने शोध प्रबंध "कुरमाली बोलीः एक भाषा तात्विक अध्ययन" में कुरमाली भाषा के व्याकरण का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया। खुदी राम महतो द्वारा विरचित कुरमाली भाषा का पहला व्याकरण "कुर्माली भाषा तत्त्व" 1973 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद श्याम सुन्दर महतो द्वारा लिखित "कुरमालि बेझआकरन" नामक पुस्तिका 1981 ई. में प्रकाशित हुई। अनेक त्रुटियों के बावजूद देवनागरी लिपि में प्रकाशित यह पुस्तिका कुरमाली भाषा का प्रथम व्याकरण माना जा सकता है। इसी आस–पास लखीकान्त महतो का व्याकरण "कुड़मालि भाँउअर" 'झारखंड' मासिक पत्रिका, 'सारहुल' त्रैमासिक पत्रिका और 'करमतीर्थ' नामक पाक्षिक पत्रिका में आंशिक रूप में प्रकाशित होता रहा है। खुदी राम महतो प्रणीत "कुर्माली भाखिक इतिहास, रूप, चिस" जो 1982 में कुरमाली के गद्यरूप देखे जा सकते हैं। इधर 1986 में अनन्त महतो केसरियार ने "कुड़मालि भाँउअर" नामक एक कुरमाली व्याकरण प्रकाशित करवाया जो बंगला लिपि में मुद्रित है।

कुरमाली गद्य–साहित्य के विकास में एच. एन. सिंह की "कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियाँ" जो 1978 में प्रकाशित हुई तथा खुदी राम महतो द्वारा लिखित एवं प्रकाशित 'कुरमाली साहित्यिक इतिहास' के नाम भुलाये नहीं जा सकते।

कुरमाली के गद्य रूप कुरमाली निबंधों में सबसे अधिक मिलते हैं। कुरमाली का सम्भवतः पहला निबंध धनबाद से प्रकाशित 'शालपत्र' नामक पत्रिका में 1978 में छापा। इसके बाद खुदी राम महतो का 'कुर्मीशब्द' शीर्षक निबंध 1980 में 'अखिल भारतीय कुर्मी क्षत्रीय' पत्रिका जो झालदा से प्रकाशित हुई थी, में प्रकाशित हुआ। 1982 में मायाराम महतो का 'पुरूलिया काँदे' निबंध करमतीर्थ नामक पत्रिका में छपा। इसी वर्ष एच. एन. सिंह का साहित्यिक निबंध 'कुरमाली लोकगीत' राँची से प्रकाशित नागपुरी कला संगम पत्रिका में प्रकाशित हुआ। बिजराज महतो का एक सांस्कृतिक निबंध "सोहराई परब" सरहूल पत्रिका तथा एच. एन. सिंह का साहित्यिक निबंध "कुरमाली भाषा कर कबि आर साहित्यकार" नागपुरी कला संगम पत्रिका में 1983 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष श्री सिंह का एक अन्य निबंध 'सरहूल' आदिवासी पत्रिका के सरहूल अंक में मिलता है। पुरूलिया से प्रकाशित "करमतीर्थ" नामक पत्रिका में

करूणामयी के दो निबंध 'पुरूलियाक सहीद' और 'कुरमी आर कुरमाली भाखि' 1984 में छपे मिलते हैं। आनन्द खूँटदार और निरंजन महतो के निबंध क्रमशः 'फफरिंग' और 'झाड़खण्डेक देवी–देवता, भूत–प्रेत' सारहुल पत्रिका में 1985 में प्रकाशित हुए। इसी वर्ष एच. एन. सिंह एवं मानसिंह महतो के साहित्यिक निबंध क्रमशः "कुरमाली गीते अलंकार" एवं "कुरमाली कर विभिन्न नृत्य" नागपुरी कला संगम पत्रिका तथा 'डहर' पत्रिका में प्रकाशित हुए। 1986 में एच. एन. सिंह के "कुरमाली गीते प्रकृति चित्रण" एवं "कुरमाली गीत माहान हास्य–व्यंग्य" साहित्यिक निबंध छपे मिलते हैं। 1986 में ही एच. एन. सिंह का "चिड़का" नामक सांस्कृतिक निबंध नागपुरी प्रचारिणी सभा पत्रिका में छपा। इसी वर्ष अन्य दो निबंध 'कुड़मी किना हेकत' और 'कुड़माली भाखि' विचारात्मक लेख 'बानार' पत्रिका में प्रकाशित होने का उल्लेख मिलता है। एच. एन. सिंह का और एक साहित्यिक निबंध 'कुरमालीकर लोक नाट्य' नागपुरी कला संगम पत्रिका में छपा मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य के अनेक रूपों का वर्तमान निबंध में समावेश हो गया है।

कुरमाली के गद्य साहित्य में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, भाव–चित्र, गद्यगीत, रिपोर्ताज आदि नवीन विधाओं का अभाव खटकता है। 1986 ई. में करमतीर्थ पत्रिका में "इराइरि छौनृत्य" नामक एक रिपोर्ताज छपा था। इसके अतिरिक्त कमला कुमारी सिंह ने "सबरनाखा बहुउद्देशीय परियोजना" पर एक रिपोर्ताज लिखी है। इसी प्रकार गीता सिंह ने भी कई एक संस्मरण लिखी हैं, पर अभी तक मुद्रित नहीं हो सका है। कुरमाली में समीक्षा साहित्य का पूर्णतः अभाव है।

कुरमाली गद्य के विकास में पत्र–पत्रिकाओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इनमें करमतीर्थ, मानभूम एक्सप्रेस, आखड़ा, झाड़खण्ड, फुरूंग, टउआ, शालपत्र, बानार, छोटानागपुर संदेश, नागपुरी कला संगम पत्रिका, आदिवासी पत्रिका, डहर आदि महत्वपूर्ण हैं। 1975 के बाद से निमंत्रण–पत्र, पम्फलेट आदि कुरमाली भाषा में भी छपने लगे हैं। कुरमाली के गद्य के विकास में इनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

सन् 1975 ई. के बाद से से अबतक अनेक गद्य–काव्य संग्रहों का प्रकाशन हो चुका है। 1982 के बाद कुरमाली गद्य–काव्य विषय–वस्तु की दृष्टि से नया मोड़ ले रहा है। नये गद्य–काव्य–कला, विषय–वैविध्य एवं भाषा शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। भाषा में गति तथा अभिव्यंजना शक्ति में उत्तरोत्तर

विकास हो रहा है। सामाजिक विषयों पर विभिन्न शैलियों में रचनाएँ हो रही हैं। प्रमुख गद्यकारों में लखीकान्त, वसन्त कुमार महतो, आनन्द खूटदार, सुनील महतो, अनन्त महतो, चन्द्र मोहन महतो, श्याम सुन्दर महतो, खिरोधर महतो, मानसिंह, अक्षय कुमार महतो, करूणामयी, गीता सिंह, कैलाश बिहारी महतो, एच. एन. सिंह आदि हैं। ये लोग साहित्य की विविध विधाओं में लिखकर कुरमाली गद्य के विकास–मार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं। आज कुरमाली का गद्य साहित्य समय की गति के अनुसार तेजी से अग्रसर हो रहा है। कुरमाली लेखकों ने कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि के अतिरिक्त सामाजिक, राजनैतिक, संस्मरण, जीवन–चरित आदि विधाओं में लैखनी चलाई है। यद्यपि कुरमाली साहित्य में गद्य का विकास मंथर गति से हुआ। आगे चलकर देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण उसके विकास क्रम में तीव्रता आयी है। कुरमाली साहित्य के काल–विभाजन को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि कुरमाली गद्य का विकास आधुनिक काल में सर्वाधिक हुआ है। साहित्य समाज की परिवर्तनशील अवस्था का संयोजक हैं। कुरमाली के लेखक अपने नाटकों, उपन्यासों और कहानियों के नायक और कथानक सामान्य जनता से लेकर सामाजिक विषयों को नई दिशा दे रहे हैं। सम–सामयिक जन–चेतना और परिवेश के अनुसार नई कला, नई जीवन–दृष्टि, नये चित्तन, नये दर्शन एवं नयी अभिव्यक्ति दे रहे हैं।

वस्तुतः झारखण्ड की अन्य जनपदीय भाषाओं की भाँति कुरमाली के विकास में भी अनेक बाधाएँ रही हैं, जैसेः लिपि की समस्या, भाषा के मानकीकरण की समस्या, मुद्रण की समस्या, विक्रय की समस्या एवं लेखकों में अपेक्षित साहित्य चेतना का अभाव आदि।

***

कुरमाली के पुरखा जनकवि : विनन्दिया

अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से कुरमाली लोकसाहित्य को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है: 1. आदिकाल 2. मध्यकाल और 3. आधुनिक काल। परन्तु, गिरीश चन्द्र महन्ता ने कुरमाली साहित्य को चार कालों में विभक्त किया है, जो कि इस प्रकार हैं:

1. आदियुग (अस्मरणीय काल से सन् 1750 तक)
2. मध्ययुग (सन् 1750–1850)
3. काव्ययुग (सन् 1850–1950)
4. हरितयुग (सन् 1950–अब तक)

1. आदिकाल:– इसके अन्तर्गत कुरमाली के लोकगीतों–ढप, बिहा, डमकच, सरहूल, नटुआ, बाँदना, करम, एढ़ेइया, उधवा, कुँवारीझुपान, ढाबका, महराई इत्यादि एवं लोककथाएँ, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ है, जिनके रचयिता अज्ञात हैं।

2. मध्यकाल– मध्यकाल में कुरमाली के जनकवियों–विनन्द सिंह, गौरांगिया, बरजूराम , नरोत्तमा, पीताम्बर, दीना, उदय, खेपा, बोधा, रामकृष्ट, त्रैलोक्य नाथ मंडल, हाड़ीराम, डीमा, जगा, हलधरा को रखा जा सकता है।

3. आधुनिक काल– इस काल के प्रसिद्ध कवियों में सृष्टिधर, महीपाल, भवप्रीता, महिम, श्रीकान्त, काशीनाथ, हराधन, लखीकान्त, केशवचन्द्र, मानसिंह, अनन्त केशरीयार, सुनील, जगन्नाथ, रामेश्वर इत्यादि। चूँकि कुरमाली एक अन्तरप्रान्तीय भाषा है, अतः आधुनिक काल के लोककवियों की एक दीर्घ सूची बन सकती है।

कुरमाली का लोकसाहित्य बहुत ही समृद्ध है। गीत अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी हैं। कुरमाली लोकगीतों की अत्यन्त गौरवमय परम्परा रही है। कोई भी अनुष्ठान नृत्य–गीतों के बिना सम्पन्न नहीं होता है। अधिकांश गीत नृत्य–गीत हैं एवं प्रश्नोत्तर शैली में। कुरमाली गीति काव्य की रचना अबाध गति से होती आ रही है।

इस वन्य प्रदेश में चैतन्य महाप्रभु के आगमन के पश्चात् शिष्ट संगीत का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। इस क्षेत्र में वैष्णव मत का प्रचार–प्रसार दो धाराओं के माध्यम से हुआ– 1. कीर्त्तन छन्द और 2. झूमर छन्द। झूमरगीत छन्द

में रासलीला के माध्यम से वैष्णव धर्म अधिक प्रचारित–प्रसारित हुआ। जिस प्रकार कीर्त्तन छन्द को स्थायी बनाने के लिए राधा–कृष्ण के मंदिर का निर्माण होने लगा। उसी प्रकार झूमर छन्द के आधार पर रासमंच का निर्माण हुआ। कीर्त्तन–गायन की अपेक्षा झूमर–गायन का क्षेत्र व्यापक है। यह लोककवियों की विशिष्ट देन है कि गीतों के माध्यम से श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र को जन–जन तक पहुँचाया। यही कारण है कि झूमर गीतक्षेत्र में पंचपरगना को अत्यन्त लोकप्रियता मिली। पुरखा लोक रचनाकारों ने रामायण और महाभारत से कथावस्तु लेकर गीतों की रचनाएँ की हैं। कुरमाली के मध्यकालीन कवियों का वर्ण्य–विषय की दृष्टि से हिन्दी के भक्तिकालीन कवियों से तुलना की जा सकती है। कुरमाली के मध्यकालीन कवियों की रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी के भक्ति काल के कवियों के साथ कुरमाली के मध्यकालीन कवियों को एक भावनात्मक सूत्र में बांध दिया गया है। मध्ययुगीन कवियों की विशेषता यह रही है कि उन्होंने गीतों को एक नई शैली दी है। इस काल के कवियों के मुख्य वर्ण्य–विषय रहे हैं– भक्ति, श्रृंगार, दर्शन, प्रकृति–चित्रण आदि। इस काल के कवियों की रचनाओं में तुक, छन्द, अलंकार का खूब प्रयोग हुआ है। उपमा और रूपक अलंकारों का बाहुल्य प्रयोग है। सभी गीत तुकान्त हैं। सामान्यतः गीत चार कड़ी की भनिता सहित हैं। पयार छन्द के चौंतीसा गीत इस युग के कवियों की विशिष्ट देन है। अधिकांश लोक रचनाकार वैष्णव मतालंबी थे। राधाकृष्ण को इन्होंने अपने गीतों में अधिक प्रश्रय दिया है और उनकी लीलाओं को अपना वर्ण्य–विषय बनाया है। गीतों को सरस बनाने के लिए मुख्य प्रवृत्ति तुकान्त गीतों की ओर थी। इस काल के कवियों की रचना–शैली में पार्थक्य होते हुए भी वर्ण्य–विषय एक–से प्रतीत होते हैं। सभी कवियों ने कमोवेश अपनी रचनाओं में भक्तिभावना को विशिष्ट स्थान दिया है। कुरमाली के जनकवियों के गीत भी बहुत पुराने हैं। ये गीत जन–मानस के कण्ठाहार बन गये हैं। यद्यपि ये लोकगीत की परिधि में नहीं आते। फिर भी, इनकी लोकप्रियता इन्हें लोकगीतों के समीप ला खड़ा कर देती हैं, परन्तु, लोकगीतों की संख्या इनसे कहीं ज्यादा है। लोकगीतों की विशेषता यह है कि ये गीत किसी ग्रंथ पर आधारित नहीं है बल्कि जीवन के अनुभव पर प्रस्फुटित हुए हैं।

झूमर संगीत कुरमाली जन–जीवन का अभिन्न अंग है। यह सालों भर गाया जा सकता है। झूमर गीतों का प्रारम्भ विनन्दिया और गौरांगिया के समय

से माना–जाना चाहिए। वस्तुतः इस वन्य–प्रदेश में झूमर साहित्य के एक विशाल दुर्ग का निर्माण हुआ। बाद में अनेक लोक रचनाकारों ने झूमर गीतों की रचनाएँ की। यह सुखद आश्चर्य की बात है कि देश में कितने उथल–पुथल हुए। परन्तु, संगीत पर कोई आंच नहीं आयी और झूमर की वेगवती धारा अविरल रूप से बहती रही। फलतः इसके माध्यम से विविध चिन्तन–धारा प्रस्फुटित होती रही। आधुनिक कवि भी इस परम्परा से अभी भी पूर्णतः उन्मुक्त नहीं हो पाये हैं। अनपढ़ रचनाकार अभी तक उसी लीक पर चलते आ रहे हैं।

यहाँ पर एक ऐसे लोक रचनाकार की चर्चा की जा रही है, जिनकी रचनाओं पर एक पुस्तक प्रकाशित है। पुस्तक परिचय निम्नवत् हैं:

पुस्तक का नाम	:	आदि झूमर संगीत
संकलन कर्त्ता	:	राजा बहादुर उपेन्द्र नाथ सिंह देव
प्रकाशक	:	रघुवर प्रकाशन, 10 पुरूलिया रोड, राँची
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, संवत् 2013 तदनुसार सन् 1956
मुद्रक	:	अरूण कुमार, सुकृत प्रेस, राँची

कुरमाली के मध्ययुगीन किसी भी पुरखा जनकवि की प्रामाणिक जीवनी लिखित रूप में नहीं मिलती। सभी कवि गीत की भनिता के माध्यम से जाने जाते हैं। किस कवि की कितनी रचनाएँ हैं, उसका विवरण किसी के पास नहीं है। गीत लोकमुख में जीवित होते हुए बिखरे पड़े हैं। इन गीतों को संकलित कर उन्हें प्रकाशित करने की परमावश्यकता है। मध्यकाल में कुरमाली पद्यसाहित्य का जितना विकास हुआ है, उसके अनुपात में गद्य साहित्य शून्य रहा है।

चूँकि हमारा विषय रहा है कि किसी लोक रचनाकार से सम्बन्धित कोई पुस्तक प्रकाशित है तो उसके सम्बंध में संक्षिप्त जानकारी देना। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सन् 1953 के आस–पास कुरमाली पर दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं (1) ना धरे आँखि जल आँखि पाते और (2) केते अकुहा भाषा, केते उत्तला आशा। इन दोनों पुस्तकों में कुरमाली के मध्यकालीन कवियों के गीत एवं लोकगीतों का संकलन के साथ–साथ गीतों के भावार्थ दिये गये हैं। इन दोनों पुस्तकों में कुरमाली व्याकरण का भी संक्षिप्त परिचय है। इसके पश्चात् 1956 में सिल्ली के राजा बहादुर श्री उपेन्द्र नाथ सिंह देव ने "आदि झूमर संगीत" नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवायी। इस पुस्तक में कुरमाली के दो अति लोकप्रिय कवि–गौरांगिया और विनन्दिया के गीतों का संकलन है।

गौरांगिया और विनन्दिया के गीत पंचपरगना से लेकर पं. बंगाल के सीमान्त क्षेत्रों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। ये गीत जन–मानस के कंठाहार बन गये हैं। सच पूछा जाए, तो कहा जा सकता है कि इस प्रदेश में झूमर गीत जो विनन्दिया द्वारा विरचित हैं, जितने लोकप्रिय हैं, शायद किसी अन्य लोक रचनाकार के नहीं। लोक रचनाकार विनन्दिया पर सम्भवतः पहली पुस्तक "आदि झूमर संगीत" ही कही जा सकती है। पूर्वाभास और प्राक्कथन को छोड़कर इस पुस्तक में 239 पृष्ठ हैं। प्रथम पृष्ठ से लेकर 64 पृष्ठ तक गौरांगिया के लगभग 71 गीत समाविष्ट हैं जबकि पृष्ठ 65 से 239 पृष्ठों में महाकवि विनन्द के लगभग 280 गीतों को स्थान दिया गया है। कुल मिलाकर गीतों की संख्या 351 के लगभग है। स्थानाभाव के कारण यहाँ पर विशेषतः पुरखा लोक रचनाकार विनन्दिया की रचनाओं पर ही संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास मात्र किया गया है। उनकी प्रामाणिक जीवनी ह्में लिखित रूप में नहीं मिलती। वे झूमर गीत के माध्यम से जाने जाते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं की भनिता में कई नामों का व्यवहार किया है। यथा–विनन्द सिंह, विनन्दिया, विनन्दा, विनन्दराय और विनन्द। इन विविध नामों का प्रयोग सम्भवतः गीत को रोचक बनाने के लिए है। गीतों में प्रयुक्त इनके विविध नाम गीतों के भाव–सौन्दर्य वृद्धि में चार चाँद लगा देते हैं।

संग्रहकर्त्ता ने इन सारे गीतों को अलग–अलग शीर्षकों में भाव की दृष्टि से रखा है। प्रथम शीर्षक 'गोष्टपाला वन्दना' है जिसमें कवि ने हिन्दी के मध्यकालीन कवियों की भांति मंगलाचरण के रूप में रची है। उन्होंने इस गीत में गुरू, गोविन्द, पार्वती, गणेश, सरस्वती, शेषनाग आदि देवी–देवताओं की आराधना की है कि वे सभी उनके ह्रदय–स्थल में निवास करें ताकि उनका अज्ञान–रूपी अंधकार दूर हो जाए।

दूसरे शीर्षक को 'गोस्टपाला' नाम से अभिहित किया गया है। इसमें अठारह गीत समाहित हैं। इन गीतों में श्रीकृष्ण का वात्सल्य चित्रण, गोचारण, बांसुरी–वादन, श्रीकृष्ण की आरती आदि का मनोहारी वर्णन है।

इसके बाद 'दूती संवाद' है जिसमें पच्चीस गीत दिये गये हैं। इन गीतों का वर्ण्य–विषय है– राधा के बिना श्रीकृष्ण का चिन्तामग्न होना, गोपियों का विरह–वर्णन, आत्मा–निवेदन, संयोग–श्रृंगार आदि।

'जाल संवाद' (सम्भवतः जल संवाद हो सकता है) शीर्षक में चौबीस गीतों को रखा गया है। गीतों के वर्ण्य–विषय हैं– श्रीकृष्ण के दिव्य रूप का

वर्णन, गोपियों का गमन, श्रीराधा के अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण, यमुना के तट का वर्णन, गोपी–कृष्ण मिलनादि का वर्णन।

'दधिसवांद' अध्याय में बीस गीतों को स्थान दिया गया है। गीतों के वर्ण्य–विषय हैं– अभिसार, दही बेचने के लिए गोपियों का मथुरागमन, गोपियों के परिधान, श्रृंगार, श्रीकृष्ण का गोपियों से दही लूटना, मथुरा में गोपियों का श्रीकृष्ण से मिलन आदि का वर्णन।

इसी प्रकार 'पिरीतपाड़ा' में बारह गीत है। इन गीतों में आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप, लौकिक प्रेम, प्रीति में लाभ–हानि का वर्णन का विशेषतः वर्णन है। 'बाँशी पाड़ा– खण्ड में दस गीत दिये गये हैं जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा बांसुरी–वादन, बांसुरी की मधुर ध्वनि का जड़–चेतन पर प्रभावादि का जीवंत चित्रण है।

'सप्न पाड़ा' में तेरह गीत हैं। इस अध्याय के गीतों में मथुरा से श्रीकृष्ण के गोकुल आने का स्वप्न गोपियों द्वारा देखे जाने, गोपियों की विरहावस्था, श्रृंगारादि का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से हुआ है।

इसके बाद 'रासपाड़ा' है जिसमें गीतों की संख्या ग्यारह है। गीतों में श्रीकृष्ण के बिना गोपियों की अवस्था, व्याकुल हो गोपियों द्वारा वन–वन में श्रीकृष्ण को ढूंढ़ना, श्रीकृष्ण का अन्तर्ध्यान होना, कृष्ण के बिना गोपियों का बेहाल होना एवं विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

'खुचरागीत' नामक शीर्षक के अन्तर्गत तेइस गीत हैं। 'खुचरागीत' अभिधान से तात्पर्य वे गीत जिन्हें ऊपरोक्त शीर्षकों में नहीं रखा जा सकता है। लेखक का मानना है कि इस शीर्षक में जितने भी गीत रखे गये हैं वे सारे गीत ऊपरोक्त शीर्षकों में समाहित किये जा सकते थें। क्योंकि इन गीतों के वर्ण्य–विषय भी कमोवेश वही हैं। इस शीर्षक में समाहित गीतों तथा ऊपरोक्त शीर्षकों के गीतों में भाव, रस आदि की दृष्टि से पर्याप्त समानता है।'खुचरागीत' शीर्षक में जो गीत रखे गये हैं, उनके वर्ण्य–विषय हैं– श्रीकृष्ण का कदम्ब वृक्ष के नीचे बांसुरी वादन, गोपियों का श्रीकृष्ण से मिलने जाना गोपी–कृष्ण–मिलन, राह में गोपियों को छेंकना, विरह–वर्णन, कृष्ण के बिना पशु–पक्षी का रोदन, गोपियों को छलना, विरह–वेदन आदि।

पृष्ठ एक सौ चौहत्तर से दो सौ उन्तालीस पृष्ठ तक एक सौ चौबीस गीतों को स्थान दिया गया है। परन्तु, इसमें कोई शीर्षक का उल्लेख नहीं है। विषय–वस्तु की दृष्टि से इन गीतों को ''रामायण पाड़ा'' शीर्षक के अन्तर्गत रखा

जा सकता था। क्योंकि समस्त गीत रामायण की कथावस्तु पर ही आधारित है जिसमें राम वन–गमन से लेकर रावण वध तक का वर्णन है।

किसी लोकगीत का मूल्याकन करते समय दो पद्धतियों पर विचार किया जा सकता है:– (1) भावपक्ष और (2) कलापक्ष। भावपक्ष के अन्तर्गत रस परिपाक और भाव–सौन्दर्य आ सकते हैं जबकि कला पक्ष में अलंकार, तुक, लय, छन्द–विधान और भाषा। इन दोनों पक्षों में विनन्दिया के वर्ण्य–विषय को लेकर विचार किया जाय तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि वे वैष्णव मतावलम्बी थे। वैष्णव–धर्म में युगल–मूर्ति की आराधना की परिपाटी है। उसमें ब्रह्म के साथ माया, विष्णु के साथ लक्ष्मी, राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ राधा की उपस्थिति अनिवार्य है। विनन्द सिंह ने राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप का वर्णन किया है। यदि भक्ति–काव्य की विशेषताओं पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि उनकी प्रमुख विशेषताओं में मंगला चरण, गुरूमहिमा, प्रकृति–चित्रण, ऋतु–वर्णन, नारी–सौदर्य, श्रृंगार (भावपक्ष और कलापक्ष), तुकान्त (छन्द) और कृष्ण–भक्ति–काव्य आदि है।

भाव की दृष्टि से विनन्द के गीतों का विषय प्रेम है। रस की दृष्टि से इनके गीतों का मूल विषय विप्रलम्भ श्रृंगार व्यापक है उतना ही वियोग श्रृंगार भी। गीतों में विरह संवेदन जो हिन्दी के कवि सूर के पदों में–'निसिदिन बरसत नयन हमारे' विनन्दिया की नायिकाएँ भी उनसे पीछे नहीं हैं। इनका काव्य पक्ष देखते ही बनता है। भाव–व्यंजन, रसपरिपाक, अलंकार चमत्कार का अनूठा चित्रण है। यदि हम अल्प शब्दों में कहना चाहें तो कहा जा सकता है कि मुख्य विषय रहा है– "प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।"

वात्सल्य रस के आचार्य सूर ने जिस प्रकार श्रीकृष्ण के वात्सल्य का मनोहारी चित्रण किया है, उसी प्रकार विनन्दिया ने भी अपनी रचनाओं में श्रीकृष्ण के धूल में खेलने, गाय चराने के साथ रासलीला आदि का मनोहारी चित्रण किया है। विनन्दिया के व्यक्तित्त्व को जानने के प्रस्तुत गीत पर्याप्त है:

रसेर सागर मांझे, प्रेम–कमल बिराजे
परिमल दिगन्ते जाहार।
आछे शान्ति मधु ताय, अन्य कि जानिबे हाय,
साधु–अलि मर्म जाने तार।।

अर्थात् रस–रूपी समुद्र में प्रेम–रूपी कमल विराजमान है जिसका गंध चारों दिशाओं में फैला हुआ है जिसमें मधु–रूपी शान्ति है, इसे अन्य क्यों जाने? केवल साधु–रूपी भ्रमर ही प्रेम–रूपी कमल के मर्म को समझ सकता है।

कुरमाली के मध्यकालीन लोक रचनाकारों की कितनी रचनाएँ हैं, उनका जीवन–वृत क्या है, इसका प्रमाण अबतक अनुपलब्ध है। इस ओर अध्येताओं, अन्वेषकों और लोकसाहित्य–मर्मज्ञों को नये सिरे से चिंतन–मनन की परमावश्यकता है। लोककवियों की अब तक जो भी रचनाएँ प्रकाशित रूप में आयी हैं, वे छिट–पुट ही कही जा सकती हैं। गीतों के समग्र संकलन के लिए समय और श्रम की आवश्यकता है। न जाने इस भूमि पर कितने अमूल्य रत्न बिखरे पड़े हैं। पर खेद है कि इन बिखरे रत्नों को संचय और पहचानने वाले बहुत ही कम लोग हुए।

***

संगीत–प्रेमी कुरमाली जनमानस और उनके पारम्परिक नृत्य

झारखण्ड के लोगों में गाने और नाचने की एक सुदीर्घ और समृद्ध परम्परा रही है। यदि यहाँ की संस्कृति को गीतों और नृत्यों की संस्कृति कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। लोक–संगीत वस्तुतः लोकमानस की अनुपम देन है।

यहाँ के लोगों के संगीतमय जीवन के सम्बंध में कई लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं जो गीत और नृत्य के समाहित जीवन पर मुहर लगा देते हैं। गीत और नृत्य से सम्बन्धित मुण्डारी की एक लोकोक्ति–सेन गे सुसुन, कजी के दुरड़. , तो संथाली की लोकोक्ति– 'रोड़ाक् गे राड़ाक् खान सेरेञ आर ताड़ाम गे लुहुकाक खान- एनेच् होयोक्आ', इसी प्रकार कुडुख़ की' एकना दीम तोकना, कत्था दीम डंडी' तथा कुरमाली की–माटिक मांदेइर पातेक जुबा, ताल धरी–धरी नाचेइ कुबा' में समग्र रूप से एक ही भाव व्यक्त हुआ है कि 'चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत हैं।'

हमारा संदर्भ यहाँ कुरमाली जन–जीवन संगीत–प्रेमी होने पर प्रकाश डालना है। अतः तुलनात्मक रूप से झारखण्ड प्रदेश में निवासित विभिन्न समुदायों के संगीत पर प्रकाश डालने की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

कुरमाली के अधिकांश लोकगीत नृत्यगीत हैं। सभी गीत मौसमी हैं जिनके ताल, लय और बाजे के बोल मौसम के अनुसार अलग–अलग हैं। अधिकांश गीत किसी न किसी अनुष्ठान या पर्व–त्योहार से सम्बन्धित हैं। एक मौसम के गीत दूसरे मौसम में गाने की परिपाटी नहीं हैं। सुरों के आधार पर ही कुरमाली लोकगीतों की पहचान होती है और सुर के आधार पर ही गीतों के पार्थक्य को जाना जा सकता है। कुरमाली के अधिकांश लोकनृत्य वामावर्त्त (Anti clock wise) शैली में हैं।

कुरमाली गीतों में अनेक राग–रागिनियाँ प्रचलित हैं। गीत के अनुसार ताल बजते हैं और मौसम के अनुसार गीत गाये जाते हैं। फलतः राग और ताल बदलते हैं। अनुष्ठान के अवसर पर स्त्री–पुरूषों का सामूहिक नृत्य–गायन होता है। कोई ऐसा संस्कार या अनुष्ठान नहीं जो गीत और नृत्यों के बिना पूरा होता हो। यहाँ पर कुछ लोकगीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो झारखण्डी कुरमी समाज के गीत–नृत्य–प्रेमी होने का दिग्दर्शन कराते हैं।

कुरमाली के एक करमगीत में किसी नायिका को नृत्य में शामिल नहीं किए जाने पर उसकी मनोदशा का वर्णन हैः

सास पिंधे लील साड़ी, दीदी पिंधे लाल साड़ी
हामें गो पिंधों छिंटल साड़ी
सास नाचे आखड़ाइं, दीदी नाचे आनगाइं
हामें रहली टाटी कनाइं ठाढ़ जे।

एक नायिका अपनी सहेली से कह रही हैं कि आज अयोध्यानगर में करम–त्योहार मनाया जा रहा है। हमें करम–नृत्य करने के लिए वहाँ जाना चाहिए। इसे सम्बन्धित निम्न गीत द्रष्टव्य हैं:

अयोध्या नगरे करम भेल,
आज, चाला हो करम खेले जाब।

एक अन्य गीत में नायिका को नृत्य–स्थल (अखाड़े) में नहीं ले जाने के कारण उसके हृदय में कितना दर्द, कितना टीस है, उसका मन कितना व्यथित हैं, का वर्णन है।

टांगनाहीं रांगा लुगा झूले
सासुड़ी ननद नाचे गेला
मके निहिं लेले गेला।

नायिका का रंगीन वस्त्र टंगा का टंगा रह गया। सास और ननद दोनों ही नृत्य करने के लिए अखाड़े में गयीं। परन्तु, वे साथ में नायिका (बहू) को नहीं ले गयीं। यह सर्वविदित है कि सास और ननद दोनों ही बहू के साथ बैर भाव का संबंध रखती हैं, ईर्ष्या करती हैं। एक दूसरे गीत में नायिका अपने पति से कह रही हैं:

नाचे लाइ जाइ दिहा पिया,
नाचे लाइ जाइ दिहा।
ढल, घमसा बाजे, हुदके छतिया
नाचे लाइ जाइ दिहा पिया————।

अर्थात् नायिका अपने प्रियतम से अखाड़े में जाने का आदेश मांग रही है। ढोल और नगाड़े की आवाज सुनकर उसका मन नृत्य करने के लिए विह्वल हो गया है। वह अपने को रोक नहीं पा रही है। लेकिन पति की आज्ञा के बिना जाए तो जाए कैसे?

मानव–जीवन में कौन–कौन–सी ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके अभाव में जीवन अधूरा रह जाता है। इससे सम्बन्धित प्रस्तुत प्रश्नोत्तर शैली के गीत में कितना सजीव चित्रण हुआ है।

किया बिनु छुटए, सिरी बिन्दा आखड़ा?
किया बिनु छुटए, नइहर?

किया बिनु छुटए, सिंथे का सिन्दूर?

किया बिनु मुख मलिन?

याने किसके अभाव में अखाड़ा छूटता है? किसके बिना नैहर छूटता है? किसके अभाव में माथे का सिन्दूर मिटता है? और किसके अभाव में चेहरे पर उदासी छायी रहती हैं? उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर गीत में ही मिल जाते हैं:

गीत बिनु छुटए, सिरी बिन्दा आखड़ा।

भाई बिनु छुटए नइहर।

पुरूष बिनु छुटए, सिंथे का सिन्दूर।

पुता बिनु मुख मलिन।

अर्थात् गीत के अभाव में अखाड़ा छूट जाता है। भाई के बिना नैहर छूटता है। (कुरमाली रीति–रिवाज में बहन को प्रत्येक त्योहार में नैहर लिवा लाने की प्रथा है, यदि भाई न हो तो उसे कौन–नैहर लिवा लायेगा?) पति के बिना माथे का सिंदूर मिट जाता हैं। इसी प्रकार पुत्र के अभाव में माता–पिता के चेहरे पर उदासी छायीं रहती है।

कुरमाली लोकगीतों में स्त्रियों की भांति पुरूष के भी संगीत–प्रेमी होने से सम्बन्धित अनेकानेक गीत मिलते हैं।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि संगीत कुरमाली जनमानस की अमूल्य थाती है।

अब कुरमाली के पारम्परिक नृत्यों का उल्लेख करना श्रेयस्कर प्रतीत होता है। कुरमाली के प्रमुख पारम्परिक नृत्य निम्नवत हैं:–

डमकच:–

यह विवाह के अवसर पर होनेवाला नृत्य है। जब वर विवाह करने के लिए चला जाता है तो अड़ोस–पड़ोस की स्त्रियाँ मर्दों का पोशाक पहनकर गीत के साथ नृत्य करती हैं। यह मूलतः स्त्रियों का नृत्य है। कभी–कभी वे विवाह का अभिनय करती हुई नृत्य करती हैं तो कभी अन्य कथावस्तु को लेकर नृत्य करती हैं। गीत प्रायः प्रश्नोत्तर शैली में होते हैं। गीत छोटे–छोटे तथा मुक्तक छन्द में हैं।

डाबका:–

डाबका नृत्य विवाह संस्कार से सम्बन्धित है। वर जब विवाह कर वापस लौटता है, तब वर और कन्या को घर में प्रवेश कराने के पूर्व भाई–भाभी या माता–पिता वर–वधू को गोद में लेकर नृत्य करते हैं। विधिवत् विवाह में पहले डाबका नृत्य अनिवार्य माना जाता था। अब तो यह नृत्य लुप्तप्राय हो गया है।

नटुआ:–

नटुआ एक प्राचीन नृत्य है। गीत के द्वारा विषय का परिचय दिया जाता है। यह वीर रस का नृत्य है। किसी शुभ अनुष्ठान में नटुआ–नृत्य को प्राथमिकता दी जाती है। नर्त्तक अपने शरीर को रंगीन फीतों से सुसज्जित करता है और अपने हाथ में ढाल और तलवार लेकर नृत्य करता है। उसकी भंगिमा युद्ध की स्थिति की होती है। साधारणतः यह नृत्य विवाह के अवसर पर बारातियों के मनोरंजन के लिए किया जाता है। यह नृत्य अकेले या समूह दोनों में सम्भव है।

सरहूल नृत्य:–

सरहूल मूलतः गीत के साथ होनेवाला स्त्री–पुरूष का सामूहिक नृत्य है। जाहेर थान में सरहूल–पूजन आदि की क्रिया की समाप्ति के पश्चात् यह नृत्य होता है। गीत के साथ ढोल, नगाड़े और शहनाई बजाये जाते हैं।

छौ–नृत्य:–

आजकल साधारणतः छौ–नृत्य तीन शैलियाँ प्रचलित हैं– मानभूम (पुरूलिया) शैली, मयूरभंज शैली और सराईकेला शैली। मानभूम और सराईकेला शैलियों में मखौटे का व्यवहार होता है। इसके विपरीत मयूरभंज शैली में मुखौटे का व्यवहार नहीं होता। मयूरभंज और सराईकेला के छौ–नृत्य शास्त्रीय नृत्य के सन्निकट हैं जबकि मानभूम शैली के छौ–नृत्य लोकनृत्य है।

डाँइड़धरा नृत्य:–

यह कुरमाली का सामूहिक नृत्य है। इसे 'बारहमासिया नृत्य' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। स्त्री–पुरूष एक दूसरे के हाथ या कमर को पकड़कर नाचते हैं, यह नृत्य वामावर्त है। साधारणतः डाँइड़धरा और पाँता नृत्य को लोग एक समझते हैं। परन्तु, यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि डाँइड़धरा नृत्य में कमर के नीचे के अंगों का संचालन होता है जबकि पाँता नृत्य में सम्पूर्ण शरीर का।

करम नृत्य:–

करम नृत्य बड़ा ही आकर्षक नृत्य है। इस नृत्य में पैरों के साथ उठने और धरातल पर रखने की क्रिया देखते ही बनता है। यह नृत्य अत्यन्त फूर्तिला नृत्य है। स्त्रियाँ उछल–उछल कर नृत्य करती हैं। परन्तु, इसी का 'जावा बेड़हा' नृत्य अत्यन्त धीमा होता है। स्त्रियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर उछलती हुई

नृत्य करती है जो बड़ा ही आकर्षक होता है। यह मूलतः स्त्रियों का एक आनुष्ठानिक नृत्य है।

एढ़ेइया नृत्यः–

यह नृत्य कुरमाली संगीत की अनुपम उपलब्धि है। जैसा कि इसके नामकरण से ज्ञात होता है कि यह ढाई डेग याने ढाई कदम का नृत्य है। नाचते समय ढाई कदम आगे या पीछे की ओर जाया जाता है। यह नृत्य करम त्योहार के दूसरे दिन होता है। इसकी विशेषता यह है कि इस नृत्य के एक गीत में बारह प्रकार के ताल बजते हैं। यह स्त्री–पुरूषों का सामूहिक नृत्य है। इस नृत्य में स्त्री–पुरूषों की संख्या सौ तक भी हो सकती है। यह लम्बी अवधि तक चलने वाला नृत्य है। डेग (कदम) में किसी प्रकार की गड़बड़ी होने पर नर्त्तक को कुचल जाने की आशंका रहती है। यह नृत्य अब मरणोन्मुख हैं।

कुछ लोग नचनी नाच को भी कुरमाली का पारम्परिक नृत्य मानने लगे हैं। परन्तु, लेखक की मान्यता है कि वैष्णव धर्म के प्रचारित–प्रसारित होने के पश्चात् झारखण्ड प्रदेश में झूमर साहित्य का निर्माण हुआ है। राजा और जमीन्दार इस नृत्य के पृष्ठपोषक रहे हैं। झारखण्ड के जिन क्षेत्रों में नचनी–नाच का प्रचलन बढ़ा, उन क्षेत्रों में लोकनृत्य को घटा ही हुआ, विशेषकर कुरमाली समाज को। जो स्त्रियाँ अपने परिवार के साथ उन्मुक्त नृत्य करती थीं, नचनी–नृत्य के समाज में समावेश से स्त्रियाँ परदे में चली गयी। इस नृत्य में ऐसे गीत गाये जाने लगे जो बहू–बेटियों के साथ नहीं गाये जा सकते। ऐसे गीतों को कुरमाली में 'कांचारस' के गीत कहे जाते हैं। फलतः कुरमी समाज की बहू–बेटियों ने पुरूषों के साथ नृत्य करने से अपना हाथ खींच लिया। इसके विपरीत कुरमाली के पारम्परिक नृत्यों में गाये जाने वाले गीतों में कहीं भी वासना की बू नहीं आती हैं।

यह सुखद आश्चर्य की बात हैं कि देश में कितने ही उथल–पुथल हुए, परन्तु, संगीत पर कोई आंच नहीं आयी। गीत और नृत्यों की वेगवती धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है। इतना तो निश्चित है कि रेडियो और दूरदर्शन के होने से लोक–मानस पर इनका प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप लोगों में लोक संगीत के प्रति रूझान घट रहा है। यदि दूरदर्शन जैसे मीडिया में लोक संगीत को कुछ अधिक प्रश्रय दिया जाय तो निश्चित रूप से मरणोन्मुख लोकनृत्य में नयी जान आ सकती है।

मांदर

झारखण्ड का हमारे देश के मानचित्र पर विशिष्ट स्थान रहा है। प्राचीन काल में इसका क्षेत्र विशाल था। इसे कई नामों से अभिहित किया जाता रहा है। सम्प्रति राजनीतिक मानचित्र पर इसका आकार लघु कर दिया गया है। इस प्रदेश को प्रकृति का अनुपम वरदहस्त प्राप्त है। प्रकृति की छटा यहाँ देखते ही बनती है। अनेक विशेषताओं के कारण यह प्रदेश देशी–विदेशी विद्वानों, अध्येताओं और अनुसंधानों का आकर्षण का केन्द्र रहा है। व्यापक एवं विविध संदर्भ में इसकी चर्चा की जाए तो बलपूर्वक कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण झारखण्ड के एक विशेष क्षेत्र छोटानागपुर प्रकृति की छटा से परिपूर्ण होने के साथ–साथ सघन वनों से आच्छादित होने के कारण विविध खनिज सम्पदाओं से सुसम्पन्न है। एक ओर बेतला और हजारीबाग जैसे राष्ट्रीय उद्यान वनों की अमूल्य थाती हैं तो दूसरी ओर सोना, अबरख, ताँबा, अल्यूमीनियम, यूरेनियम, लोहा, कोयला, ग्रेनाईट इत्यादि बहुमूल्य धरोहर भी। स्वर्णरेखा, शंख, कोयल, कारो, दामोदर आदि नदियाँ सघन वनों के वक्षस्थल पर कल–कल करती हुई सारे प्रदेश को जीवंत बनाती हैं तो दूसरी ओर हुँडरू, हिरनी, गौतमधारा, दशम, पंचघाघ आदि जल प्रपात पर्यटकों को बरबस आकर्षित करते हैं।

छोटानागपुर की भाषा और अनूठी संस्कृति भाषाविदों, नृतत्व वैज्ञानिकों एवं लोकसाहित्य मर्मज्ञों को आकृष्ट किये हुए है। भाषिक परिप्रेक्ष्य में इसे आर्य और अनार्य भाषाओं का संगम स्थल कहा जा सकता है। मूल रूप में यहाँ पर तीन भाषा परिवार के लोगों का निवास स्थल है– आर्य भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार और आस्ट्रिक भाषा परिवार। इन भाषा परिवारों के लोकगीत, लोककथा, शब्द–समूह, संगीत एक दूसरे से इ तने घुल–मिल गये हैं कि इन्हें पृथक करना संभव नहीं। यहाँ के लोगों की उन्मुक्त जीवन–शैली आगन्तुकों को अनायास आकृष्ट कर लेती है। गीत और नृत्य लोकजीवन अमूल्य धरोहर है। लोक संगीत वस्तुतः लोकमानस की अनूठी देन है। यहाँ के वाद्य और नृत्य मनोहारी ही नहीं, बल्कि कला के अनुपम उदाहरण है। विभिन्न पर्व–त्योहार के अलग–अलग प्रकार की नृत्य शैलियाँ और विविध गीत जीवन की धरातल को स्पर्श करने वाले हैं। नगाड़ा, ढोल, मांदर, टेटके, केन्द्रा, टुइला, बांसुरी आदि वाद्य–यंत्र लोक–जीवन के अभिन्न अंग है। आर्थिक विपन्नता के बावजूद झारखण्डी लोक–मानस संगीत और कला के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। नृत्य और गीत जीवन के आवश्यक अंग हैं। यह भाव यहाँ की विविध भाषाओं में सटीक

प्रस्फुटित हुआ है। झारखण्डी जन मानस के संगीतमय जीवन के संबंध में एक ओर मुण्डारी की लोकोक्ति– 'सेन गे सुसुन, कजि के दूरड., दूरी गे दुमड., सुः सुः ई' तो दूसरी ओर संताली के 'रोड़ाक् गे राड़ाक् खान सेरेञ आर ताड़ाम गे लुहुकाक खान एनेच् होयोआ' एवं कुडुख़ भाषा के 'एकना दीम तोकना कत्था दीम डंडी' में समग्र रूप से एक ही भाव व्यक्त हुआ है कि चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत है। इसी प्रकार कुरमाली की एक लोकोक्ति– 'मांटिक मांदेइर पातेक जुबा, ताले धरी–धरी नाचेइ कुबा' में अत्यन्त संगीत–प्रेमी होने के भाव का दिग्दर्शन होता है। रात्रि में मांदर या ढोल पर थाप और नगाड़े पर चोट पड़ते ही लोगों के पैर थिरकने लगते हैं।

यहाँ पर हमारा संदर्भ झारखण्ड प्रदेश में व्यवहृत बहुलोकप्रिय वाद्य मांदर से है। वाद्ययंत्रों का निर्माण कब हुआ, इसे रेखांकित करना अत्यंत कठिन है। यह अनुसंधान का विषय हो सकता है। डा. हरिमोहन मिश्र का मानना है कि 'गीतों की रचना से पहले कई वाद्ययंत्र बन चुके थे। अनिलोद्वत होने पर स्वयं बज उठने वाले कीचक ने तो सबसे पहले बांसुरी को जन्म दिया होगा। चमड़े से मढ़े मिट्टी के ढोल पर भी हाथ पड़ने लगे थे। इन यंत्रों का उपयोग साधारणतः सामाजिक उत्सव के अवसर नृत्य के साथ होता था। जब गीत रचे जाने लगे तो इन्हें इन दोनों के बीच स्थान मिला और नृत्य–गीत, वाद्य की अभूतपूर्व परम्परा चल पड़ी'।

साधारणतः संगीत का अर्थ लोग गायन कला से ही लेते हैं। वस्तुतः संगीत का अर्थ है सम्यक् रूप से गाया हुआ 'सम्यक प्रकारेण गीयते इति संगीतम्।' इससे सामान्यतः गायन कला का बोध होता है। परन्तु, शास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो संगीत का तात्पर्य गान, वाद्य और नृत्य कलाओं से है।

कहा गया है– 'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रय संगीतमुच्यते'। हमारा यहाँ पर छोटानागपुर के वाद्य–यंत्रों में एक अत्यंत बहुप्रचलित एवं सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य यंत्र मांदर का सामान्य परिचय कराना है।

छोटानागपुरी वाद्य–यंत्रों की अपनी विशेषताएं हैं। एक वाद्य–यंत्र में भी विविधता पायी जाती है क्योंकि गीतों के सुर के आधार पर ही इन वाद्य यंत्रों का निर्माण हुआ है। उदाहरण स्वरूप सम्पूर्ण छोटानागपुर में व्यवहृत एक वाद्य–यंत्र है। परन्तु, आकार–प्रकार में भिन्न–भिन्न जनजातियों के मांदर भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं।

मांदर का निर्माण कब हुआ, यह कहना बड़ा कठिन है। परन्तु, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसका इतिहास भी उतना ही पुराना है। जितना की भाषा, लोकगीत और लोककथाओं का। ऐसा कहा जा सकता है कि वाद्ययंत्रों के निर्माण–पूर्व मानव हाथ से ताली देकर, पैर से जमीन मारकर, छाती और पेट पर हथेलियां मारकर लय और ताल के साथ नृत्य के चाल को स्थिर रखता था। कालान्तर में भूमि के गढ्ढों, लकड़ी के खालों के ऊपर हथेली मारकर ताल की ध्वनि उत्पन्न करने लगा। फिर क्रमिक विकास के क्रम में पशु के चमड़े का प्रयोग कर ढोल, नगाड़ा, टेटके, ढाक, मांदर आदि अनेक प्रकार के वाद्य–यंत्रों का निर्माण किया जाने लगा। लोकगीतों और लोकनृत्यों के साथ इन्हीं ताल–वाद्यों का अधिकतर प्रयोग किया जाने लगा। वास्तव में वाद्य संगीत की तुला है। गायन, वाद्य तथा नृत्य संगीत के रूपों को लयबद्ध रखने तथा उनमें रंजकता बढ़ाने में इन वाद्यों का सहयोग अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा।

संताल लोक–विश्वास के अनुसार मांदर की उत्पत्ति मानव के साथ–साथ हुआ है। संताल परम्परा के अनुसार मांदर की उत्पत्ति हंस के दो अंडों से हुआ। जब अंडे से दो बच्चे निकले तो अंडा दो टुकड़ों में बंटा। इन टुकड़ों पर चमड़ा मोड़कर नगाड़ा बनाया गया। इसी प्रकार मांदर की उत्पत्ति 'मारड़. बुरू' के डमरू का विकसित रूप माना जाता है।

'मांदर' शब्द सम्भवतः आर्य भाषा का शब्द है। कुछ लोग 'मांदर' शब्द को मृदंग से व्युत्पन्न मानते हैं। परन्तु, यह शब्द आदिवासियों के बीच इतना प्रचलित और लोकप्रिय हुआ कि आदिवासी जनमानस में यह आत्मसात् कर गया। संताली में मांदर को 'तुमदा' कहा जाता है। पारसी भाषा में भी मांदर को तुमदा कहा जाता है। इसका आकार भी उसी प्रकार का है जिस प्रकार संतालों द्वारा व्यवहृत मांदर का है। मुण्डारी भाषा में मांदर को 'दुमड़.' कहते हैं। इसी प्रकार कुड़ुख भाषा में मांदर को 'ख़ेल' नाम से पुकारा जाता है। ख़ेल का अर्थ है जो 'हज्ज' या मिट्टी से बना हो।

'मांदर मिट्टी का बना होता है। यह ढोलक के पूरक के रूप में तैयार किया गया है। इसके सुर बंधे होते हैं। ढोल और नगाड़ा गीत के जिस स्वर–ध्वनि को पूरा नहीं कर पाते, उसे मांदर के द्वारा पूरी की जाती है। इसे लेइ की भांति तैयार किया जाता है और उस लेइ को थापों पर कई परतों में चढ़ाया जाता है। परत चढ़ाते समय थापों को आग से सेंका जाता है। मांदर में ढोल की तरह रिंग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

मांदर बनाने में समय (माह) विशेष का ध्यान रखा जाता है। भादो महीना इसके लिए सर्वोतम समय है। इस महीने में बनाये गये मांदर की बनावट

में ढीलापन कभी नहीं आता तथा इसकी आवाज कभी नहीं दबती। इसके अतिरिक्त अक्टूवर से दिसम्बर माह तक भी निर्माण का उपयुक्त समय माना जा सकता है। यों तो आवश्यकतानुसार किसी भी माह में मांदर तैयार किया जा सकता है।

मांदर के ढाँचे का निर्माण एक विशेष प्रकार की मिट्टी से होता है जिसे 'गेंगेइट' मिट्टी कहते हैं। किसी–किसी क्षेत्र में मांदर चिटा मिट्टी, काली चिटा मिट्टी या लाल चिटा मिट्टी के बने होते हैं। कहीं–कहीं लकड़ी के बने मांदर भी मिलते हैं। इस प्रकार के मांदर के निर्माण में खैर, कटहल और गम्हार लकड़ी को प्राथमिकता दी जाती है।

मांदर की थापों के लिए हनुमान की खाल सर्वोतम मानी जाती है। हनुमान का चमड़ा उपलब्ध नहीं होने पर बकरी या भेड़ के चमड़े का भी व्यवहार किया जाता है। दाहिने थाप में हनुमान या बकरी के चमड़े का भी व्यवहार किया जाता है। लोगों का मानना है कि हनुमान के चमड़े से बने थाप कभी भी नरम नहीं पड़ते और न कभी ढीले होते हैं। यही नहीं, बल्कि इससे मधुर ध्वनि भी निकलती है। मांदर में प्रयुक्त होने वाला फीता (बांधी) गाय, बैल आदि मवेशियों के चमड़े से बनाया जाता है। बाँये थाप पर व्यवहृत किया जाने वाला चमड़ा भी गांय या बैल का रहता है।

सम्पूर्ण छोटानागपुर में आदिवासियों और गैर–आदिवासियों के गाँवों में सर्वाधिक प्रचलित वाद्यों में मांदर है। जनजातियों में हो, मुण्डा, संताल, खड़िया, उराँव आदि का तो अत्यंत लोकप्रिय वाद्य–यंत्र है। परन्तु, उराँव जनजाति विशेष रूप से इसका व्यवहार करती है।

मांदर छोटानागपुर के अतिरिक्त इसके पार्श्ववर्ती प्रदेशों के सीमान्त जिलों में अवस्थित जनजातियों का सर्वश्रेष्ठ और लोकप्रिय वाद्य है। जनजातियों के जीवन में इसका सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व है। करम पर्व में इसका व्यवहार अत्यावश्यक माना जाता है। इसके अतिरिक्त शादी–विवाह के अवसर पर भी मांदर बजाया जाता है।

मांदर का नाम 'मांदर' क्यों पड़ा, यह बताना कठिन है। लेकिन इतना तो मानना ही पड़ेगा कि एक ध्वनि विशेष को उत्पन्न करने में जब ढोलक असमर्थ रहा तो मांदर की आवश्यकता पड़ी। वस्तुतः मांदर ढोल का पूरक है। इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता को आदिवासी एवं गैर–आदिवासी जन–जीवन में किसी प्रकार से कम करके नहीं आंका जा सकता है।

***

कुरमाली संस्कृति

कुरमी जाति एक अखिल भारतीय जाति है। पंजाब से लेकर कन्याकुमारी और गुजरात से लेकर मणिपुर तक इस जाति की शाखायें पन्द्रह सौ से अधिक हे। कुरमी शब्द की उत्पत्ति इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार "कुटुम्बिन" शब्द से हुई है जो कालान्तर में कुटुम्बिन, कुनबी कुरमी हो गया। व्यास स्मृति में 'कुटुम्बिन' शब्द कुरमी के लिये प्रयुक्त हुआ है। कुरमी शब्द कुटुम्ब अर्थात् एक व्यवस्थित परिवार का द्योतक है। कूर्मि क्षत्रिय इतिहास के लेखक द्वय ने कुरमी शब्द की उत्पत्ति वैदिक शब्द कूर्म से माना है। कु+रमी, "कु" का अर्थ धरती और रमी अर्थ रमन करने वाला। अर्थात् भूमि में रमण करने वाला। पृथ्वियाँ रमयीति कुरमिः यानि भूमि में रमन करने वाला कुरमी या कृषक होता है। इस प्रकार कुरमी जाति की संज्ञा कृषि व्यवसाय पर आधृत है।

भारतवर्ष की कुरमी जाति मुख्यतः कृषिजीवी है। झारखण्ड के कुरमियों का मुख्य पेशा भी कृषि है। उत्पत्ति के आधार पर "कुरमी" शब्द जाति सूचक नहीं बल्कि पेशा–बोधक है। परन्तु, जातिसूचक अर्थ कब से गृहीत किया गया है, कहना कठिन है। डा. गुर्रे के मतानुसार झारखण्ड क्षेत्र में बसने वाले कुरमी के आदिम पूर्वज मध्य भारत के छत्तीसगढ़ इलाके से गोंड और कामार जाति के पूर्वजों के दबाव के कारण मध्य भारत से झारखण्ड आये थे। इनकी खेती के साधन हल के आकार–प्रकार, इनकी भाषा, सामाजिक गोत्र और सामाजिक संगठन मध्य भारत की–सी लगती है। यहाँ के कुरमी जाति के पूर्वज दो से तीन हजार वर्ष पूर्व ही झारखण्ड आकर बस होंगे। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इजिप्सियन भाषा में "कुरमी" शब्द का अर्थ होता है– पीकर प्यास बुझाना। स्पष्ट है कि सम्पन्न गृहस्थ कुरमी जाति खाने–पीने की उत्क भट स्वभावों से युक्त थी। बहुत सम्भव है कि इस शब्द का सम्बंध कुरमी जाति से हो। इजिप्सियन भाषा के कुछ अक्षरों का स्वरूप भी वैसा ही है जैसा कि कुरमी जाति के "बाँदना पर्व" के समय आंगन में बनाये गये चौक (अल्पना) का रूप है। झारखण्डी कुरमी का सम्बंध हड़प्पा और मोहन जोदड़ों की सभ्यता से रहा है। वहाँ की चित्रकारी में सीधी लकीरों में बनायी हुई स्त्री–पुरूषों के चित्र अभी भी झारखण्डी कुरमी के दिवालों पर "बाँदना पर्व" के समय देखे जा सकते है। यही नहीं घरों की बनावट, मनुष्य और पशु के अलग–अलग स्थान, पशुओं के पानी पीने की व्यवस्था में भी दिग्दर्शित होते हैं। अपने पशु धन को गर्म धातु से चिन्हित

करना और अपनी फसल और सम्पति की पहचान के लिये दीपावली के अवसर पर अपने पेड़–पौधे पर चुनी का घोल छिड़कना और खेतों में डाली गाड़ना, प्राचीनता का द्योतक है।

झारखण्ड का कुरमी समुदाय वर्ण व्यवस्था या ब्राह्मण धर्म से अछूता रहा है। यही कारण है कि इनमें उपजाति या शाखाएँ (Section or Subsection) नहीं पायी जाती हैं। झारखण्ड की कुरमी जाति केवल कुरमी शब्द से ही जानी जाती हैं। इसमें और कोई जातीय बोधक विभाजन नहीं है। वस्तुतः यहाँ की कुरमी जाति एक पूर्ण जाति है। पूजा अनुष्ठान अपने हाथों सम्पन्न करते हैं। विवाह संस्कार भी अपने हाथों सम्पन्न कराने की परम्परा रही है। परन्तु, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस समाज पर अन्य का प्रभाव नहीं पड़ा है। पारम्परिक तौर पर जो विवाह सम्पन्न होते हैं उसे "हाँड़ी विवाह" कहते है। परन्तु, आज के सम्पन्न धनवान कुरमी "ब्राह्मण विवाह" से परहेज नहीं करते। झारखण्ड के कुरमी मूलतः प्रकृति पूजक है, कुरमाली समुदाय की संस्कृति सामूहिक चेतना, व्यवहार और अनुभवों पर आधारित है। यह संस्कृति ईश्वर प्रदत्त या किसी महापुरूष की देन नहीं है। सामूहिक चेतना और व्यवहार का फल है तथा प्रकृति के जीवन–विषयक अनुभवों का समूह है। इस संस्कृति का मूलाधार प्रकृति है जो आत्मरक्षक और आत्मधारक है। प्रकृति से संघर्ष करने पर जिन वस्तुओं को जीवन रक्षक पाया, उन्हें अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया गया है। वस्तुतः कुरमाली संस्कृति की उत्पत्ति या मान्यता समाज के अनुभव पर आधारित है। परन्तु, कालान्तर में आर्यों के जीवन–पद्धति का प्रभाव इन पर पड़ा।

झारखण्डी कुरमी सभी आनुष्ठानिक कार्य अपने हाथों सम्पन्न करते है। किसी भी पारम्परिक अनुष्ठान में ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं पड़ती। सभी पर्व–त्योहार कुरमाली गीतों से प्रारम्भ होते हैं और अवसान भी गीतों से ही होता है। देवताओं में शिव की उपासना की जाती है जिसे 'बूढ़ाबाबा'' के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रत्येक पीढ़ी में धरमपूजा और 'सुरजाहि' पूजा अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त बसमता, ग्रामथान, जाहेर थान, बड़पहाड़, दुवारसिनी, करमडाली, बानसिन, बाधुत आदि प्राकृतिक उपादानों की पूजा अनिवार्य है। यहाँ के कुरमी जनेऊ धारण नहीं करते। सामाजिक परम्परा के अनुसार विगत दशकों में ब्राह्मण का छुआ हुआ चीज ग्रहण नहीं करते थे। कुरमी समाज की स्त्रियाँ तो आज भी ब्राह्मण का छुआ नहीं खाती हैं। यहाँ के कुरमी गोत्रधारी (Totemistic) हैं जब कि दूसरे जगह के कुरमी सम्भवतः टिटुलर (Titular)

है। झारखण्डी कुरमी के इक्कासी गोत्रों की चर्चा कुरमाली लोकोक्तियों में मिलती हैं। परन्तु, शोध से पता चला इन में एक सौ एक गोत्र हैं। समगोत्रीय विवाह सर्वथा वर्जित है। यहाँ के कुरमियों में तिलक–दहेज की प्रथा बिल्कुल नहीं है। शादी–विवाह में लड़की ढूँढ़ने का रिवाज है तथा लड़की के माता–पिता को कन्यामूल्य दिया जाता हैं जिसे "पण" कहा जाता है। समाज में विधवा–विवाह का प्रचलन है जिसे "साँघा" कहा जाता है। विवाह पूर्व वर का 'आमवृक्ष' और वधू का 'महुआ वृक्ष' से विवाह करने का प्रचलन है और इसे करना अनिवार्य है। झारखण्ड की कुरमाली संस्कृति एक सामाजिक संस्कृति है याने पंचायती संस्कृति जो जीवन को सामाजिक चेतना, व्यवहार और अनुभव पर आधारित है। वस्तुतः कुरमी समाज का संगठन और प्रशासनिक व्यवस्था गणतांत्रिक पद्धति पर आधारित है। किसी वर्ग की गुलामी इनकी संस्कृति के विपरीत है।

झारखण्डी कुरमी– संस्कृति की अन्य विशेषताओं में बाँटकर खाना, स्त्री–पुरूष में समानता (Equality in Male and Female) उन्मुक्त जीवन (Free Life), नृत्यगीत (Singing and Dancing), स्वयंपूजा करना (Self Worshiping), प्रकृति पूजन (Nature Worship), विवाहादि। झारखण्डी संस्कृति के निर्माण में कुरमियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यही कारण है कि डा. डी. एन. साहा ने कुरमियों को झारखण्डी संस्कृति के मुख्य धारक, वाहक और पोषक कहा है। झारखण्डी कुरमी का सामाजिक और राजनीतिक संगठन गणतंत्रीय रहा है। कुरमी जाति बाइस परगने में विभाजित थी। इनके सर्वोच्च सामाजिक संगठन को "बाइसी" कहा जाता है, इसे आधुनिक शब्दों में झारखण्डी कुरमियों का सर्वोच्च न्यायालय कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस संगठन/ संस्था ने कुरमी जाति के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक हितों की यथाशक्ति रक्षा की। साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शक्तियों ने कुरमियों की जातीय पहचान, समाज और संस्कृति को तोड़ने की बहुत कोशिश की। इसके बावजूद आज भी झारखण्ड के कुरमियों का सामाजिक संगठन नहीं टूटा है और न ही संस्कृति नष्ट हुई है। कुरमियों के बाइस परगनों में एक मुखिया होता था जिसे परगनैत, मुखिया या चौधरी कहते थे। आवश्यकतानुसार इनकी बैठकें होती थीं, इस सामाजिक संगठन को "बाइसी कुटुम्ब" कहा जाता था। झारखण्ड के कुरमी, 'महतो' के नाम से जाने जाते हैं, झारखण्ड के जिन क्षेत्रों में इनकी संख्या ज्यादा है वहाँ "महतो" शब्द कुरमी का पर्याय बन गया है यद्यपि 'महतो' शब्द कुरमी का द्योतक नहीं है। साधारणतः यहाँ के कुरमी अपने नाम के अन्त में 'महतो' उपाधि धारण करते हैं, तथा समृद्ध

कुरमियों की उपाधि चौधरी, ओहदार, प्रमाणिक आदि रही है। इस समाज का विस्तार छोटानागपुर, संतालपरगना, उड़ीसा के मयूरभंज, क्योंकर, बोनई, बामड़ा और पश्चिम बंगाल के पुरूलिया, बाकुड़ा मिदनापुर जिले हैं। यही नहीं, असम में भी झारखण्डी कुरमियों की संख्या बहुल है। झारखण्डी कुरमियों की अपनी विशिष्ट पहचान है, अपनी संस्कृति है, अपनी भाषा हैं– (कुरमाली), अपना लोकसाहित्य है, अपने रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन, दर्शन हैं। झारखण्डी कुरमियों की सम्पूर्ण जीवन की झांकी इनके लोकगीत, लोककथाओं, लोकगाथाओं, पहेलियों और कविताओं में प्रतिबिम्बित होती है। लोकगीतों का विपुल भंडार है, प्रत्येक मौसम में अलग–अलग गीत हैं, और मौसम के अनुसार गीतों के राग और ताल बदलते हैं। कुरमाली संस्कृति इनके पर्व–त्योहारों में परिलक्षित होती है। यथा– करम पर्व मूल रूप से कुंवारी लड़कियों का त्योहार है। परन्तु, पुरूष की भी सहभागिता होती है। मूलतः यह शस्योत्सव है। इसमें अच्छी फसल की कामना के साथ साथ संतानोत्पत्ति की कामना की जाती है। इस अवसर पर बहन अपने भाई के हाथों पर तागा बांधती है और कहती है– "अपन करम भायेक धरम" तात्पर्य यह है कि जो भी कर्म बहन करे उसका फल भाई को मिले। वस्तुतः यह उक्ति भाई–बहन के असीम प्यार को दर्शाती है। इसी प्रकार "बाँदना" पर्व यहाँ के कुरमियों का प्रमुख त्योहारों में से एक है। इस पर्व में मवेशियों की पूजा–आराधना की जाती है। क्योंकि पशु कृषक–समाज की हमजोली है। कुरमाली लोकोक्तियों के अनुसार यहाँ के कुरमियों का धर्म ब्राहम्णेत्तर है। कहा गया है– 'कोल, कुरमी, कोड़ा, वेद सासतर छाड़ा' अर्थात् वैदिक देवी–देवताओं का कोई स्थान नहीं है। सच कहा जाये तो कहा जा सकता है कि यहाँ के कुरमियों का कोई स्थायी उपासना स्थल नहीं है। यहाँ के कुरमियों की परम्परा अनूठी है। ऐसा माना गया है कि परम्परा का सम्बन्ध संस्कृति से होता है। संस्कृति में वे सभी तत्त्व अथवा रीति–रिवाज एवं विश्वास आ जाते हैं जो किसी समुदाय के व्यक्तियों के रक्त सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। वस्तुतः संस्कृति सम्पूर्ण समाज के जीवन का ढंग है। इस निष्कर्ष पर तौला जाये तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि झारखण्डी कुरमी/कुरमाली संस्कृति प्रकृति पर आधारित है और यह एक मानवीय संस्कृति है। आज केंद्र सरकार हो या राज्य सरकार, कुछ तथ्यों को कानूनन अवैध घोषित करती है। यथा– दहेज प्रथा, बाल–मजदूरी आदि। इसी तरह विधवा विवाह को भी प्रोत्साहन दे रहीं है जिसको झारखण्डी कुरमी समाज हजारों वर्षो से ढोये चला आ रहा है। इस समाज में अनेकानेक ऐसी परम्परायें हैं जो अन्यों के लिये अनुकरणीय है।

***

पर्व–त्योहारों का सांस्कृतिक मूल्य

यों तो झारखण्ड में ऐसा कोई महीना नहीं, जिसमें कोई न कोई पूजा या त्यौहार न मनाया जाता हो। यहाँ के जन–जीवन में पर्व–त्यौहार, मेला, इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि कहा गया है– 'बारह मासे तेरह परब'। यहाँ का कोई भी अनुष्ठान नृत्य–गीतों के बिना सम्पन्न नहीं होता। नृत्य और गीत यहाँ के लोक–मानस की मूल संस्कृति रही है। ऐसे तो यहाँ अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं, परन्तु, मुख्य पर्व है– सरहूल और करमा। दोनों ही त्यौहार बड़े उमंग और उत्साह के साथ मनाये जाते हैं।

हमारे देश में पेड़–पौधों, पुष्प, पहाड़, नदी, पशु–पक्षी, जानवर, वनादि अन्य प्राकृतिक उपादानों को पूजने की एक सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा रही है। महाकाव्यों और धार्मिक ग्रंथों में वृक्षों को देवी–देवताओं के निवास–स्थान के रूप में स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि आम, महुआ, करम, साल, कदम्ब, बरगद, पीपल, तुलसी, केलादि वृक्षों की पूजा हमारे देश में होती रही है। "सरहूल" पूजा इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। इस पर्व में साल–वृक्ष की पूजा–अर्चना की जाती है।

फूलों का पर्व सरहूल आदिवासियों का एक पवित्र और महान पर्व है। "सरहूल" को उराँव लोग "खद्दी", मुंडा, संताल, हो– "बाहा" या "बा" यानि फूल तथा खड़िया समाज इस पर्व को जिंकोरा नाम से अभिहित करता है। समग्र रूप से सरहूल का तात्पर्य फूलों के त्यौहार से है। इस त्यौहार को "सरना स्थल" में मानने की प्रथा है। "सरना" का शाब्दिक अर्थ एक पेड़ विशेष है जिसे हिन्दी में साल या सखुवा कहा जाता है। कुडुख भाषा में इसे "मक्कानौर", मुंडारी, खड़िया, हो तथा संताली भाषा में "सरजोम" या सरई कहा जाता है। सरना त्यौहार सरना मतालम्बियों का एक पवित्र पर्व है जिसे हिन्दी में "सरहूल", कुड़ुख़ में "खद्दी खेखेल बेंजा" और अन्य आदिवासी समाजों में "बाहा" पर्व कहते हैं। इस पर्व में सरना धर्मावलम्बी प्रकृति को प्रतीक मानकर ईश्वर की आराधना करते हैं।

झारखण्ड में बसने वाली उराँव, मुंडा, खड़िया, संताल, हो आदि आदिम जातियाँ सरहूल का पर्व बड़े उल्लास के साथ मनाती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि पर्व केवल आदिवासियों तक ही सीमित है, बल्कि इस प्रदेश में बसने वाली अन्य जातियों की भी इस पर्व के प्रति अटूट आस्था है। आदिवासियों का

सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकृति–पूजा सरहूल चैत शुक्ल पक्ष तृतीया से प्रारंभ होकर पूरे माह तक विभिन्न गाँवों में मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस महीने में धरती माता का विवाह सूर्य भगवान के साथ होता है। इनके प्रणय–सूत्र में बध जाने से धरती माता सालों भर भूमिपुत्रों को अन्न–जल, फल–फूल तथा जीवन–निर्वाह के विविध आवश्यकताओं को प्रदान करती है। यह पर्व तीन दिनों तक मनाया जाता है। वस्तुतः इस पर्व को मनाने की कोई निश्चित तिथि नहीं होती है। प्रत्येक गाँव में अपनी–अपनी सुविधानुसार अलग–अलग तिथियों में मनाया जाता है। यद्यपि यह त्यौहार मूलतः आदिवासियों का है। फिर भी मनाने की विधि एवं तिथि में पार्थक्य पाया जाता है। उराँव जनजाति यह पर्व या पूजा "सरना–स्थल" पर मनाती है। पूजारी के रूप में पाहन रहता है। उसके साथ में महतो, कीटवार, पानी भरवा आदि रहते हैं। प्रथम दिन मिट्टी के नये घड़े में पानी भरकर बड़ी पवित्रता के साथ रखा जाता है। पूजा स्थल पर पाँच रंगों की पाँच मुर्गियों की बलि चढ़ायी जाती है। बलि चढ़ाई गई मुर्गियों के मांस को अरवा चावल के साथ पका कर पूजन–स्थल पर उपस्थित लोगों के बीच प्रसाद प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है।

इस अवसर पर "हड़िया" का तपावन दिया जाता है तथा पूजा में अर्पित किए गए "हड़िया का सेवन प्रसाद के रूप में किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि पूजा स्थल पर नये घड़े में रखे पानी के घटने–बढ़ने से आने वाले वर्षा का अनुमान लगाया जाता है। यदि घड़ा का पानी सूख जाए तो यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्षा कम होगी। घड़े का पानी ज्यों का त्यों रहता है तो माना जाता है कि अच्छी वर्षा होगी। ऐसा भी विश्वास है कि अगर सरना देवी प्रसन्न हो जाए तो घड़े में रखा पानी बढ़ जाता है। जिस सखुवा को सरना में चढ़ावा दिया गया हो, उसे घर–घर में खोंस दिया जाता है। इसे "फूलखोंसी" कहा जाता है। "फूलखोंसी" की यह परंपरा केवल आदिवासियों तक ही सीमित नहीं बल्कि गाँव में निवास करने वाले विभिन्न जाति और धर्म को मानने वालों को भी आशीर्वाद मिलता है। "फूलखोंसी" की यह परंपरा यहाँ के विभिन्न समुदायों एवं मतालम्बियों को भाई–चारे के सूत्र में बांधता है। सरहूल–पूजा सम्पन्न होने के बाद ही उराँव लोग फल–फूल खाते हैं तथा सरहूल मनाकर ही सेंदरा के लिए निकलते हैं।

संताल लोग यह त्यौहार फागुन महीने में मनाते हैं। संताली में इस पर्व को "बाहा पर्व" कहा जाता है। इस भाषा में बाहा का अर्थ फूल होता है।

आदिकाल से ही संताली समाज में प्रकृति–पूजा का विशेष महत्व और स्थान है। प्रकृति के प्रति इनकी अटूट आस्था और अनन्य प्रेम रहा है। जब सरजोम बाहा (सखुवा फूल) वनों में खिल उठता है तब बाहा पर्व मनाया जाता है। संतालों में बाहा पर्व मनाने का मुख्य उद्देश्य उनका अगला वर्ष सुखद, समृद्धिशाली हो तथा, कृषि और मवेशी निरापद रहें। संतालों का "बाहा पर्व" जाहेरथान में सम्पन्न होता है। संतालों के धार्मिक प्रधान नायके और कुदुम नायके होते हैं। वे ही जाहेरथान में बाहा पूजा सम्पन्न करते है। "बाहा पर्व" के प्रथम दिन गाँव के युवक जाहेरथान जाकर दो छावनी बनाते हैं। एक छावनी में अपनी महान देवी "जाएरा एरा" तथा "माराड़. बुरू" के लिए तथा दूसरी छावनी "गोसाई एरा" के लिए होती है। उसके बाद उस स्थान को गोबर से लीप कर शुद्ध किया जाता है। पूजा–उपासना करने वाले लोग गाँव के बाहर स्नान करने चले जाते हैं। पूजा के दिन लोग पवित्रता के लिए पूर्णतः सजग रहते हैं। पूजा के पूर्व रात्रि को "नृत्य–गृह" में सारी रात नगाड़ा बजाया जाता है। बोंगा (देवता) के साथ सभी लोग वहाँ उपस्थित होते हैं। बाहा पर्व के अवसर पर संताल समाज में अपनी परम्परा पर अटूट विश्वास दृष्टिगोचर होता है। इनकी मान्यता है कि जिस व्यक्ति पर महान देवी "जाएरा एरा" की आत्म सवार होती है। वह पुरूष विशिष्ट रूप से श्रृंगार करता है, आभूषण धारण करता है तथा उसके हाथ में एक झाडू भी होती है। माराड़. बुरू के हाथों में अस्त्र–शस्त्र रहता है, फिर जाहेरथान पहुँचते हैं। गाँव के सभी लोग नाचते–गाते जाहेरथान पहुँचते हैं और अपने साथ लायी गई सारी चीजें पूजन–स्थल पर बिछी चटाई पर रख देते हैं। माराड़. बुरू सखुवे के पेड़ से साल फूल को तोड़ता है। जाएरा एरा उन फूलों को एक नयी टोकरी में रखती है। पूजा में धूप–दीप, सिंदूर, जल, दूब, दी जाती है तथा मुर्गियों की बलि चढ़ायी जाती है। पूजा समाप्ति के बाद उन मुर्गियों के मांस–मिश्रित चावल को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। तदन्तर गाँव के प्रत्येक घर में नायके का पाँव पखारा जाता है। बदले में वह गाँव के सभी लोगों को सखुवा का फूल आशीर्वाद स्वरूप भेंट करता है। इसके बाद होली खेती जाती है। इस होली में केवल पानी का व्यवहार होता है। संताल स्त्रियाँ पानी की होली खेलती हैं। इनका विश्वास है कि पानी की होली खेलने से द्वैष, ईर्ष्या, बैर और वैमनस्य के भाव धुल जाते हैं। ये लोग "बाहा पोरोब" के बाद ही कृषि–कार्य प्रारम्भ करते हैं।

मुंडा समाज में सरहूल पर्व को "बाः पोरोब" की संज्ञा दी गई है। इस त्यौहार को मनाने के पीछे मुंडा समाज में कई किंवदतियाँ प्रचलित हैं ऐसी

मान्यता है कि फूलों से लदे सखुवे के वृक्षों की ओट में छिपकर छोटानागपुर की पहाड़ियों एवं घने जंगलों से अच्छादित होने के कारण दुश्मनों से इसकी रक्षा हुई थी। फलस्वरूप सखुवे के फूलों की पूजा–अर्चना बसन्त–ऋतु से प्रारंभ हुई जो कालान्तर में यह इनका परम्परागत पर्व बन गया। एक जन–श्रुति के यह है कि मुंडा के पूर्वजों के जीवन में आये संकटों और विपत्तियों की घड़ी में सखुवे के पत्तों ने प्राण–रक्षा का सहारा दिया था। इनके पूर्वजों ने अपने दुश्मनों के साथ रण–भूमि में युद्ध करते समय अपने दल के लिए गुप्त पहचान रखी थी, जो सखुवे का फूल था। साल–फूल के कारण ही इनमें एकता कायम रह सकी और इसी "सारजोम बाः" के कारण उन्हें युद्ध में विजयश्री मिली।

एक दूसरी मान्यता यह भी है कि जब पूर्वज आखेट के लिए सघन वन में जाते थे और दिशा भूल जाते थे। मार्ग ढूंढ़ते–ढूंढ़ते शाम हो जाती थी तो थकान मिटाने के लिए "साल पेड़" के नीचे शरण लेते थे। कभी–कभी आंधी तूफान से बचने के लिए इसके खोंड़र में प्रवेश कर जीवन–रक्षा करते थे। फलतः साल वृक्ष को ईश रूप में पूजा–अर्चना की जाने लगी। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार गुप्त पहचान न होने के कारण मुंडाओं के पूर्वज रणभूमि में घमासान युद्ध करते समय होश–हवाश खो बैठते थे। आगे चलकर युद्ध के समय पगड़ी और कमर में सखुआ के फूल खोंसने लगे। फलतः अपने दल के सेना की पहचान होने लगी और लड़ाई में जीत होने लगी। इसके बाद से ही सरहूल मनाया जाने लगा। वस्तुतः विपत्ति के समय "सरई फूल" ने मुंडा सेना की रक्षा की है। इसी की स्मृति में सरहूल मनाने की परिपाटी चल पड़ी।

खड़िया समाज में सरहूल को "जंकोर" तथा हो में "बा" पोरोब यानि फूलों का पर्व कहा जाता है। कमोबेश इन समुदायों में भी किंचित् पार्थक्य के साथ सरहूल पर्व बड़े उमंग और उत्साह के साथ मनाया जाता है। हो समाज में इस पूजा के अवसर पर जो नृत्य प्रस्तुत किया जाता है वह दस तालों पर आधारित है। ये ताल हैं– सार, बा, राचा, जापे, चंगुड़िया, गाडुवा, दँवनड़ेया, गेना, जदूर और केमटा। इन तालों के गीत भी अलग–अलग होते हैं।

सरहूल मनाने के पीछे भी दन्तकथाएँ प्रचलित हैं, परन्तु, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि आदिम जातियों ने पहले–पहले प्रकृति के महत्व को समझा होगा। फलतः उन्होंने प्रकृति के उपादानों के श्रद्धा, भक्ति और आस्था का आलम्ब माना। साल–वृक्ष की जड़ें, लासा, पत्ते, फूल की बड़ी महत्ता है। जड़

और पत्तों से पूजन–सामग्री रखने के लिए दोने बनाये जाते हैं। भात खाने के लिए पत्तल बनाया जाता है। सखुवा की लकड़ियाँ घर बनाने के काम आती हैं। इसकी टहनियाँ दतुवन के काम आती हैं।

"सरहूल" पर्व की आदिवासी समाज में पूजन–विधि में एकरूपता न होते हुए भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि झारखंड के आदिम जातियों में पेड़–पौधे, वृक्ष–लताओं के प्रति अपार श्रद्धा है। साल–वृक्ष संभवतः सर्वाधिक उपयोगी है। यही कारण है कि इस वृक्ष को एक आराध्य देव के रूप प्रतिष्ठित किया गया है। आज पर्यावरण की समस्या विश्व के समक्ष सुरक्षा की भांति मुँह बाये खड़ी है। वातावरण को संतुलित रखने के लिए पेड़–पौधों का संरक्षण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बन गया है। प्रकृति से अलग होकर मानव–जीवन के अस्तित्त्व की कल्पना नहीं की जा सकती। मानव–प्रकृति के अविभाज्य अंग है। श्रृग्वेद में कहा गया है– वृक्षाद् वर्षाति पर्यन्यदन्न सम्भवतः अन्नाद् भवन्ति भूतानि" अर्थात् वृक्ष से वर्षा, वर्षा से अन्न, अन्न से जीवन संभव है। ऐसी भी मान्यता है कि वृक्ष नहीं तो वृष्टि नहीं, वृष्टि नहीं तो सृष्टि नहीं। आदि काल में मानव और प्रकृति के बीच पूर्णतः संतुलित संबंध था। वनों से मानव का इतना तादाम्य और मधुर संबंध रहा कि इसे माँ तक की संज्ञा दी गई है। यही कारण है कि हमारी संस्कृति को "अरण्य" संस्क ति कहा गया है। झारखंडी जन–जीवन में प्रकृति और मानव के इस मधुर संबंध को करमा और सरहूल त्यौहारों में देखा जा सकता है।

अब सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहें तो कहा सजा सकता है कि परंपरा का संबंध संस्कृति से है। संस्कृति के अंतर्गत किसी समुदाय की प्रथा, रीति–रिवाज, सामाजिक जीवन, दैनिक व्यवहार, विश्वास, आस्था, कलादि आते हैं जो किसी समुदाय के व्यक्तियों के रक्त संबंध को अभिव्यक्त करते हैं। वस्तुतः संस्कृति सम्पूर्ण समाज के जीवन का ढंग और सांस्कृतिक एकता का संबंध सामान्य संस्कृति निर्मित से है। यही कारण है कि प्रकृति को ही आराध्य देव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और प्रकृति के महत्त्व को निकट से देखा है, पहचाना है और अनुभव किया है कि इसके बिना मानव का जीना दूभर है। इनके रीति–रिवाजों, पर्व–त्यौहारों के सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि इन्होंने अपनी प्रथाओं, रीति–रिवाजों, व्यवहारों में प्रथम प्रश्रय प्रकृति को ही दिया है। इन त्यौहारों से जीवन को नई दिशा दी जा सकती है, नया आयाम दिया जा

सकता है। किसी भी समुदाय के पुनर्जागरण पर्व–त्यौहारों से ही संभव है। आज हम सरहूल की बात ही लें, तो ज्ञात होगा कि विगत दो दशक पूर्व सराहूल की झांकी में कोई दो–तीन सौ लोगों की भीड़ होती थी। आज लाखों से अधिक की भीड़ होती है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पर्व जिन त्यौहारों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित है, उस समुदाय विशेष में सांस्कृतिक एकता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं महिला सशक्तिकरण की संभावना बढ़ती जाती है। यही नहीं, अपनी भाषा के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है क्योंकि नृत्य के समय जो गीत गाये जाते हैं वे अपनी मातृभाषा के होते हैं। सच कहा जाय तो मानना पड़ेगा कि किसी भी समुदाय की अमूल्य थाती भाषा और संस्कृति होती है। झारखंडी आदिम जातियों की भाषा और संस्कृति उदात्त है। यही कारण है कि यह प्रदेश शोध के लिए विश्व का आकर्षण का केन्द्र बन गया है। कोई भी इनकी संस्कृति से आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता।

अब हम राजनीतिक संदर्भ में देखना चाहें तो बलपूर्वक कहा जा सकता है कि पर्व–त्यौहार राजनीतिक–चेतना जागृत करने में अहम भूमिका निभाते हैं। दक्षिण भारत में आजादी–पूर्व बाल गंगाधर तिलक ने गणेशोत्सव के माध्यम से लोगों को संगठित किया था। आज सरहूल भी आदिम जातियों के बीच जन–चेतना जागृत करने और सांस्कृतिक एकता कायम करने का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इन त्यौहारों से विशेष रूप से महिलाओं में सामाजिक चेतना पैदा करने और संगठित होकर भाषा–संस्कृति के बहुआयामी विकास की सोच पैदा की जा सकती है। राजनीति में किसी जाति या जन समुदाय की भूमिका और उसका प्रभाव अनिवार्य रूप से उस समूह की एकात्मकता पर निर्भर करता है। पर्व–त्यौहार के माध्यम से किसी समुदाय की संगठनात्मक शक्ति का राजनीतिक उपयोग किया जा सकता है। हम विगत दशकों की बात लें तो ज्ञात होता है कि करमा और सरहूल जैसे पर्व–त्यौहारों ने बिखरे आदिवासियों को एक सूत्र में पिरोने का काम किया है। उन की संगठनात्मक शक्ति बढ़ी है। उन्हें स्वयं राजनीतिक दिशा तय करने की चेतना आयी है तथा राजनीतिक अधिकार के प्रति सजग हो रहे हैं। पूर्व में भोले–भाले आदिवासियों को बाहरी तत्त्व अपनी राजनीतिक रोटी सेंकने का सरलतम माध्यम के रूप में उपयोग करते रहे हैं। परन्तु, इन त्यौहारों ने इन्हें संगठित होने का सुअवसर प्रदान किया है। कहा गया है– 'कलियुगे संघे शक्ति।' तो संघ–शक्ति को इन दो पर्वों में अवलोकित किया जा सकता है। परिणामतः आज इनके अनेक जन प्रतिनिधि हैं और राजनीतिक

अधिकार प्रति सचेत होने लगे हैं। जल, जमीन, जंगल के अधिकार की सोच में क्रमशः विकास हुआ है।

पर्व–त्यौहारों के अतिरिक्त मेलादि भी जन–चेतना जाग्रत करने का सशक्त माध्यम है। झारखंडी आदिवासियों के दो प्रसिद्ध मेले हैं–मुड़मा मेला और हिजला मेला। इन मेलों ने भी आदिवासियों का संगठित होने, अपनी परम्परा, रीति–रिवाज को कायम रखने और जीवन को नई दिशा देने में उल्लेखनीय अवसर प्रदान किया है। इन मेलों में आदिवासियों की अनूठी कला का अवलोकन किया जा सकता है।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि पर्व–त्यौहार, मेलादि किसी समुदाय विशेष में संगठित होने, अपनी सांस्कृतिक परम्परा को कायम रखने और जन–मानस में चेतना जगाने का सहज और सरल माध्यम है।

***

कुरमालीक लोकगीत

कुरमाली छोटानागपुरेक राँची जिलाक पूरबबाटे हजारीबाग, गिरिडीह, धानबाइदे कहत। बांगालेक पुरुलिया, मेदनीपुर, मालदा जिलाइं आर उड़िसाक मयूरभंज, क्योंझर, बनई, बामड़ाक लकोउ कुरमाली कहत। निखरावले पावाल जाहेइक जे कुरमाली माहान तीन डुल कवि आहात– लोककवि, जनकवि आर आधुनिक कवि।

लोककवि अराके कहथिन जाराक कनऽ टवा–ठेकान नेखेन। अराक जड़ल गीते काहुँका भेनता नेखेइक। लोकगीत अहे गिलाके कहथिक जे गीत गिला अरिआक–परिआ ले आवते आहेइक। इ गीतगिला साहित सासतरेक कन नियमें बांधल नेखेइक। लोकगीत माहान लकेक पुजा–पासाक, नेग–जग, देवा–भूता, आलन–पालन कर बानार आहेइक। डा. सम्पति आर्यणीइं ठीके कहलाहात "जब से मानव बसने लगा, तभी से उसके मुख से गीतों के बोल फूटने लगे।" एहे माहान लोक कविक आमल बाचिक कराटा आँट हेकेइक।

जनकवि अराके कहल जाइ पारेइक जारा चैतन्य माहापरभूक झारखण्ड माहान आवल परे हेलाहात। इ आमलेक कबिराइं (गीत जड़ेइआ) झूमेइर आर भादरिया गीत बेसी जड़ल आहात। एराक गीते भेनता आहेन आर गीतगिला तुकबन्दी आहेइक। इ आमलेक कविराइं महाभारत, रामायण, पुरान ठीन ले काथा लेइकुहुन गीत जड़ल आहात। एरा हिन्दीक भक्तिकालेक कविक पेरिआक हेइ पारत। एराक गीतेक धंचर लोक–गीत ले भिनु आहेइक। काहुँ–काहुँ इ आमलेक गीत गिलाइं बांगला सबद आइ के भजाल आहेइक।

जे कविगिला आइज ले पचास–साइठ बछर आगु हेल आहात किंबा एखन आहात। तारा के नउतन कवि (आधुनिक) कहल जाइ पारेक। एरा सभे निआरेक गीत जड़ल आहात बा जड़ऽहत। हिआँ आबगा कुरमाली लोकगीतेक बाचिक देवाल जाहेइक:

ढपगीत– ढपगीत अगहन मास ले फागुन तक गावत। इटा बेटाछवाक (पुरुष) दले–बले गावेक गीत हेकेइक। जेसनः–

तीन कुड़ी चउदह हांथी, कउआ लेले जाइ।
के कहे, के सुने के पेतिआइ।

उधवा– उधवा गीत आसिन मास (सेंहरेइ परबेक बाद ले) ले माघ–फागुन तड़िक गावत। इ गीत बेटिछवा आर बेटाछवाइओं (स्त्री–पुरुष) डहर चलेइतके बन–झाड़े आर निचाल जाइगाइं फेदान गुचावेलाइ गावत। इ गीतगिला पुछा–पुछी धंचरेक रहेइकला।

प्रश्न – टिलहाइं चढ़हि हांक पारे, बरऽदि गरखिआहों,
हें हो काकरऽ बिहऽवा ले ले जाइ।

उत्तर – आँखि तरऽ जे फुटऽए बरऽदि गरखिआहों हो,
आपनऽ बिहऽवा ले ले जाइ रे।

सारहुल– सारहुल झारखंडेक लकेक सबले बड़ऽ परब हेकेइक। इ परबटा फागुन मास ले बेइसाख– जेठ तड़िक मानत। हिआँ एकटा गीत देवाल जाहेइक। जेसन :

काहाँ जाहिस रे दादा धइत कइर के
काहाँ जाहिस रे दादा तलंग छाइड़ के।
बुंडू जाहों रे दादा धइत कइर के।
तामाड़ जाहों रे दादा तलंग कइर के।

बिहागीत– इ गीत बिहाक छाकाइं गावत आर बेटिछवाक गीत हेकेइक। **जेसनः**

बाबा काका मरऽ गेले रहे बरऽ देखे
किना लेखे बरऽ देखऽ लेइक गो।
खूंटल खासि बतल मदे माति गेला
बुड़हा बरे मके बिहा देला गो।

डमकच– बर बिहा करे गेल परे बेटिछवाइं बेटाछवाक रुप धरिके गावत आर नाचले जात। जखन तड़िक बर बिहा करि के नि धुरेइ तखन तड़िक गावत। जेसनः

राँची कर उड़ल घाघर, पांचीरे बसल हो
का कहो रे घाघर, पिया नाइ मर घारे।

नटुआ– नटुआ गीत नाचेक गीत (नृत्य गीत) हेकेइक। इटा बीर नाच हेकेइक। नाटुआक हांथे ढाल आर तलवाइर रहेइकला आर गटा गाते रंगीन फीता बांधल रहऽहत। जेसनः

तेल माखा–माखी, हेरेइद माखा–माखी
चइत परब सिराइ गेला हे गंगाधर आइज देखा–देखी।

करमगीत– करम छोटानागपुरेक बड़ऽ परब हेकेइक। भादर मासके एकादसीक दिने करम पूजा करत। इटा भाइ– बहिनेक परब हेकेन। बहिने भाइएक हाथे

सुता (राखी) बांधथिन। हिआँ एकटा करमगीत देखाः

छुटुमुटू दुरुप पात, फूले लदऽ बइद गो
बेटि चलऽली ससुर घार को
आजुका राइत बेटि, रहि बसि लिहा गो
लये देबों पंइरिआ संदेस गो।

सेंहेंरेइ— सेंहरेइ चासाराक सबले बड़ऽ परब। कारतिक मासेक आमासेक राइते जाहलि भूलेक खने, आर बरद खेलावेइत के गावत।

अहि रे, खोजा खोजइते जाइ,
पूछापूछइते जाइ
कति धुरे फालऽना का घार हो।
आनगाहिं आहेइक बाबा,
तुलऽसिका पिंढ़िआ हो
ऊपरे तऽ घुरे हांसा राजा रे।

सेंहरेइ चांचर— एकऽदिन गेले रहों गरऽखि हो, हें हो सियारे चारावे गाय।
दूँदू दूहतऽ, फेचा गावतऽ,
आर गिरगिट दना लेले जाय।

सेंहरेइ डहरवा— एकऽ टेंगे केरा हरिना हो एकऽ टेंगे चढ़लऽ पाहाड़।
कांड़ऽ करऽवा खाए नाभल हो,
पानी पियासे मरि जाइ।

सेंहरेइ बरद खेलान— कति खने रे बरदा रांगा माटि माखले, कतिखने घुरले घारा हो।

कति खने रे बरदा खूंटातरे घुरबे,
कति खने मारबे जुआन।

कुंवारीझुपान— जे बेटिछवाक छवा–पुता नि हेथिन तारा के छवा–पुताक जालाइं झूंपावथिन। इ गीते देवा–भूताक आरदास करत। जेसनः

आउ रे, आउ रे, आउ रे देवऽता, आउ रे माइकर पास
जेहे लेबे सेहे देबों, कुंवारि भराइ दे।
भेड़ा लेबे भेड़ा देबों, पांठा लेबे पांठा देबों
खुखड़ी लेबे खुखड़ी देबों, ताव कुंआरी भराइ दे।

एकर छाड़िकऊ कुरमाली माहान आरऽ लोकगीत आहेइक़। जेसन– गेनागीत, एड़ेइया, छौ नाचगीत, जावा गीत आरऽआरऽ।

* * *

कुरमाली गीत माहान हास्य–व्यंग्य

लोकसाहित्य माहान जन–जीवन कर आबगा पसटऽ छापे नि रहे हेइक बरंच समाजकर हू–ब–हू बरनन रहेहेइक। कबिइं समाज के जेसन देखे पावथिक तेसने अकर रुप के आपन गीते बाखान करत आर निखरावत। एहे माहान पेति मुलुकेक लोकसाहित्य माहान हुआँक समाज कर बरनन पावाइक। आरसी माहान जेसन आपन गड़हन साफा देखाइक तेसने समाज कर रुप साहित्य माहान देखाल जाइ पारेइक। सेइमाहान साहित्य के समाजेक आरसी कहाल गेलाहेइक। लोकसाहित्य माहान गाँवेक बसकइताक आचार–बिचार, रहन–सहन, नेग–चार, नेग–जग, सार–भार, चाइल–चलन कर छवि देखाल जाइ पारेइक।

कुरमाली साहित्य माहान कुरमी समाज बा परिवारेक जीवन कर चितरन आहेइक। इटा जानल काथा जे परिवार माहान माइं–बाप, तिरि–पुरुस, धिया–पुता, भाइ–बहिन, ननद–भउजि, सास–बहु, रहऽहत। लोकसाहित माहान ननद–भउजि, तिरि–पुरूस, देवर–भवजि, साली–भाटु कर हाँसी मजाक कर बखान आहेइक। हाँसी–मजाक हँसनतुवाक संगेइ हेइक।

कुरमाली लोकगीत माहान ननद–भवजि, देवर–भवजि, तिरि–पुरुस कर इरखा मारामारिक बा हाँसी–ठाठाक गीत आहेइक, अकरे मटामटि बरनन करल गेलाहेइकः

कुरमालीक करमगीते भउजि–ननद कर हाँसी–ठाठाः–

बाँका रे बाँका कुरथि
भूँजे बसल छोटकी ननद।
भूंजइते–भूंजइते ननद पड़ि गेल
लाजहुना गेला ससुर घार।

भउजिइं ननद के कहेहेइक जे अकर छटऽ ननद कुरथी भूंजें बसली। कुरथी भूंजते–भूंजते बेचारी पड़ी गेली। जखन ससुर घारेक लग लेगे आवलेथिक तखन लाजे ससुर घार नि गेली। गेलेइ ससुर घारेक लगे पूछेतेलथिक केसे पड़ले। ताकर माने एहे जे ओंय कामे निलुरिया हेकी। एहे निआर कुरमालीक बिहागीत –

हरदी पिसइते बहु घामी गेला
बहु रे बड़ी सुखी भेला।
बहुक माइं के कहि पाठाए देबों
कामिनी मागाए देतोऊ
बिमनी डोलाए देतोऊ।

हिआँ ननदे आपन भउजि के इरखा मारेहेइक जे हेरेइद पिसेइतके माच भउजि घामी गेली। एसन छटऽ–छटऽ काम गिलाइं घामी जाइ ताहेले बड़ऽ कामे किना हेती। ताकर माने भउजि बेड़े सुखी घारेक हेकी चाहे कबऊ काम करल नि हेती। अकर घामल देखी के ननदे कहेहेइक मोंय तर माइं के कहि पाठाय देबेइं। ओंय कमिन आनि देतोऊ आर कामिने बिमनीइ धुँकतोऊ जेसे सुखे रहबे।

कुरमालीक लोकगीते देबरानी–जेठानीक ठनठा–ठनठीक बरनन पावाल जाहेइक। जेसन–डमकच गीते–

गोबर फेकों खांचिइ–खांचिइ
ओंय बसी देखेइस माचिइं।
रंग देखा हेकी मर जेठानी
ढारी देली सुधाइ माड. पानी।

इ गीत टा माहान देवरानीइं जेठानी कर सिकाइत करेइस। देवरानीइं खांचिइं–खांचिइं गोबर फेकेंइस। जेठानी माचिक ऊपरे बसी रहल आहि। कामे एकऽ रिचिक साहाज्ज नि करे हेइक। जखन खायेक बेरा आवतेक तखन सुधाइ माड. पानी खाइ लाइ देतेइक जे बेटीछवाइं कामे साहाज्ज नि करथिन बरचं ठलऽना देथिन। सेइ गिला के रंग देखा कहथिन। एहे निआर–

छोटे–मोटे कुड़िया, पुरुबे दुवारिया
अ–लो दीदी कुबेराइं, आवल तर गोतिया।
ना न धान कुटिहा, खुखड़ी टी मरिहा
अ–लो दीदी, खूसी मने खावाअब तर गोतिया।

देवरानीइं आपन जेठानी के कहे हेइक जे कुबेराइं (असमय) तर गोतिया आवल आहोउ। एक त हामर छटऽमटऽ कुड़िया आही। रहेइक बेड़े असुविधा। साँइझ बेराइं आवले त गोतिया रहबे करत। गोतिया आवल देखी अरा धान कुटे छाड़ि देलथिक। बुझाहेइक अराक हालत 'लुटी आना कुटी–खाना' रहेन। गोतियाक जालाइं खुखड़ी मारलेथिक आर जेठानीक गोतिया के खुसी मने खाबाउलेथिक।

सभेकाइ जानत जे सास–पुतोहूक टाना–टानी चलेन। कनऽ सासे पुतोहू के भालऽ नि बासथिन त कनऽ बहुइं आपन सास के। कामेक बा खायेक खने सासे बहुके खेंचका देथिन, उलऽना देथिन। ताकर चइ पुतोहूइं हिआँ–हुआँ करेइ। कुरमालीक लोकगीते सास–पुतोहूक टाना–टानीक भाभ देखा–

सास राँडी हेकी साढ़िन,
लूटी लेली सूप बाढ़िन,
मर पुरुस हीरा–गंगा हेके गो।
मोयं किना नि खाटम लेखे।

सास बेजाइं निठुर हेकी। पुतोहू के हाथ ले सूप–बढ़िन लूटी लेलेइक। एसन बुझाहेइक जे पतोहूइं काम नि जानेइ। ओंय ससुर घारे खाटे नि पारती। मनेक अकर पुरुस बेजाइं बेस। हिआँ सास आर पुरुस कर साढ़ आर हीरा गंगा संग उपमा देखेइक लाइक।

ऐहे नियार देखाल गेलाहेइक जे कनऽकनऽ पतोहू कर चाइल–चलन बा सभाभ बेस नि रहे हेन। सासेक काथा नि मानत। बरंच सासेक बदनाम करि भूलत। एसने पुतोहू कर हिआँ बरनन आहेइक–

खाय देलेइं भाते भात,
साग देलेइ एक पात।
खाय–दाय गेली चाटानी,
कांदे धनी बाखानी–बखानी।

सासे पुतोहू के सूखले–सूखल भात खाय लाइ देलेइक। खाय–दाय पुतोहू धान घांटे चाटानी गेली आर हुआँ बाखनाइ–बाखनाइ कांदे लागली जे अकर सासे अके पेट भरि माँड़ नि देइक।

कुरमालीक लोकगीत माहांन, ससुर–पुतोहू करऽ इरखा कर बरनन पावल जाहेइक। जेसन–

देखा ससुर तहर गेयान गो,
लुगा मर छिंटी गेली।
चालें बहु बाँही के उलारी,
किनी देवी कदमा साड़ी।

पुतोहूइं ससुर के कहे हेइक– देखा, मर लुगा–फाटा आधड़ हेइके फाटी गेलाही। मनतुक हिंदे तहर दिसा नेखन। आबगा काम पाइटेइ तहर दिसा रहऽहन।

तिरि–पुरुसेक प्रेम, टाना–टानी, टंठा–टंठी, इरखा मारा–मारिक लेइके सभेकाइ जानत। इरखा मारा–मारि गिला सुनेइत के बेड़े मजा। कुरमालीक लोकगीते तिरि–पुरुसेक इरखा मारा–मारिक बरनन देखा–

हार जते कहलेइं न, पिछुवाइड़ जति देल।
मर सैंया निरबुधिया, जगे माति गेल।
माछ मारे कहलेइं न, कादा लेटी लेल।

खुखड़ी मारे कहलेइं न उफड़ि देखाइ देल।

तिरि–पुरुसेक हाँसी–मजाक कर दसर गीत देखा–

खाबाउलेइं आँड़ा पड़ा,
पिटी के भांगल डाँड़ा।
हाय रे, मर किया भेल गति।
बइद के डाकी आनलेइं, असद देल तीन तीसी,
भालऽ हेलेइं देबेइं जड़ा घति।।

एक अन्य गीत में–

छोटे मोटे टोकरा, झांटी एसन धान रे
काहां सूतल मुहजारा, चरे काटल धान रे।

देवर–भवजि कर हँसी–मजाक नामी। सभे लोकसाहित्य माहान देवर–भवजि कर हाँसी–मजाक कर बरनन पावाल जाहेइक। भउजि देवर कर हँसनतुआ। कुरमाली लोकगीत महान देवर–भवजि कर हाँसी–मजाक कर बेजाइं बरनन पावाहेइक।

नीम खेइड़का लिपि–लिपि,
कने लेगे आवेइ रे।
लेगे त आवेइ देबरा रे,
देवरा के खाये देबेइ कुकुर मांस रे।

एक अन्य गीत में–

सासे जे कहली, सभ छागेइर खूंटे
हाय रे, दिसा भूल मर, देबरा के खूंटी देल।

कुरमाली लोकगीत माहान आजी (बड़माइ) नाति–नातिन किमबा आजा (बड़बाप) नाति–नातिन कर हाँसी–मजाक चलेन। कुंरमाली बिहागीते देखा–

आवल सुनदर बर, बसल पीपर तंर,
पीपर बिनी बिछी खाय।
कहु बर बापेक केरा नाम गो
तबे लागें देबों दुवाइंर।

कुरमाली चार माहान समधिन कर समधिन संग हाँसी–मजाक चलेन हिआँ अहे हाँसी–मजाक कर एकटा निमुंद देखा–

खासारी बइहारे गरु चरे लो,
केनिआइ माइ के लेइ गेल माताले लो
आर किना निसा आहे बतले हो।

मटामटि भाभे हामरा कहे पारियों जे कुरमालीइं हास्य–व्यंग्य कर बेजाइं गीत आहेइक।

***

कुरमालीकर लोक–नाट्य

हामराक देसेक भिनु–भिनु जाइगाइं नाच तमासा, रामलीला, रासलीला जातरा, आरऽ आरऽ बेजाइं लोकनाट्य पावाल जाहेइक। मनतुक साहित्यिक नाटक नियार इ गिलाइं कलाक आर अभिनय कर अनुजाइं उत्कृष्ट रूप नि पावाल जाहेइक। तावे इ गिलाके निठार कलाहीन आर अभिनेयताहीन नि कहाल जाइ पारेइक। निसटा कहल जाइक तबे एहे लोकनाटक गिलाकर निखरावल गड़हनटाइ साहित्यिक नाटक हेकेइक। साहित्यिक नाटक कर गुड़ि लोकनाटक हेकेइक, इटाइं कनऽ दवा–भवा नेखेइक।

छोटानागपुर मुलुकटा नाच आर गीतेक तेहें नामी। कनऽ एसन मास नेखेइक जेटाइं कनऽ नि कनऽ नाच वा गीत नि गावत। हियाँ मासेक अनुजाइं नाच आर गीतं आहेइक। सेइ तेहें कहाल गेलाहेइक जे छोटानागपुरी संस्कृति, नाचेक आर गीतेक संस्कृति हेकेइक। गीते आर नाचे हिआंक लगेक जीवन कर छाप देखाल जाइ पारेइक।

एहे नाच गिलाक मइधे किछु नाच एसन आहेइक जे गिला लोकनाट्य कहाल जाइ पारेइक। जेसन छौ–नाच, नटुआनाच, डमकच आर माछानी।

छौ नाच: छौ नाच माहान छौ–नाचेआइं आपन मुँहे मोहड़ा (मुखौटा) पिंधत आर आपन हाव–भाव दारा भाभ परगट करत। इटा माहान कनऽ संवाद नि रहेहेइक। कथावस्तु कर बाचिक गीतेक दारा देवल जाइक। हाथ–गड़ेक इसारा माहान कथोपकथन कर भाभ देखावत। गीतेक दारा दृश्य बदलाल जाइक। छौ–नाच एकटा मौसमी नाच हेकेइक तबे एखन एतना नामी हेइ गेलाहेइक जे बारऽ मास नाचाल जाहेइक। छौ–नाच बीर रसकर नाच हेकेइक। तबे आइज–काइल लगे सिंगार आर करून रस करऽ नाच देखावत। कलाकारे पात्रकर अनुजाइं मोहड़ा पिंधत। छौ–नाच के नाटक कर मूल गड़ा कहे पारिओक।

नटुआ : नटुआ बेजाइं पुरना नांच हेकेइक। मुण्डारी माहान इटा के पाइका नाच कथिक। इटा बीररस कर नाच हेकेइक। नाचेक पहिल गीतेक दाराइं कथावस्तु कर बाचिक देवाइक। गीते दृश्य बदलल जाइक। अभिनय एकटा नटुआइं हेइक चाहे बेसी नटुआइं देखावत। बेसी भागे युद्धकर दृश्य देखावत। नाचेआइं आपन गात के नाना रंगेक लुगा बा फीता बांधिकुहुन साजावथिक। नटुआक हाथे ढाल आर तलवाइर रहेहेन। हाथ गड़ेक इसाराइं युद्धकर भाभ परगट करत। इटाकऊ हामरा लोकनाट्य कहे पारियोक।

डमकच : जखन कनऽ बिहाइं बेटा छवारा बरियात जात तखन घारेक बहु–बेटिराइं नाना रकमेक लुगा पिंधिकहन अभिनय करत। केवे बिहाकर अभिनय करत त केवे कनऽ केहनिक अनुजाइं अभिनय करत। आसल माहान बेटिछवाइं राइतभर हाँसी ठाठा करत। बिहाकर अभिनय माहान कनऽ एकटि बेटिछवा केनिआइ साजेइ त दसरटि बर। बाकी गिलाइं दसर–दसर अभिनय करत। बीच–बीच माहान गीत गावत। गीत माहान खँच कराकरि हेत। इटा के हामरा कथोपकथन शैली कहे पारियोक मनतुक आगु ले कनऽ सटिक काथाक धारिज नि रहे हेइक।

माछानी : माछानी एक रकमेक हास्य लोकनाट्य हेकेइक। एसे त सभे लोकनाट्यकर धेइ मनोरंजन हेकेइक, मनेक माछानी लोकनाट्य माहान हाँसी–ठाठा बेसी भागे रहेइक। एकर कथावस्तु पूछापूछी (प्रश्नोत्तर) शैली माहानं रहे हेइक। गीतेक दारा कथावस्तु कर बाचिक देवाल जाइक। बीच–बीच माहान गद्य–शैली माहान जवाब देवल जाइक। मइधे पात्र बदलत आर दृश्यऊ पालटेइक। कथावस्तु व्यंग्यात्मक शैली माहान रहे हेइक।

उपरे बरनन करल नाचगिला माहान नाट्य तत्त्व पावाल जाहेइक। निसंदेह सेइ माहान इ गिला के देखि के कहाल जाइ पाराइक जे कनऽ आमले छोटानागपुर माहान लोकनाट्य परम्परा रहल हेतेइक। मनेक कालक्रम माहान किछु गिला लुपुत हेले जाहेइक।

लोकनाट्य परिष्कृत नाट्य साहितकर छेउ हेकेइक। काल प्रवाह माहान समाजकर सभ्यता, संस्कृति कर उत्थान–पतन संग एकर भाषा, शैली आर रंगमंचकर साज–समान जेइड़ ले बदलि हेते आहेइक। एहे लोकनाट्यगिला आरसी निआर हेकेइक जेटाइं हामरा आपन एरिआक–पेरिआक सभ्यता आर संस्कृति कर आसल गड़हन देखे पाइओ। भारतीय नाट्य साहित माहान कहाल गेलाहेइक– "लोकनाट्य प्रत्येक देश की परम्परागत संस्कृति का अत्यन्त समृद्ध एवं गहराई तक पहुँचा हुआ अंश होता है।" जाहाँ तड़िक लोकनाट्यक तेहें रंगमंच (आखड़ा) कर जगाड़ आर एखनुक पोसाकेक सवाल आहेइक– लोकनाट्य महान इ जिनिसगिलाक आसा नि कराल जाइ पारेइक। लोकनाट्यक तेहें कनऽ बिसेस साजावल रंगमंच बा दामी पोसाक कर दरकार नेखेइक। एकर रंगमंच हेलेइक आखड़ा। आखड़ाटाके फूल–पात, डाइर आरऽ आरऽ जिनिस देइके साजावथिक। आलक तेहें बाँबरा जरे हेलथिन तबे एखन पेट्रोमेक्स कर जगाड़ रहे हेइक। लोकनाट्यकर अभिनेता मटा–सटा पोसाक पिंधत। रंगमंच खुला

मैदान रहे हेइक। भाखा सरल रहेहेन जेसे देखेआइं खापले बुझे पारता। बिषय–वस्तु रहेहेइक पुरना सभ्यता आर संस्कृति।

लोकनाट्य गाँवेक लगकर गीत संगीत (ताल) आर नाच ले बनल आहेइक। मटामटि भाभे हामरा लोकनाट्य के गीत, ताल, आर नाच कर त्रिवेणी कहे पारिओक। लोकनाट्य कर मूल धेइ गीत, ताल आर नाच माहानेइ आहेइक।

छौ लोकनाट्य कर बाजना हेलेइक– ढोल, नगाड़ा, साहिना। इ बाजागिलाक सबद बेजाइं धूर ले सुनाइक। सेइ सबद सुनिके लग जड़ऽ हेत। आगुक आमले देब–देबी थाने, परब–तिहारे लग एकठीन बाज–बाजना लेइके जड़ऽ हेत आर नाचे–गावे लागत। एहे पूजा–पासाइं, परब–तिहार माहान जे नाचत–गावत, ढंग करत सेटा के लोकनाट्य कहाल जाइ पारेइक। लोकनाट्य कर जनम एहे समय महानेइ हेलाहेइक एसन बुझाल जाहेइक। संस्कृति साहित माहान लोक नाट्यकर कनऽ चरचा नि पावाल जाहेइक। तबे लोकनाट्य कर तत्त्व कर चरचा 'नाट्य शास्त्र' माहान आहेइक। एहे माहान नाट्य शास्त्र लिखेइआ भरतमुनिक लेइके ए. बी. कीथे कहल आहात– 'भरतमुनि ने अपने शास्त्र के आधार में शायद गाँव से सामग्री ली है।'

सेंसे हामरा कहे परियो जे छोटानागपुर माहान लोकनाट्य कर परम्परा एरिआक–पेरिआ ले आहेइक आर एहे लोकनाट्य गिला एखनुक परिष्कृत नाट्य साहितकर छेउ हेकेइक।

***

कुरमाली गीत माहान प्रकृति–चित्रण

साहित माहान प्रकृतिकर बरनन मूले दुइ रकम पावाल जाहेइक– 1. आलम्बन बिभावकर रुप माहान आर 2. उद्दीपन विभावकर रूप माहान। संस्कृत साहित माहान प्रकृतिकर आलम्बन आर उद्दीपन दुइओ रुप पावाल जाहेइक। मनतुक हिन्दीक कविराइं प्रकृति के नायक आर नायिकाक भाभ के बाढ़ावेक तेहें करल आहातधरिभाषा– "साहित्य समाज का दर्पण है।" ताहेले कहाल जाइ पारेइक जे लोकसाहित्य बा लोकगीत समाजेक आरसी हेकेइक। लोकगीत माहानेइ समाज बा जीबनकर आसलि रूप देखे पावाल जाइक पारेइक। लोकगीत माहान गाँवेक लकेक धरम–करम, आचार–बिचार, भय–विश्वास, रीति–नीति, जय–पराजय, हास–परिहास, जीवन–मरन, इतिहास, दर्शन कर बरनन आहेइक।

लोकगीत कबिरा प्राकृतिक कराइं जनम लेत, बाढ़त आर बड़ऽ हेत। अराक लालन–पालन कर साधन प्रकृति हेकेइक। साँचा कहाल जाइक त कहे पारियो जे जनम ले मरन तड़िक लोककबि प्रकृति माहान आसरित रहत ला। सेइ माहान अराक विचार, दर्शन, जियन–मरन माहान प्राकृतिक छाप आहेइक। एराक गीते पाइख–पाखुड़, चेरेइ–चुनगुनि, जीब–जन्तु, फल–डल, गाछ–पालहा, लता–पता, गाड़हा–ढढ़हा, नेदि–नाला, फूल–फर, दिन–मासकर बरनन आहेइक। एराक नेजेइरेक आसे–पासे जे जिनिसटा देखे पावला उ गिलाके आलम्बन मानि कुहुन गीत जड़ल आहात। निसटा काथा एहे जे एरा वास्तविक वस्तुकर बरनन करलाहात, काल्पनिक निहि।

जदि हिन्दी साहितेक परिभाषा– "साहित्य समाज का दर्पण है।" ताहेले कहाल जाइ पारेइक जे लोकसाहित्य बा लोकगीत समाजेक आरसी हेकेइक। लोकगीत माहानेइ समाज बा जीबनकर आसलि रूप देखे पावाल जाइक पारेइक। लोकगीत माहान गाँवेक लकेक धरम–करम, आचार–बिचार, भय–विश्वास, रीति–नीति, जय–पराजय, हास–परिहास, जीवन–मरन, इतिहास, दर्शन कर बरनन आहेइक।

मटामटि भाभे कुरमाली साहित के तीन काल माहान बाखराव जाइ पारेइक – 1. आदिकाल, 2. मध्यकाल, 3. आधुनिक काल।

आदिकाल माहान अहे गीतगिला के राखाल जा पारेइक जे गीत गिलाइं कनऽ भेनता नेखेइक। जेसन– बिहागीत, उधवा गीत, डाँइड़धरा, करम, बाँदना, ढप, सारहुल आरऽ आरऽ।

मध्यकाल माहान उ गीतगिला आवे पारेइक जे गीतगिलाइं भेनता आहेइक आर आइज ले तीन–चाइर सौ बछर आगु जड़ल गेलाहेइक। उ गीत गिलाकर वर्ण्य–विषय आदिकालेक गीत ले भिनु आहेइक।

आधुनिक काल माहान अहे गीतगिला आवे पारेइक जे गीतगिला पुरना परम्पराक अनुजाइं रचल गेलाहेइक मनेक अकर वर्ण्य–विषय बा बिधा भिनु–भिनु आहेइक।

हिआँ कालेक अनुजाइं कुरमालीक गीते प्रकृति–चित्रण कर मटामटि बरनन करल गेलाहेइक। एसे त कुरमाली गीत माहान रिचिक–आधेक सभे मासकर बरनन आहेइक। मनतुक भादर मास आर फागुन चइतेक बसन्त रितु कर बरनन बेसी आहेइक। कुरमालीक आदिकालेक करमगीते प्राकृतिक चित्रणः–

इति इति जावा, किया किया जावा
जागलो माइ, धाना बहु रे।

इ गीतटाइं जावा नेजगल कर बरनन आहेइक। पुरूसे निजेक तिरि के पुछेहेइक – 'इगिला किना–किना कर जावा हेकेइक? तिरिइं जवाब देहेइक –'इगिला फालना–फालना कर जावा हेकेइक आर जेटा बेसी बाढ़ल आहेइक सेटा धान कर जावा हेकेइक।'

'आँवरा रे आँवरा डगिया,
डाले छाड़ि पाते फर धरे।'

इ गीतटा माहान भादर मासे बन–झाड़ेक हेरिहँद कर बरनन आहेइक। प्रकृति वस्तु के प्रतीक मानिकुहुन कबिराइं बिरह कर बरनन करलाहात। उदाहरनेक तेहेंः–

काँसी फूला फूटी गेल,
भादर मास आइ गेल,
कबे आवतऽ हो परभु,
भइया लेगे लाइ।
काँसी फूला झड़ि गेल,
मर आसा टूटी गेल।

भाइ लेगे आवतेइक से आसराइं बहिन आहि। भादर मासे हामर हिआँक बेटि–छवाक तेहें बेड़े महत कर मास हेकेइक। काहे न एहे मासेइ करम

परब मानत। करम परब मूल माहान बेटि–छवा केरे परब हेकेइक। भादर मास आइ गेलेइक। काँसी फूल फुटिकुहुन झड़ि गेलेइक मनेक भाइ एखन तड़िक नि लेगे आवलेइक। बहिनेक आसा–भरसा टुटि गेलेइक। भादर मासेक दिने चाइरो बाटे हेरिहर देखाइक। गाछ–बिरिछ, लता–पता फूले लदबदाइ जाइक। इ करम गीतटाइं केसन बरनन आहेइक–

छुटु–मुटु दुरू पात फूले लदऽबइद गो।
बेटि चलऽलि ससुर घार गो।

कनऽ कनऽ गीते प्रकृति चित्रणेक संगे–संगे दार्शनिक भाभ कर गीत आहेइक। जेसन–

मानुस जनम झींगा फूल रे भाइ,
सांझे फूटे बिहाने झड़ि जाइ
ताव फूल नाचे–हाँसे
पिरथिबिक भालऽ बासे।
जायेक खने काँदेइ नि रे भाइ।

झींगा फूलेक संगे मानुस–जीवन कर तुलना करल गेलाहेइक। झींगा फूल फूटल किछु खनेक परेइ झड़ि जाइक। उटाइं कनऽ बास नि रहे हेइक मनेक देखेइत लकलकिया। लोककबिराइं झींगा फूल के प्रतीक मानिकुहुन गीत जड़न आहात। इटा आवसान ना लागेइक। वास्तव माहान इटा भावुक हिरदय कर उपज हेकेइक। एसन बरनन लोक कबिक दाराइ समभभ आहेइक। लोक कबि सृष्टिक कनऽ जिनिस के तुच्छ बा छटऽ नि मानथिक आर न देखथिक। अरा प्रकृतिक पेति जिनिस माहान मानवीय संवेदना के खजथिक।

कुरमालीक मुक्तक गीत के झींगा फुलिया गीत कहथिक। एसन गीते प्रकृति कर चित्रण आहेइक। जेसन–

काहाँ ही फूटअए, लाल करऽबरि,
काहाँ ही फूटअए, कुंज बिहारी,
डभा–डाडिइं फूटअए, लाल करऽबरि।

इ गीतटा माहान करऽबरि फूल कर सौन्दर्य कर बरनन आहेइक। कुरमालीक बिहागीत माहानऊ प्रकृति कर चित्रण आहेइक। जेसन–

कनऽ आमा हरिहरऽ, कनऽ आमा पियर,

कनऽ आमा सिन्दुर बरन।

एकटा दसर गीते देखाः

झिरी हिरी बहे रे जमुना

एहे नियार आर एकटा दसर बिहागीतेः

बाबा हावा बासाते, फूला झड़ि गेला

हाय रे बनऽ सूइनऽ भेला रे।

हामरा कहे पारियो जे कुरमालीक लोकगीत माहान प्रकृति कर नाना–निआर बरनन आहेइक।

कुरमालीक मध्यकालीन गीत माहान भक्ति–भावना संगे–संगे बिरह कर गीत बेसी भागे आहेइक। इ पेरिआक कबिक गीतकर वर्ण्य–विषय रहलेइन–राधा–कृष्ण कर प्रेम आर लीला। ताकर माने गोपी कर बिरह आर मिलन कर गीत। कबिराइ प्रकृति के उपादन मानिकुहुन बिरह कर बरनन करलाहात। जेसन–

रितु बसन्त भेल, मर पिया काहाँ गेल,

नीम फूलल जइसे, नाना फूल मधुमासे।

कुसुम झंझकार बने, कोयली कुहुके बने।

एक दसर गीत माहान देखाः

बसन्त समये दुति, गृहे नाइ मर ब्रजपति

नाना फूल, फूले मधुमासे,

(सखि गो) अबला धइरज धरि केसे।

नीम, नेवारी, आम, सिरिस कुसुम जाम,

फूलें फले भरि गेला रसे।

एक बाटे बसन्त रितु कर बरनन आहेइक त दसर बाटे बेइरसा रितु माहान प्रकृति कर चित्रण आहेइकः

बूँद सेंवाती बिनु, जइसन चातकी तनु

एहे नियार दसर गीतोऊ प्रकृति चित्रण आहेइकः

दादुरा–दादुरी गावे, नदिया उमड़ि आवे
नागर, खने–खने चमके दामिनी जे।

एकटा दसर गीते प्रकृतिकर चित्रण देखाः

फूटली मालती फूल, चाँपा चूही किया रे
आवल भादर मास, घारे नाइ भर पिया रे।

एहे नियार दसर गीतोऊ प्रकृति चित्रण आहेइकः

बरिसए बुन्दवा गरजे मेघ कारी
कइसे के जाइबो गृहे, राति आँधरी।

इगीतटाइं प्रकृति चित्रण कर संगे–संगे विरहकर बरनन आहेइकः

साम सुन्दर बर, कबे से आउअब मर
(सखिया) पंथ हेरि, रहे दिन ताकिया
ए नब बादरी घोर, घन घटा चहु ओर
(सखिया) बिजली चमके साले छतिया।

इ संदर्भ माहान इ गीतटाकोऊ लेइ पारियोकः

तिथि बदी एकादसी, दस दन्ड भेला निसी
नागर एसन समये अभिसार जे।
चन्द्र किरन देल, तारा से मलिन भेल,
नागर पसु–पक्षी, पहरे पुकार जे।

एहे जे कुरमाली गीत माहान प्रकृति–चित्रण कर परम्परा आवेहेइक सेटा के एखनुक कबिराइं बाजाइ राखलाथिक। कुरमालीक एखनुक भादरिया, झूमेइर आर कबिता माहानऊ प्रकृति कर चित्रण आहेइक। जेसन –

झिर–झिर सांझ बेरिआयं
आकाश पथे
सारि सारि पाखि
उड़िजात निड़ेक दिके। –डा. एन. के. सिंह
कतेक रंगे, केतेक छले,
कल–गान गाहि बहि चलि जाइ नदी।

पलाश फूलेक परस लागि,
चिनलाहौं तोर मुचिक हाँसि।
हरस मनेक फुलझड़ी तोर,
फुटलेइक भाई धधकी फूलें। –डा. एन. के. सिंह

चिल–चिल रौदे
हु–हु बासाते
झर–झर बेरिसायं

धन–बिजुरी,बजर
फसल फला वहत
धरा भरा, बुक भरा। – डा. शशिभूषण महतो

तात् अल धंकाञ
तात् अल धुरात्र
आफर गाड़ी टांइड़–टिकराञ
चैत–बैसाखेक झम–झम रौदे। – लखीकान्त

एहे निआर देखाल जाहेइक जे कुरमालीक आदिकालेक गीत ले आधुनिक गीत माहान प्राकृतिक चित्रण आहेइक। हिआँ सभे गीत कर बरनन सम्भव नेखेइक।

***

कुरमालीक गीते बसंत रितु

मटामटि भाभे कुरमाली साहित के तीन काल माहान बाखरावल जाइ पारेइकः– 1. आदिकाल 2. मध्यकाल आर 3. आधुनिक काल। गिरीश चन्द्र महन्ताइं आपन पथि "झूमर और झूमर देश" माहान कुरमाली साहित के चाइर काले बाखरावलाथिकः– 1. आदिकाल 2. मध्यकाल 3. आधुनिक काल आर 4. हरित काल। कालेक अनुजाइं कुरमाली साहित कर प्रवृत्ति बा वर्ण्य–विषय भिनु–भिनु रहलाहेइक। कुरमालीक आदिकालेक गीते प्रकृतिकर बरनन बेसी आहेइक। मनतुक इ आमलेक गीत गिलाइं प्रकृतिकर उद्दीपन रूप निहिक बराबइर आहेक। एकर परेक आमलेक गीतगिलाइं प्रकृतिकर बरवान हेलाहेइक। सेइ गीते प्रकृति कर बरनन आलम्बन आर उद्दीपन रूपमाहान आहेइक। बिरहिनीकर बिरह के हुचकाउएक तेहें बरसा रितु आर बसंत–रितु कर बखान कराल गेलाहेइक। मध्यकालीन गीत जड़ेइआक गीतेक मूल वर्ण्य–विषय हेलेनः– प्रकृति–चितरन, नायक–नायिकाक बिरह आर मिलन आर राधा–कृष्ण कर पेरेम।

कुरमालीक मध्यकालीन गीते बरसा रितुक आर बसंतरितु कर बेड़े सुघड़ बरनन पावाल जाहेइक। हिआं किछु एसन गीतगिलाक चरचा देवाल जाहेइक करहँ जे गीतगिलाइं बसंत रितु कर बरनन आहेइक। हामर देसे बसंतरितु के रितुराज कहलाथिक। संस्कृत साहित आर हिन्दी माहानउ बसंत रितुकर बेजाइं सुघड़ बरनन आहेइक। कुरमाली साहितऽ एकर ले एकधार नेखेइक। जेसन–

माघ फागुन रितु, बसंत आइला हो
आम मंजरी बनफूल, उधो जी, मोंय बड़ऽ दुखिनी,
कुंजे नेवारी चमपा, धमकी, पाँड़री हो
गांथली बन फूल हाइर।

फागुन मास के हामरा बसंत रितु कहिओक। फागुन–चइते आम गाछे मुकुल लागेइक। बन माहान नेवारी, चमपा, धधकी आर पाँड़रीक फूल फूटेइक। नायिका एसन समये आपन प्रेमीक जालाइं फूलेक हाइर गांथी के अकर आवेक आसराइं बसल आहि। मनतुक अकर प्रेमी नि आउलेइक। बेचारी मन–मारिके आहि। एकर ले सांतापेक आर किना काथा हेतेइक।

एहे निआर बिहा गीत माहानउ बसंत रितुकर बरनन आहेइक। जेसन–

कनऽ आमा हेरिहर
कनऽ आमा पियर
कनऽ आमा सिन्दूरऽ बरन गो।

बसंत रितु माहान गाछ–पालहा, लता–पता, झाड़–जंगल, बेजाइं सुन्दर देखाइक। आम गाछ हेरिहर देखाइक। आम जखन तड़िक नि जवाइक तखन तड़िक हेरिहर देखाइक मनतुक जखन पाकेइक तखन पियर (पीला) देखाइक आर जखन ढेइरे पाकेइक तखन टकटकिया, लाल–लाल सिन्दूर निआर।

फागुन मास ले पारास फूल फूटे लागेइक। उ समये पारास बन गनगानाल आंगरा निआर देखाइक। इ गीतगिला माहान फागुन मास माहान पारास बनेक केसन सुन्दर बरनन आहेइकः–

चइतऽ बइसाखऽ फूटल पारास गो
जही–जही पिया करऽह गरखिया हो।

सभेकाइ जानत जे माघ मासेक सेंस ले गाछेक पालहा–पात झड़े लागेइक आर गाछ–बिरिछ खाड़रा हेइ जाइक। मनतुक फागुन आवते–आवते गाछे हेरिहर पात नेजगेइक आर फूल फुटे लागेइक। धधकी फूल एहे मासे फूटेइक। इ गीतटा माहान कविइं बनकर सोमा धधकी फूल के मानलाहेइक तेसने घार कर सोभा बेटि के।

आगुए कहल गेलाहेइक जे बसंत रितु कर बरनन उद्दीपन रूप माहान हेलाहेइक। जेसन–

रितु बसंत भेल, मोर पिया काहां गेल
कइसे रहबों दिल धरी, नाहि आवल साम बंसीधारी।
नीम फूलल जइसे, नाना फूल मधुमासे।

बसंत रितु आइ गेलाहेइक मनतुक प्रेमिका प्रेमि (पति) घारे नेखेइक। एसन समये ओंय एकाइ केसे रहे पारति। एहे निआर आरऽआरऽ गीते बसंत रितु कर बरनन आहेइक। जेसन–

बसंत समये दूती, गृहे नाइ ब्रजपति
नाना फूल फूले मधुमासे
सुन, सखी गो, अबला धइरज धरि केसे।

नीम, नेवारी आम, सिरिस कुसुम जाम
फूले फले भरि गला रसे।
कुसुम झंझकार बने, कोयली कुहुके
भ्रमरा गुंजरे मधु हेरि गो।
आवल भुवने बसंत काल
i i i
बिरहिनिक बाढ़ल जंजाल।
नव पल्लव कुसुम सुबासे
अलि कुल धाए मधुबासे।
मनोहर भुभन बन
बहे सुगन्ध मन्द समीर
केतकी, धधकी, माधवी, मल्ली
पलासे उलसि फूटल कली।
फूटली माधवी फूला, सुसोभित बनवा
सोभाहीन भेलारे मोर, माधबी जोबनवा।
जारल कोकिल सर, निति जीबनवा।

एहे निआर बेजाइं मध्यकालीन गीत आहेइक जे गिलाइं प्रकृतिकर उपादन के उद्दीपन रूप माहान देखावल गेलाहेइक।

***

सारहुल

छोटानागपुरे परब आर मेलाक बाइढ़ आवते रहे हेइक। एकटा परब सिरालेइक न दसरटाक तेयारि करे लागत। कनऽ एसन मास नेखेइक जे कनऽ नि कनऽ पूजा–पासा बा परब चाहे मेला नि हेउएक। एसन बुझाएक जे हिआंक लकेक चार परब–तिहार लेइकेइ बनल आहेइक। खावा–पिया, नाच–डेग, जिनगानीकर सार। चास–बासेक किछु दिन छाड़िकुहुन सभे मासे पूजा–पासाकरेक चार आहेइक। रपा–ढभाक परे जेसन करम आर ठिक धान झलके लागेइक तखन सेंहरेई (बांदना) परब मानत। एहे निआर फागुन मासे सारहुल पुजा करत। करम, बांदना आर सारहुल हिआंक सबले बड़ऽ परब। छोटानागपुरेक आदि बसकइताञ पराकिरतिकर पुजा बेसी भाभे करत। जेसन– बडऽ पाहाड़, छटऽ पाहाड़, दुवाइर सिनि, कुदरासिनि, करम, गाराम पूजा आरऽ आरऽ।

सारहुल उरांवराकर सबले बड़ऽ परब। मनतुक अबगा उरांवेइ नि मानत बरन छोटानागपुरेक आरऽ आदि बसकइताञऽ हुबे करत। हो राञ इटाके फुल पुजा कथिक त मुड़ाराञ सारहूल। सांउताड़रा करत जाहिरा थाने आर–आर कथिक 'बाहा पुजा'। 'बाहा' कर अरथ हेइग–फुल। सांउताड़राक निआर झारखण्ड मुलूकेक कुरमिराहुं जाहिरा थान माहानेइ पुजा करत।

कुरमाली डाक पुरूसेक एकटा काथा आहेइक—'सरहूल आर जिरहुल।' ताकर माने हेइक–चास सुरू हेउएक आगु सारहुल आर बेइरसा सिराल परे जिरहुल। सारहुल कहलेइ लके बुझत जे बेइरसा सुरू हेतेइक आर जिरहुल कहलेइ खेरेइ– खामारेएक काम–पाइट सुरू हेतेइक।

सारहुल परबे 'सरना' के माइन करथिक। 'सारना' माहान सारेइ गाछेक पुजा करत। इ परब टा फागुन मासेक एकटा सटिक दिने करत। पुजा करेइआ रहेइस गाँवेकर पाहन बा लाया। सारहुल दिन अनगुते लगे आपन–आपन घार–आंगना के गोबर–कांटा देइके साफा करत। नाया घारे–घारे जाइ आर एक–एकटा सारेइ डहुरा घारेक ढाबाइं गंजि देइक। ताकर परे बेटि–छवाञ नाया के गड़ धइके सेइरसा तेल माखि देथिक आर गड़ लागथिक। दान–दखिना माहान चाउर आर पइसा देथिक। घारे–घारे डहुरा गंजल परे गाँवेक लगे नाया के कांधे लेइकुहुन बाज–बाजनाक संगे जाहिरा थान लेगथिक। जाहिरा थान हेलेइक सारहुल पुजाक जाइगा। चेंगना, हेंड़िया आर पीठा हेकेइक पूजाक सार–भार। नायाञ इ गिला के पूजाञ चाढ़वेइ। बांचल जिनिस गुला घुराइ देन। इ गिला परसाद रूपे खात। पुजाक परे नायाञ सभे लकेक काने चाहे डांडाइं एक–एकटा सारेई मुकुल गंजि देन। परसादेक रूपे सभे काके दना माहान

एक–एक डासना मद देन। ताकर परे नाच–डेग सुरू हेइक। दिन–भइर बेटा छवा आर बेटि छवा नाचत–डेगत। गीतेक रसे सभेकाइ माति जात। घारेक चिनता–फिकिर, दुख–दुखवास, छल–परपंच, जाइत–पाइत सभे भुलि जात। हिआंक परब–तिहार, पुजा–पासक, नेग–जग, चारकर खदिनदि करले जानाइक जे आसलि समाजबाद इटाक मइधे झलकेइक। गाँवेक लगेक मने जाइत–पाँइत, बड़ऽ छटऽ, गरीब–अमीरकर कनऽ भेद–भाव नेखेइक। ससऽ गड़ाक आसल सुख हिआंक लगेइ पावत। पाकल आम निआर हिआंक लगेक हिरदए रसे भरल आहेइक। खावा–पिया, नाचा–डेगा जिनगानिकर मूल उदेस। परब माहान लगेक मने किना निआर हुब उठेन सेटा कुरमाली भासाक सारहुल गीते देखा–

काहां जाहिस रे दादा, धइत करि के?
काहां जाहिस रे दादा, तलंग छाड़ि के?
बुंडू जाहों रे दादा, धइत करि के।
तामाड़ जाहों रे दादा, तलंग छाड़ि के।

इ गीतटा माहान टाटका सरल सबद आहेइक। मनेक हिरदएक गुढ़ भाभ भरल आहेइक। एसे त गाँवेक लगे धति नि पिंधत। परब–तिहार बा काहुं गतियारि गेले गाइ धति पिधंत। एक लगे दसर लगके धति पिंधल दखिके पूछे हेइक–ए दादा, आइज तोंय धति काहे पिधल आहिस? आइज तोंय तलंग काहे छाड़ि देलासिक। तलंग हिआंकर पुरना आर बेंस पिंधना हेकेइक। आगुक लगे फुल बिछल तलंग पिधें हेला। अरिआक– परिआक पिंधान हेलेइक तलंग। हिआंक हवा–पानिक अनुजाइं डांड़ा ले ऊपर बाटे लुगा पिंधेइक कनऽ दरकार नि रहेन। इ गीतटाक आगुक दुइ डांइड़ माहान जानाल जाहेइक जे पांचपरगना–सिल्ली, बुन्डू, राहे, तमाड़ आर बारेन्दा नाच डेगेक आखड़ा। गीते आर नाचे हिआंक लग नामकरा।

हिआंक बेटा–छवा जेसन बेड़े रिझकुआड़ तेसने बेटि–छवाऊ। एकटि बेटिछवाञ अकर माइके कहेहेइक "ए माइ, मके पेइरी आनि दे।" नाचते–डेगते पिंधत आभरने धुरा भरि गेलि। मके नवतन पेंइरि आनि दें। जे लील साड़ी पिंधल रहं सेटाऊ घामे भिंजी गेली।
देखा–

दे गो माइ पाता पेंइरि, धुरा माइ लेटि गेलि।
ए गो माइ लिल साड़ी, धामे भिंजी गेलि।।

एहे निआर बेजाइं सारहुल गीत आहेइक। जेटा माहान मानुस–जिनगानिक मूल भाभ लुकाल आहेइक। इ गीत त पुरना, मनेक संदेश नावां–नावां।।

* * *

कुरमाली भासाकर कबि आर साहितकार

कुरमाली भासा झारखण्ड मुलुकेक बेजाइं जाइगाक लके कहत। बिहार माहान छोटानागपुरेक रांची, हजारीबाग, धानबाइद, गिरिडीह आर संथाल–परगना, बांगालेक मेदनीपुर, बांकुड़ा जिलाक अहे जाइगाइं कहत जेटा बिहारेक सीमाना ले सटल आहेइक। उड़ीसाक क्योंझर, बनई, बामड़ा जिला माहानऊ कुरमाली कहत। थिथाइ के पढ़ले जानाल जाहेइक जे कुरमालीक साहित बेजाइं पुरना आर भरल–पूरल आहेइक। एकर आनखाइ लोकगीत, केहनी, जानकेहनी, सलूक (बुढ़हा–पुरखाक काथा) आहेइक। तबे मुखसतऽ साहित बेसी भाभे आर लिखल ब छापावल कम आहेइक। छापल पथिक एखन बेजाइं कटकिना आहेइक।

पढ़े–पढ़ावेक तेहें कुरमाली साहित के तीन काल माहान बांटे पारिओक– आदिकाल, मध्यकाल आर आधुनिक काल। आदिकाल– (अरिआक परिआक आमल)– इ आमऽलेक गीत जड़ेइयाराके लोक कवि कहे पारिओन। एराक गीते कनऽ भेनता नेखेइक। इ गीतगिला कने जड़ल आहे, कबे जड़ल आहे, बाचिक कराटा बेजाइं मसकेइत हेकेइक। इ गीतगिला अरिआक–पारिआ ले लगे गावते आहात। लोकगीत माहान पहिलेक लकेक जीवन–जापन कर बरनन आहेइक। गीत जड़ेइआइं सझऽमझऽ सबद महान निजेक भाभ के परगट करलाथिक। निजेक आंइखे जेटा देखला, मने जेटा जवालेन, सेटा के तखने गीते बांधलेथिक। एहे माहान लोकगीते खेती–बाड़ि, बन–झाड़, पहाड़–टुंगरी, फर–फूल, पसु–पाखि, खायेक–पिंधेक, नेग–जग, पुजा–पासक, देवा–भूता, सुख–दुख, जियन–मरन कर भाभ दागदागा हेइक। एसे साधारन सबद माहान सभे गीत के लोकगीत कथित आर गीत जड़ेइआके लोक कवि। मनतुक अकेइ लोक कवि कहाल जाइ पारेइक जाराक कनऽ टवा–ठेकान नेखेन आर जाराक गीते भेनता नेखेन। एराक बादे जे कबिगिला हेला एरा बेसी भागे झूमेइर आर भादरिया गीत जड़ल आहात आर एराक गीते भेनता आहेइक। एरा के हामरा जन कवि कहे पारिओन। आइज ले किछु दिन आगु जे कवि हेला। एरा के नांवा बा आधुनिक कबि कहाल जाइ पारेइक।

पढ़ले पावाल जाहेइक जे दुनिया माहान दुइ रकमेक साहित आहेइक– लोक साहित आर शिष्ट साहित। जदि सांचा कहाल जाइक ताहेले माने हेति जे लोक साहितटाइं आगुबाटे जाइके शिष्ट साहित हेइक। उचरेन तऽ लोक साहिते हेकेइक अकर बादे जखन लोकसाहित जवाइ जाइक तखन उटा के शिष्ट साहित कहथिक। इ ससऽगड़ाक कनऽ एसन आदिम जाइत नेखत जाराक

लोकगीत नेखेइन। कुरमीराऊ हिंयाक आदि बसकइताक मइधे हेकत। एहे माहान एराक नेग–जग, आचार–बिचार, आदिवासी संग मिलेन। कुरमाली माहान, लोकगीत, लोककथा, पहेली, मुहाबराक भांड़ार आहेइक। लोकगीत माहान उधवा, ढप, बिहा, सरहूल, नटुआ, डांइढ़धरा, करम, एढ़ेइया, सेंहरेई, कुंआरि–झुपान आरऽआरऽ गीतगिला आवे पारेइक। तबे ढेइर पुरना गीतगिला सिराले जाहेइक। सेंइतेक दरकार आहेइक। जदि हामरा एखन सतर ना हियो तबे आर किछु दिन बादे लोकगीत गिला हेनवा–बेनवा हेइ जातेइक।

मध्यकालः– इ आमलेक कबिराके हामरा हिन्दी साहितेक कबि नियार भक्तिकालीन कबि कहे पारिओन। काहे न इ आमऽलेक जेतना गीत आहेइक, बेसी भागे वैष्णव विचारधारा लेइकुहुन आहेइक। बुझाहेइक इ गीतागिला चैतन्य महाप्रभु झारखण्ड मुलुके आवल परेक गीत हेकेइक। इ गीते राधाकृष्ण कर पेरेम, कृष्णकर लीला, गोपिक विरह, आर रामायनेक काथा आहेइक। इ आमलेक कबि लोककबि पांजे नि चलला बरन दसर डहरे चलला। एसे तऽ कुरमाली साहितकर काल–विभाजन कराटा ठाठा नहेइक। तावे मटामटि भाभे एकटा डांइड़ देवाल जाहेइक। इ आमलेक कबिक गीते भेनता आहेइक आर बेसी भागे एरा झूमेइर आर भादरिया गीत जड़ल आहात। कुरमाली भासाकर मध्यकालेक पहिल कबि कने हेलाक। इटा कहाटा बेजाञ आंट। तबे 14वीं सताब्दीक बड़ू चण्डीदासेक पथिइं कुरमालीक धंचर पावाल जाहेइक। एकर परे आठारवीं सदी माहान ईसाई पादरिइं 'बेसहाल मार्क के बनावल' नामेक कुरमाली भासा माहान पथि छापल रहत। 18वीं सदी माहानेइ बिनन्द सिंह, गौरांगिया आरऽआर कबि हेला। बिनन्द सिंह के कुरमालीक सूर कहाल जाइ पारेक। सिलीक राजा साहेब बिनन्द सिंह आर गौरांगियाक गीत के 'आदिझूमर संगीत' नामे छापाउलाथिक। 19वीं सदी माहान हेला– दीनातन्तु राय, शिरोमणि, हाजरा, रामकृष्ण, नरोत्तमा, माली पारामनिक, पीताम्बर, त्रैलोक्यनाथ, कृष्णचन्द्र राउल, वृन्दावन मुखी, आजमत जोलहा आरऽ आरऽ। 20वीं सदीकर पहिल–पहिल जे कविगिला हेला अकर नाम हेलेन– कमला झरिया, चैतन्य कर्मकार बिपिन बिहारी मुखी, शशांक, हाड़ीराम, द्विज डिमा, उदय, दुर्योधना, सतुदास, भोलानाथ कालिन्दी, रसराज, जादूराय, योगेश्वर, मण्डल, कान्हाई सिंह, शंकर, रवेपा, बोधा। आधुनिक कबि– जे कबिगिला आइज ले पचास–साइठ बछर आगु हेला अराके आधुनिक कवि माहान राखाल जाइ पारेइक। काहे न एराक गीते सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, देशभक्तिक भाभ आहेइन। एरा जीवनेक सभे छेतरेक गीत जड़ल आहात। बड़ऽ कबि हेला– सृष्टिधर, महिपाल, भभप्रीता, बुधू, सीदाम सरदुआ,

बिष्टु, महीम, बानेश्वर आरऽआर। एहे आमलेइ कुरमाली माहान जारा गीत जड़ऽहत बा एखन जियंत आहात, अरा हेला– लखीकान्त, बसंत, शशिकर, जगदीश चांद, नालिनी रंजन, अनन्त, केशव, आनन्द खूटदार, काशीनाथ नापित, नसीरूद्दीन, आर मान सिंह। एरा कुरमाली माहान उथाथाहि लिखते आहात आर कुरमाली साहित के आगु बाटे बाढ़ाउएक जालाइं लागल आहात।

जदि सांचा कहल जाइक ताहेले हामराके हुमान करे हेति जे कुरमाली गद्य साहितेक आनखाइ टान आहेइक। तबे एखन झारखण्ड मुलुकेक सभे बाटेक कबिइं अपन–अपन भासा माहान गद्य रचना करे लगल आहात। साहितके भिनु–भिनु बिधा माहान लिखहत। जेसन– नाटक, केहनी, एकांकी, उपन्यास, निबन्ध, व्याकरण, शब्द–कोश। गइद साहितेक मूल लिखेइया हेला– लखीकान्त, बसंत कुमार मेहता, आनन्द खूटंदार, केशव चन्द्र महतो, कालीपदो महतो, गणेशराम सिंहा, पार्वती चरण महतो, गिरिशचन्द्र महन्ता, डा. एच. एन. सिंह, गोपालचन्द्र मंडल।

सभे लिखइआक लिखल पथिगिलाक हिंआ उल्लेख कराटा समभभ नहेइक। सेइ माहान मटामटि भाभे एहे पथिकगिलाक बाचिक देवाल जाहेक जे गिला छापाल आहेइक–

'कुरमाली भाषा तत्त्व'– खुदिराम महतो, 'ना धरे आंखि जल आंखि पाते', देवकी नन्दन प्रसाद, 'आदि झूमर संगीत'– राजा उपेन्द्रनाथ सिंहदेव, 'करम गीत'– बुधु महतो, 'नेठापाला'– निरंजन महतो, 'कपिला मंगल'– राजेन्द्र प्रसाद महतो। 'झूमर संगीत, टुसू संगीत, पांता संगीत'– रामेश्वर महतो। 'पथें चलाक लेहा नमस्कार'– डा. किशोर सिंह। 'कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियां'– एच. एन. सिंह। 'भात–भगवान, मानभूमेक धंधौरा, साधन–संगीत'– सृष्टिधर सिंह 'केटिआर'।

***

कुरमालीक गीते अलंकार

मटामटि भाभे कहत जे जनपदीय भाखा माहान छन्द आर अलंकार नेखेइक। हेइ पारेइक लोककविक छन्द अलंकार गेयान नि रहेइन। मनतुक कुरमालीक मध्यकालेक कविक गीते काहुं–काहुं अलंकार पावाल जाहेइक। छन्देक लेइके कहाल जाइ पारेइक जे कुरमालीक आपन छन्द आहेइक। जेसन– ढपगीत, उधवा, टुसू गीत, सरहूल, गेना, डांइड़धरा, करम, बांदना, चांचर, एढ़ेइया, भादरिया, झूमेइर, आरऽ आरऽ। इ गीतगिलाक आपन–आपन सुर, ताल, लय आर बाजना आहेइक आर मासेक अनुजाइं गावाल जाइक। सेइतेहें इ गिलाके भिनु–भिनु छन्द कहाल जाइ पारेक।

कुरमालीक लोकगीते त अलंकार निहिक बराबइर आहेइक। तबे मध्य कालेक गीत माहान टवा करले अलंकार पावाल जाहेइक। एहे निआर एखनुक कविइं आपन गीते बा कबिताइं अलंकार कर बेबहार करल आहात। हिआं किछु अलंकार कर बाचिक देवाल जाहेइकः

अलंकार कर माने हेइक– गहना बा आभरन। आभरन पिंधावले बेटि–छवा जेसन सुघड़ देखात तेसने भाखा माहान अलंकार हेले सबद आर अरथ सुघड़ आर सरस बनेइक। हियाँ उदाहरनेक रूप माहान किछु अलंकार देवाल जाहेइकः

अनुप्रास– आखड़ेक बराबरी के अनुप्रास कहथिक। आचार्य मम्मटे आपन 'काव्य–प्रकाश' पथि माहान लिखल आहात– ''वर्ण साम्यमनुप्रासः।'' ताकर माने जाहाँ एकेटि आखड़ बेरि–बेरि आवेइ ताके अनुप्रास अलंकार कहथिक। जेसन– सामऽ सबद सुनि, चमकि उठलि धनि–भवप्रीता। पापिया पुकारि पिया, हुदकि उठतऽ जिआ– दुर्योधना। अनुप्रास अलंकार पांच रकम आहेइक– 1. छेकानुप्रास 2. वृत्यनुप्रास 3. लाटानुप्रास 4. श्रुत्यानुप्रास 5. अन्त्यानुप्रास।

1. छेकानुप्रासः– जाहां एकटि आखड़ चाहे बेजाइं आखड़ के आबगा एक बार दहरावल जाइक ताके छेकानुप्रास कहथिक। जेसनः–

हरि–हेरी प्यारी रूप, चम्पक रंग कत —गौरांगिया।

हिआं पेति आखड़ कर एके निआर आर बारे के दहरावल गेलाहेइक। एहे निआर एकर आरऽ उदाहरन देवाल जाइ पारेइक–

अधर मधुर हांसि। —रामक भट

भेसऽ भूसनऽ भेला अकारन। —बिनन्दिया
हरि हेरी भेला हारा, कुंज निकुंज सारा। —बिनंदिया

2. वृत्यनुप्रासः— एकटि आखड़ बा बेजाइं आखड़ कर दुइ बार ले बेसि दहरावल जाइक ताके वृत्यानुप्रास कहथिक। जेसन—

सखि सुनि—सुनि हिया सालतऽ। —बिनन्दिया
सखिया, मोहन मन मोहि लेल जे। —बिनन्दिया

इ वाक्य गिलाइं बारेके 'स' आर 'म' आखड़ के दहरावल गेलाहइक।

3. अन्त्यनुप्रासः— कनऽ छन्दकर चरणेक आखिर माहान जे आखड़गिला समान रहऽहत ताके अन्त्यानुप्रास कहथिक। जेसन—

भूसा कुटइते नर, बिसरलाइं हरिहर।

वीप्सा— मनेक कनऽ भाभ (आदर, डर, आश्चर्य, घृणा) के परगट हांतिर जे सबद टाके दह—रावल जाइक ताके वीप्सा अलंकार कहथिक। जेसन—

भांगे आंखि ढुलु—ढुलु,
नाचे भूता हांसे खलु—खलु। —भवप्रीता

श्लेषः— श्लेष सबद कर माने हेइक मेसावल

चाहे सरल कहेक माने हेलेइक जे सबदटा माहान कइ एकटा अरथ मेसल बा सटल आहेइक। जेसन—

सपन सगुन देखि, हरखि सखि।
दूती से कहतऽ बतिया, फरकि उठल बाम आंखिया।
—भवप्रीता

हिआं 'सगुन' सबदटा माहान दुइटा अरथ लुकाल आहेइक। सगुन माने सुभ लख्छन आर श्रीकृष्ण।

ऊपरे जे अलंकार गिलाक बाचिक देवाल गेलाहेइक। सेगिला अर्थालंकर कर भेद रहेइक। हियां दुइ एकटा अर्थालंकार करऽ उदाहरन देवाल जाहेइक।

उपमाः— उपमा कर अरथ हेकेइक— मापा। कनऽ जिनिस के दसर जिनिस के पासे राखि के अकर बराबरी करा। कुरमाली गीते बेजाइं उपमा अलंकार आहेइक। जेसन—

पिया भेला डुमरिका कली। —बिनन्दिया

हंसऽ गमनऽ जिनी चाल चालाइं राधिका। —बिनन्दिया

न आवल माधव से चांद बदनवां। —तुलसी

स्यामल बरन, जिनि नवघन।

स्याम बरन तनु जेसन उदित भानु। —बिनन्दिया

कमलऽ फूले जइसे कालिया नागर। —बिनन्दिया

रूपकः— एकटा जिनिस कर संगे दसर जिनिस के एसन राखा जे दुइयो टाइ कनऽ फरक नि जानाल जाइक ताकर माने हेइक दुइयो टाइं कनऽ फरक नेखेइक। जेसनः—

मुखऽ पूर्णऽ ससि
अधर मधुर हांसि। —रामकृष्ण

हियां मुहे आर चन्द्रमाइं कनऽ फरक नेखेइक।

विरोधाभास— दुइटा जिनिसे विरोध नि रहेइक—

तबऊ जखन विरोध कर आभास पावाइक। सेटा के विरोधाभास अलंकार कहथिन। जेसन—

नेदि नालात्र दुधके धारत्र बहेइक काजर पानी। —केशव

हिआं जाइगाक टाने आरऽ अलंकार गिलाक बाचिक नि देवाल जाहेइक।

***

चिड़िका

चिड़िका आगुक मानभूम जिलाक आर एखनुक पुरूलिया जिला माहान आहेइक। पुरूलिया सहर ले (दस मील) पांच–छ कस पछिमे आर चास मोड़ ले दखिन–पूरबे एक डेढ़ कस धुरे आहेइक। चिड़िका के लगे जानथिक शिब–बुढ़ा बाबाक तेहें। एसे त झारखण्ड मुलुके सबरनाखा नेदिक आर कांसाइ नेदिक धारे बेजाञ देउल आहात। इ देउल मंदिर के देखले जानाल जाहेइक जे हिआंक लगरा शिवबाबाक भक्त रहत आर एखनऽ एराक आसल देपता हेलेन शिब। पुरूलिया जिलाञ कांसाइ नेदिक धारे आन जाइगा टाटाड़ी, देउलघाटा, बुधपुर, चिड़का, देउल टाँइड़, जलेश्वर, हारूप, पाइकबिड़रा, आरऽ आरऽ। एहे निआर सबरनाखाक नेदिक धारे आहात देइल बेड़ा माहान। देइलघाटाक शिव मंदिर गिला बुझाहेइक चन्द्रगुप्त द्वितीयकर आमले बनल आहेइक। एकटा तिरिज करेक काथा जे जाहां–जांहा सबरनाखा आर कांसाइ नेदि अर्द्धचद्रकार (हसुंआ निआर) आहेइक हुआं–हुआं देउलकर थापना करल गेलाहेइक। इ मनदिर गिलाकर एक–एकटा बिसेसता आहेइक जे बिना गाराइ एकटा पाखनेक ऊपर दसर पाखना के राखिकुहुन बनावल आहात। देइलघाटाक मंदिरगिला बड़ऽ बड़ऽ इटाक बनावल हेकेइक जे ईंटागिलाइं नालन्दा विश्वविद्यालय बनावल रहेइक। लिंग पुजा ससऽगड़ाक सबले पुरना पुजा। इटा के पुजाक उचरेइन–कहाल जाइ पारेइक। झारखण्ड मुलुके हाजारों– हजार शिवलिंग हिंआ–हुआं गाड़ल आहात। पेति गाँवे शिव मंदिर देखाल जाहेइक। लकेक अनुमान जे बेजाञगिला अढ़ाइ हाजार बछर ले सात हजार बछर पुराना हेकत। इ मंदिरगिला दाराबिड़ धरनेक आहेइक। आइज ले आढ़ाई हाजार बछर आगु जैन धरम कर हिआं परचार हेले रहेइक। सेइ तेहें झारखण्ड माहान बेजाइं जाइगाइं जैन कर मेढ़ आर मंदिर आहेइक। हिआं पेति पांच कस माहान जैन मंदिर आहेइक। जे गाँवे शिव मंदिर नेखेइक सेइ गाँवटा के अपवित्र मानथिक। झारखण्डेक लकेक यद्यपि वैष्णव करऽ पुजाकरत मनतुक एराक मुल देवता हेलेन शिव। एहे निआर बेजाइं दिन ले जैन आर वैष्णव पासा–पासी रहे हेला। सेई तेहें शिव जैन करऽ शिव बनलाक।

चिड़िका शिवेक मइध एकटा सतिया शिव हेके। हिआं बेजाञ धुरेक–धुरेक लग आवत आर पानी ढार देथिक। बेजाञ लगे मानसिक राखत आर मनेक बानछा पूरा हेल परे पांठा बलि देथिक। रग–दुख जर–बेजार ले भालऽ हेवेक

जालात्र हुआं जाइके धारना देथिक। बांझा–बांझी लग छउआ–पुताक जालात्र मानसिक राखत। एहे नियार हामरा देखियोला जे झारखण्डेक लगेक मूल देपता हेलन शिव।

चिड़िकाक लेइके एकटा डाक पुरूषेक काथा आहेइक– तीनसऽ बछर आगुक काथा। एकटा गाँव रहेक– नाम हेलेइक चिड़का। तखन 'चिड़काक' चाइरऽ गिरदाइं बड़ऽ बन रहेइक। गाँवटाइं मटेइ कइटा घार रहेइक। अहे गाँवे परमानन्द नामेक एकटा लग रहे हेलाक। ओंय बहुत बड़ भक्त रहे। जाइते ओंय रहे कुरमी आर गाँवेकर मातबर। खाएक–पियेक कनऽ कमी नि रहेइक। धान–धुरे घार–भरल रहेइक। घारे गरू–काड़ा भरल रथिक। तीनटा गरखिया राखल रहेन। अकर गरूक मइधे एकटी भालऽ गाय रहि। ऊटी केरिया रहि। ओंय एक हांड़ि दूध देइ हेलेइक। मनतुक हटाइत ऊ गायटीक दूध घटि गेलेइक। परमानन्दे अकर गरखिया के डाकलेन आर कहलेन जे किनालाइ गायटीक दूध कमलेइक। गरखियाइ कहलेथिक हामरा कनऽ नि जानियो। आछा, काइल हामरा इटाक टआ करब जे काहे दूध कमलेइक। घुरि दिन बिहानेइ उठि के गरखिआरा गाय–गरू लेइके बन चारावे लाइ गेला। सभे गरू एकठिन चरत आर अहे गायटी आन जाइगा चरेलाइ जाइ। अरा लुकाइ के देखे लागलेथिक। एकटा झुंड पासे जाइके ऊ गायटी डांड़ालि। अकर थन ले आपने दूध गिरे लागलेइक। गरगियारा देखिके हायटाटका हेइ गेला जे जाकर दूध आपने गिरेहेइक। ताकर परे अरा दउड़ा–दउड़ि घार गेला। आपन गला के सभे काथा कहि देलथिक। माहतइं इ काथा सुनिके हकचकाइ गेलाक आर अराके कहलेइन तरा किना काथा कहियाला। काइल मोंय तराक संग जाम आर देखम जे इ काथाटा सांचा न मिछा। जदि तराक काथाटा सांचा हेइक ताहेले मोंय तराके बकसिस देबन। ओंय मने–मने भगवान कर सेवरन करे लागल। घुरि दिन माहतो अकर गरखिया संग वन गेलाक। देखलेथिक जे ऊ गायटी के आगु जे झुड़टा बाटे जाइ हेलि सेइ बाटेइ गेलि। अरा देखलेथिक जे गायटीक थन ले आपने दूध गिरे लागलेइक। सेटा देखि के परमानन्द कांपे लागलाग। ओंय भूंइए उलटी देलेइक। उठिकुहुन घार गेलाक आर एकटा टांगा लेइक आवलाक आर झूंड (गाजाड़) टाके काटे लागलेथिक। कांटते–कांटते शिवेक लिंग देखे पावलाक। इटा देखि कुहुन परमानन्द रीझे बेयाकुल हेइ गेलाक। गरूटीके लमबितान हेइके गड़लागलेइक आर कहलेइक– कहि दे, इटा कन देपता हेके? कहलेइक मर संग छलऽना ना करे। सत काथाटा मके कहि दे। ताकर परे घार गेलाक आर आपन बहु के इ काथाटा कहि देलेइक। अकर बहु इ काथा सुनि के हकचकाइ गेली।

अकर बहुइं इ काथाटा सुनि निजेक पुरूष के कहे लागलेइक– चाल, बन जाब। हेइ पारेक इटा कनऽ देपता हेले ना हेल गायटीञ केसे दूध देतेइक। टला–पाराक लगके डाकलेथिन आर बन गेला। परमानन्दे अकर बहु के पाटेक साड़ि पिंधालाइ कहलेइक आर मने–मने आरदास कर ले जाइं। हेलेञ हामरा गति पाउब। अरा टाटका बका रहत। नऽ पढ़ल लिखल रहत आर न बेद सासतरेक काथाइ सुनल रहत। मनतुक दिओ पारानी एकदम सीधा–सापटा रहत। हुंआ पहुंचि के माहतइं लग के झाड़–झुड़ काटे कहलेन। शिव बाबा के आनलेथिक। अकर तेहें एकटा घार बनाउला आर गोबर कांटा देइके साफ करलेथिक। तिरिपुरूषे घारे अकर आरदास करे लागला। तुति–भक्तिइं दियो लग मतऽ हेइ गेला। बाकि लग घारेक बाहिरे रहत। अरा नि जानत जे इटा कन देपता हेके। शिबे अराके देखा देलेन आर कहलेन, मोंय तराक उधारेक जालाइं चिड़काइं उठल आहों। जेइं मर पूजा–पाठ, सेवरन, आर आरदास करत ताकर कबऊ कनऽक अभाभ नि रहतेइक। काशी माहान शिव बाबाके विश्वनाथ कथिक आर हिंआ गौरीनाथ।

एतना टा कहिके शिव बुढ़हा बाबा लुपतु हेइ गेलाक। दियो तिरि–पुरूषेक आंइख लर छापा–छपाइ गेलेन–आर कहे लागला– बाबा, तोंय काहां गेले। एहे सभ बाखनाउते– बाखानाउते शिवेक काथा मने हेलेन। दियो लग उठला आर आपन घार चलि गेला। सभेकाइ अराक संग शिव बुढ़हा बाबाक जयजयकार करले घार घुरि आवला।

* * *

कुरमाली गीत माहान भाव–सौन्दर्य

कनऽ लोकगीत कर मूल्यांकन करेक खने अकर दुइ धरन माहान विचार कराल जाइ पारेइक–भावपक्ष आर कला पक्ष। भावपक्ष कर मइधे रसपरिपाक और भाव सौन्दर्य आवे पारेइक। कलापक्ष कर मइधे अलंकार, तुक, लय, छन्द–विधान आर भासा। कुरमाली लोकगीत माहान बेसी भागे प्रकृति चित्रण, सिंगार आर करूणरस कर गीत आहेइक। वीर, वात्सल्य कर निमुदं पावाल जाहेइक मनेक वीभत्स, रौद्र आर भयानक रसकर बेजाइं टान आहेइक।

इटा जानाल काथा जे गाँवेक बसकइतारा निठार सीधा– सापटा हेकत। अराक सभाभ सरल। मनतुक कनऽ छल–प्रपंच नेहि। जेसन सभाभ सरल तेसने मन आर काथा बातराव साफा। एराक मनकर भाभ गीतेक दारांइ परगट हेइक। गीत माहान न कनऽ अलंकार आर न काथाइ कनऽ घूर पेंच। गीत माहाने भाव–सौन्दर्य प्रकट हेइक। गीतकर एक–एक सबद किमबा डॉइड़ माहान भाभ देखेइक लाइक। गीत माहान रस–परकास करेक बेजाइं भाम रहे हेइक। हियां किछु गीतकर उदाहरण देवाल जाहेइकः

बाघ मुड़िक पाहाड़े, हाड़ार हुडूर पाखना,
कांहा जाइस रे नदी सुतौना'
सुनि ले मर झुटियाक बाजना।

कनऽ नायिका आपन प्रेमी संग मिले खजेइस। मनेक अकर प्रेमी एसन निठुर हेके जे अकबर बाटे रिचिकऽ धेआन नि देहेइक। नायिकाक झुटियाक बाजना एतना मधुर आहेइक जे अकर प्रभाव जड़–चेतन, सभेजिनिस माहान हेवे हेइक। मनतुक प्रेमीक दिल एतना निठुर जे अकर झुटियाक बाजनाक कनऽ असर नि हेवे हेइक। झुटियाक बाजना सुनिकुहुन पाथरगिला चालायमान हेलेइक। हिआं 'नदी सुतौना'' सबद देखेइक लाइक। बेटि छवाइं कनऽ अनजान लग के गाइर नि देइ पारेइक। इ गाइरटा माहान अप्रत्यक्ष रूप माहान प्रेम कर बखान आहेइक।

कनऽ बेटिछवाक पुरूस बेपार करेलाइ परदेस जाइ खजेइस। अकर बहुइं अके कहे हेइक मोंयो तरे संग जाम आर दुख दुखवासे तर सेवा–सुंसार करम एबंगऽ सुतेलाइ आंचर बिछाइ देवों। हियां 'आचार बिछाय देबों' सबद माहान केतना मार्मिक भाव भरल आहेइक।

तोहें जे जाबे पिया हो, अनिज–बनिजवा हो
हामहूँ जाइअबं तरे संग।

दुखे–बिपते पिया हो, पानिया सुसारब
आरो देबो आंचर बिछाइ।

काकरऽ छटऽ माहानेइ बिहा हेइक। अकर पुरूष (पति) जदि परदेस चली जाइ। बेस निआर मुहऽ ना देखे पावेइक। कनऽ आनार–बानार ना पाठावेइ, चिठि ना पाठावेइ ताहेले अकर समय किना निआर पाइरातेक। निसचय अकर जुबानी बेकार चली जातेइक–

काहे पिया, काहे हो नाने बिहाउले
काहे पिया गेले परदेस।
आपन ना आवले पिया, लिखल ना पाठावले
आरे सँचल जीबुन बहि जाइ।
मांइ कुल राखबं, बाबा कुल राखबं
सैया कुल देवों रे डुबाइ।

जीवन कर आसल मजा प्रेम माहान आहेइक। आड़े–अड़ेक प्रेम माहान जे मजा आहेइक, ऊटा बिहा हेल परे काहाँ? पेति प्रेमिइं आपन प्रेमिका के मिलेक आसा देथिन। जदि आसा देइकऊ प्रेमी ना आवेइ तबे किना प्रेमिका कर अकर ठीन बिसास रहतेइक। कुरमालीक इ लोकगीतटा माहान केसन सुन्दर बरनन आहेइक।

आसा जे देले बाबु, भरसा जे देले हो
नीम तरे राखले भुलाइ।
नीम पात झड़ी गेल, भांवरा गुंजरी गेल
एबे बाबु नखे रे बिसुआस।

पुरूसेक बिना स्त्रीकर इ दुनिया टा गुंजगुंज आंधार। पुरूसेक बिनु अकर मनटा कांदेइत के रहतेइक–

नदी भीतर, नदी भीतर
के कांदे मइया गे
नदिया तऽ बहत खीदर
बिना पुरूसेका तिरिया जे मइया गे
जेंदे देखों, सेंदे रे आंधार।

पेति जुवान बेटिछवाक राइते आपन पुरूस संग सुतेक बानछा रहेइन। दिने काम उदमेक माहान मिलेक समय नि पावत। जदि राइतऊ अकर पुरूस संगे ना सुते जाइ ताहेले इटा पुरूसेक ना मरदिक चिह्ना आर बेजाइं लाजेक काथा। बेटिछवाटीइं अकर सास के कहे हेइक जे दिने त छागेइर चारावे जाइ आर राइते कुंवा सुते जाइ। मके देखलेइ पाराइ भुलेइ। अकर पाराइ भूलल देखी के मकेइ लाज लागेइस–

दिने जे मइया गे, छागरी चारावे हो

राइते त कुंबा सुते गेल

तोहरी का बेटा सासु, देखी के पाराए गेल।

मोयं त सासु लाजे मरी जाऊँ।

जुवानी माहान पेति बेटिछवाकर मन माहान एक टा हुब रहे हेइन। भरसीक आइग भीतरे–भीतरे जेसन गुमसेइक तेसने अखर मन माहान जुवानीक आइग गुमसेइक। इटाक तेहें कन हुचकावेइआक (उद्दीपन) कर दरकार नी रहे हेइक। बिना बासाते जेसन पीपर पात हिलेइक तेसने जुवानी समये मन डोलेइक। समय पाइरा ले अबगा पसताए हेतेइक। इ गीतटा माहान जुवानीक बरनन आहेइक।

बिना बासाते मांइगो हिलत पीपर पात

तइसन डले मर मन।

भीतरे–भीतरे माइ गो कुहुकए

समय गेले मन पसतान।

कनऽ उदास प्रेमींइं आपन प्रेमिका के कहे हेइक तर मुहटा देखे ना पावले मर दुख खने–खन बाढ़ाले जाइ। प्रेमीइं नेहर करे हेइक जे मने राइत दिन मने राखले। मोयं बेजाइं जतनाइ के इ प्रेमेक–मालाटा गांथल आहो। सेंसेक समये हेलऊ मने राखिया। एकदमें ना भूलि जाइस आर प्रेमेक मालाटा के छिटाइ के ना बिगिं देसिक–

ना देखल तर मुख, किना कहम मर दुख

सांइझ बिहाने हामके मने राखिहा

धनी, भूलि ना जाहिया।

सरू सुताक गांथल पिरीत

बहुत काथाइं प्रेमे मातल
सेंस काले देखिस, छिटी फेकिहा
हामके भुलि ना जाहिया।

मटामटि भाभे जीवन के तीन अवस्था माहान बांटाल गेला हेइक। छवाक–समय, जुवानी आर बुढ़ानति। छवाक समय टा खेलेइक समय। जुबानीक समय मौज–मस्तीकर आर बुढ़ानति समय पसतावेक–

छवा समये माइ गो, सुपली रे डालवा
जुवान समये फूल हाइर।
जुवान समये मांइ गो, रित नाहीं खेलऽले
माहुर समये पसतान।

सहवास करल कारन प्रेमिका कर आंइख आपने नुबाइ जाहेइक। आंइख नुबाल देखिके भाउजिइं ननदहारी के कहे हेइक तर आइख ढुल–ढुल काहे आर बांधल चुइल उधनालऊ केसे? प्रेमिकाइ सहबास कर काथाटा के लुकावेइक जालाइं उतर देहेइक जे नींद माहान आंइख ढुलु–ढुलु हेइस आर फूल खंसेइते के बांधल चुइल उधनल आहि–

काहे गे ननदी, आंखी तर ढुलू–ढुलू
काहे गे ननदी, बांधल केस उधनल जे।
नीदे जे भउजि, आंखी मर ढुलू–ढुलू
फूला हो भरे, बांधल केस उधनाल जे।

पतिकर बिजोग माहान पत्नी राइत–दिन कांदेइ। नदी नियार अकर आंइख ले लर बहते रहेइक। अकर पुरूष घार छाड़िकुहुन असने गेलाक जेसन उंडू छाड़ि कुहुन सांप छाड़ि के जाइ। जाइएक समये सेइरसा बुनि के गेलाक। सेइरसा नेजगी गेलेइक मनतुक उ नि घुरल। हिआं सेइरसा बुनल कर प्रतीक बेजाइं चांड़े घुरेइकर। सेइरसा त जनमी के बन हेइ गेलेइक ताकर माने बेजाइं दिन पाइराइ गेलेइक मनतुक उ घुरी नि आवल। बिजोग माहान कांदी–कांदी नदी नियार अकर आंइख ले लर बहराहेइक

जे हो दिने सैया गेल सरिसा बुनिये गेल
हाथ रे सखी, सरिसा जनम बनऽ भेल जे।

जेइसन सांपिआइं खलस छाड़ि गेल
जेइसन नदिआइं थिर बहे पानिया
हाय रे सखी, जेइसन नयनाइं बहे लर जे।

ऊपरे जे लोकगीतेक विवेचन करल गेलाहेइक, सेटाइं जानाल जाहेइक जे कुरमाली लोकगीत माहान भाव–सौन्दर्य बेजाइं बेसी भागे आहेइक। इ गीतकर मरम अइएँ जाने पारत जे लग रसिक हेइ। महाकवि विनन्दियाक् सबदे–

रसिक रसेते भांसे, भ्रमर कमले बसे
निरमल रसे डुबीजाय तबु मधु कबुना सिराइ।
बिनन्द सिंह कय, जे जना रसिक हय
अबसेंसे दरसन पाय, तबुमधु कबु ना सिराय।

***

कुरमाली भासाकर बेयाकरन लेखन–परम्परा

बेआरकन सबद कर अर्थ हेकइक—व्याख्या करा (व्य=व्याख्या आर करण कर करा। व्याख्या कराक माने बा धेइ आबगा भासाकर व्याख्या करा। कनऽ जिनिस किमबा साहित्यकर निहिं। महार्षि पतंजलिइं आपन 'महाभाष्य' माहान लक्षण एहे नियार देलाथिक "लक्ष्य लक्षण व्याकरणम्" ताकर माने भासा के अनुसासन बद्ध करके नियत आर संगे–संगे उदाहरनेक जुड़तिक नाम बेयाकरन हेकेइक। बेआकरनेक बेगर कनऽ भासाक स्थिर आर परिनिष्ठित रूप नि देवाल जाइ पारेइक।

भासा समाज माहान रहि के देश, काल, सभ्यताक अनुजाइं बनेक आर बगड़ेक। जेसे–जेसे समय पाइराले जाइक, रसे–रसे बदलीकुहुन नउतन रूप धारन करेइक। जेसनः संस्कृत ले प्राकृत, पालि ले अपभ्रंश ले हिन्दी भाषा बनल आहेइक। हामरा आपन मनेक भाम बा विचार भासाक दाराइ परस्फुट करियो। इटा जानाल काथा जे भासा टुम ले बनेइक। टुम साड़ा ले आर आखड़ ले साड़ाएहे नियार भासाकर तीन अंग आहेइक—आखड़, साड़ा आर टुम। शुद्ध–शुद्ध कहले आर लिखले सबद आर बेंबहार माहान शिष्टता आवेइक। शिष्टता तबेइ आवे पारेइक जबे अकर कनऽ नियम हेतेइक। जे शास्त्रइं भासाकर नियमन करेइ बा नियम माहान बाधेक, अके बेयाकरन कहाल जाइक। अहेटा लेइ भासाकर शुद्ध रूपेक परिचय पावइक आर कहेक–लिखेक हुनेइर बाढ़ेइक।

बेयाकरन जद्यपि बेजाइं दरकारी हेकेइक। तावे भासाकर सभाभिक गति माहान हानता देइक। तबे भासा के जियंत राखेक जालाइं बेयाकरन के भासाकर अनुजाइं बेयाकरन लिखल जाइक। सेइमाहान समये–समये बेयाकरने उलट–फेर हेते रहे हेइक। बेयाकरन भासाकर अधिन रहे हेइक।

कुरमाली माहान बेयाकरन लिखेक परम्परा सन् 1903 ई. ले मानाल जाइ पारेक। जदि एकर आगु कनऽ बेयाकरन लिखाल गेलाहेइक त उटाकर जानकारी एखन तड़िक नि पावाल गेलाहेइक। डा. जार्ज ग्रियर्सने आपन पथि Linguistic Survey of India कर खण्ड पाँच भाग दुइ माहान कुरमाली भासाकर संक्षिप्त परिचय देलाथिक। अरा आपन पथिटाइं संज्ञा (आंगा), सर्वनाम (अइजि), क्रिया (सरान), काल (बेरा) कर चरचा करल आहात। इटा के हामरा पूरा–पूरी (गटा) बेयाकरन नि कहे पारियोक। एरा कर धेइ आवगा भासाकर धरनेक लेइके उदाहरन देबेक रहेन। एरा जे व्याकरनेक अंग कर बरनन करल आहात, उटा खासकरिके मानभूम आर खरसवांक कुरमालीक उदाहरन देलाथिक। एरा मरदम सुमारिक खने लिखल आहत आर अराके बाबू शीतल चन्द्र चटर्जीइं, जारा स्कूल निरीक्षक रहत, साहाज्य करलाथिन।

पचास बछर बादे 1953 कर काछा–काछी चक्रवर्ती देवकीनन्दन प्रसादे दुइटा पथि लिखल आहात– "ना धरे आँखि जल आँखि पाते" आर "केते अकुहा भाषा केते उत्तला आशा"। इ दियो पथिइं कुरमाली लोकगीतेक बेबहार कराल गेल व्याकरण विशेषताक चरचा कराल गेलाहेइक। पहिल पथिटाइं मानभूमेक कुरमालीक गीतेक अनुजाइं कारक, क्रियापद, संज्ञा, विशेषण सामासिक पद कर चरचा आहेइक। एहे नियर दसर पिथिटाइं सरायकेला खरखरसवाँक कुरमाली गीत माहान बेवहार करल गेल विभक्ति कर विसद बरनन आहेइक। संगे–संगे सर्वनामपद, क्रियापद करऽ चरचा आहेइक। वस्तुतः इटा के हामरा विशुद्ध रूप माहान कुरमालीकर बेयाकरन कहे नि पारियोक। तावे मटामटि भाभे कुरमालीकर बेयाकरनिक विशेषता के देखावल गेलाक। एकर परे 1958 ई. माहान डा. विश्वनाथ प्रसाद आर डा. सुधाकर झा शास्त्रीइं– Linguistic Survey of Sadar Sub Division of Manbhum & Dhalbhum पुस्तकटाइं कुरमाली बेयाकरनेक उल्लेख करल आहात। इ पुस्तकटाइं कुरमालीक क्रिया, सर्वनाम विशेषण, वाच्य, वाक्य–रचना प्रत्यय कर चरचा करल आहात। इटा के हामरा विधिवत् बेयाकरन नि कहे पारियोक। दियो लेखक कर मटामटि धेइ रहेन जे कुरमाली कर बिहारीबर्ग कर भासा मगही संग केतना मेल आहेइक।

सन् 1962 माहान डा. नन्द किशोर सिंह "कुरमाली बोलीः एक भाषा तात्विक अध्ययन" नामे शोध–प्रबंध लिखला। इ शोध प्रबंधटाइं कुरमाली व्याकरणकर विस्तृत चरचा आहेइक संगे–संगे कुरमाली भासाकर वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करलाहात।

एकर परे खुदीराम महतोइं 1973 माहान 'कुर्माली भाषा तत्त्व' नामेक एकटा पथि छापावला। इ किताबटाइं भासाकर इतिहास, भासाकर विशेषताक संगे–संगे कुर्माली बेयाकरनकर उल्लेख आहेइक। बेआकरन माहान क्रियाकर विस्तृत चरचा आहेइक। एहे नि, इ बेयाकरन पथिटाइं सर्वनाम, विशेषण, संज्ञा, वचन, लिंग, कारक, वाच्य, अव्यय, क्रिया विशेषण कर उदाहरनेक संगे विशेष चरचा आहेइक आर सेंस माहान कुरमालीक लोकगीत देवाल गेलाहेइक। इ किताबटाके हामरा कुरमाली भासाकर पहिल बेयाकरन कहे पारियोक।

1980–82 बछर माहान राँची विश्वविद्यालये जनजातीय एवं क्षेत्रीय भासाकर पढ़ाइ–लिखाइ सुरू हेलेइक। दरकारेक अनुजाइं कुरमालीक लेखके भिनु–भिनु विधा–महान किताब लिखे लागला। एहे लागालागि श्याम सुन्दर महतो 'सामदा' कुरमालि बेइआकरन लिखल आहात, जेटाइं बेआकरन कर छह हिंसा–आखड़, धमस, साड़ा, खेजा, टुम आर थाभा जुकतिकर चरचा करल आहात। अध्याय दुइ माहान आंगा, गुनिन, सरान, गुनिन, गुनिन सरान आ तामान कर उदाहरन

संगे बरनन करल आहात। एकर छाड़िकेऊ लेखा, लिंग, बेरा (काल), कथा (वाच्य), एकुन (समास), कर चरचा आहेइक। पथिक सेंस माहन आहना, मुहजरा, उलट बगा संक्षिप्त परिचय देलाथिक। एहे काछा–काछिइं खुदीराम महतोकर कुर्मालि भाखिक इतिहास, रूप, चिस, नामेक पुस्तक 1982 माहान छापालेइक। इ पथिटाइं कुरमाली कर इतिहासेक संगे–संगे कुरमाली बेयाकरन कर स्वर, व्यंजन, संज्ञा (आंगा), निरखि ; (Number), लिंग, पारिक (कारक), अजिआंगा (सर्वनाम), गुनिन, सरान, गुनिन सरानकर उदाहरन संगे चरचा आहेइक।

अनन्त महतोइं "कुड़मालि भाँवर" नामेक संक्षिप्त बेयाकरन 1986 महान प्रकाशित करावला। इ पथिटाइं व्याकरन कर पारिभाषिक सबद कर नाम बदलीकुहुन संज्ञा, क्रिया, विशेषण कर नाम बदलीकुहुन आपन हिसाबे नामकरन करलाहात। जेसन, वाक्य कर भेद (टुमेक खेजा), काहना खेजा (विशेषण), आइजिखेजा (सर्वनाम), ढिठखेजा (अव्यय), सरान खेजा (क्रिया), लेखा (वचन), लिंग (लिंग), बेरा (काल), आहना (प्रवाद), जानकेहनि (धाँधा) कर उल्लेख आहेइक। इ पथिटाके हामरा विधिवत् किमबा स्तरीय बेयाकरन नि कहे पारियोक।

2003 माहान पद्दलोचन महतोइं कुरमाली सादानि भाषार व्याकरन (बेउरा) लिखन आहात। इ किताबटाइं पहिल कुरमाली भाषा कर सामान्य परिचय देलाथिक। बंगला आर कुरमाली भाषाकर तुलनाउ एटे पथिटाइं आहेइक। कुरमाली लिपि आर साहित्यकर संगे–संगे कुरमाली कर भिनु–भिनु नाम कर उल्लेख आहेइक। इ बेयाकरन पथिटाइं कुरमालीक ध्वनि, सन्धि, नामधातु, संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण, सर्वनाम, अव्यय, क्रिया, कारक, वाच्य, क्रियाकर भेद, वचन, लिंग, समास, उपसर्ग, कृदन्त–प्रत्यय, तद्धित प्रत्यय, काल, वाक्य, मुहावरा, लोकोक्ति शीर्षक आहेइक। दसर बेयाकरनेक किताब ले इटा अवश्य बेस आहेइक, मनतुक क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत नि कराल गेलाहेइक। दसर बेयाकरन लिखेइयाइं कुरमाली माहान सन्धि नेखेइक, एसन कहि के चरचा करल आहात। मनतुक इ बेयाकरन लिखेइयाइं सन्धिकर उल्लेख करल आहात। आरो बेयाकरन ले निश्चित रूप माहान इ बेयाकरनेक पथिटा बेस आहेइक आर उदाहरन संगे विस्तृत चरचा आहेइक।

कुरमाली व्याकरण लिखेक परम्परा एक सौ बछर ले बेसि हेहेइक आर बेयाकरन लिखेक परम्परा एखन तड़िक चलते आहेइक। कुरमाली लेखऽके पत्र–पत्रिकाएँ कुरमालीक लेइके बाजे–काछे भिनु–भिनु शीर्षक माहान लिखते आहात। बेयाकरनेक साइठे जारा एखन तड़िक लिखते आहात, अराकर हिआँ चरचा कराटा उचित बुझाहेइक। धानबाइद ले प्रकाशित 'शालपत्र' 1977 कर पत्रिकाइं लखीकान्त महतोइं कुरमाली भाषाकर बेयाकरनिक विशेषता के लिखल आथिक। एहे नियार धनबाद ले प्रकाशित 'झाड़खण्ड' नामेक मासिक पत्रिका (1980) माहान

कुरमालीक संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण शीर्षक माहान लिखल आहात। एहे पत्रिकाक दसर अंक माहान क्रिया (हासिल पद) कर विस्तृत चरचा करल आहात। एरा आपन मासाहि पथि 'टउआ' माहान (सक. 1902) 'नरमेदिक ठेकान' (Gender)] कर लेइके विशेष लिखल आहात।

अखिल भारतीय कुर्मि क्षत्रिय महासभा कर 33वाँ सम्मेलन 1980 कर स्मारिका ग्रंथ माहान चित्तरंजन महतोकर लिखल 'कुर्माली भाषा' नामेक शीर्षकटाइं कुरमालीकर व्याकरणिक विशेषताक संगे–संगे बंगला भासाक आर कुरमाली भासा कर तुलना कराल गेलाहेइक। धानबाइद ले प्रकाशित (सरूआवल) झारखण्ड मासिक पत्रिका (1981) माहान कुरमाली भांउअर (लेखा) लक्ष्मीकान्त दारा लिखल पावल जाहेइक। एहे नियार पुरूलिया ले सरूआवल 'सारहूल' मासिक (1983) पत्रिका माहान कुरमाली कारक कर विस्तृत चरचा आहेइक। 'सारहूल' पत्रिका (1984) माहान लखीकान्त माहतोकर लिखल कुरमाली प्रत्यय कर बरनन पावाल जाहेइक। 1984 माहानेइ 'सारहूल' मासिक पत्रिका माहान छापल बेरा (काल) कर उल्लेख आहेइक। जमशेदपुरेक देवेन्द्र सेवासंघ कर रजत जयन्ती स्मारिका (1987) माहान एच. एन. सिंह कर लिखल लेख 'कुरमाली भाषा आर साहित्य' माहान कुरमालीकर बेयाकरनेक विशेषता के देखावल गेलाहेइक।

कुरमाली भाषा–भाषी छाड़िकऊ दसर विद्वाने आपन दरकारेक हिसाबे कुरमाली व्याकरन कर चरचा आन पथिइं करक आहात। जेसनः– भोजपुरी भाषा और साहित्य (1984) माहान डा. उदय नारायण तिवारीइं कुरमाली कर बेयाकरनिक विशेषता के देखावलाथिकं। डा. राम विलास शर्माइं आपन पथिइं कुरमाली व्याकरणेक चरचा करक आहात। एहे नियार डा. आदिकन्द महन्ताइं मयूरभंज कर कुरमालीक उच्चारण पद्धति, व्याकरणिक विशेषता, कारक, सन्धि कर उल्लेख 'कुरमी चेतना के सौ वर्ष' (1884–1994) माहान करल आहात।

एहे नियार डा. नन्द किशोर सिंह, डा. संतोष कुमारी जैन आरो–आरो लेखके बाजे–खाजे कुरमाली बेयाकरनेक लेइके लिखते आहात। पेति लेख माहान किछु–नि–किछु नउतन बातकर चरचा हेहेइक। मिलाइ–जुलाइ के हामरा कहे पारियो जे कुरमाली व्याकरन लिखेक परम्परा बेजाइं पुराना समय ले एखन तड़िक अबाध गति माहान चलते आहेइक। तबे एकटा निसटा काथा जे हिन्दी नियार एखन तड़िक सुव्यवस्थित बेयाकरन नाहुँ लिखाइक। एसन बेयाकरन लिखल जाऊक जेसे पढ़ेइया छवाकर तेहें उपयोगी साबित होऊक।

***

कुरमाली गीत माहान राष्ट्र–भक्ति

कुरमाली साहित्य के मटामटि भाभे तीन पेरियाइं बांटाल जाइ पारेइक– आदिकाल, मध्यकाल आर आधुनिक काल। सभे आमऽले परिस्थितिक अनुजाइं साहित्यकर सिरजन हेइक। इटा जानल–मानल काथा हेकइक जे कवि आपन पेरियाक प्रतिनिधि हेत। अरा समाज कर बातावरण बा परिस्थितिक आर दरकारी जिनिसेक अनुजाइं साहित्य–सिरजन करत। सेइ माहाने अखर गीत किमबा कविता माहान आपन आमलेक बरनन रहेहेक। जदि हमरा आमऽलेक अनुजाइं गीतेक धरन देखे जाइयो त पावाल जाहेइक जे कुरमालीक लोकगीते देशभक्ति चाहे राष्ट्रीय भावनाक लेइके गीत निहीक बराबइर आहेइक। तबे आधुनिक कालेक गीतमाहान राष्ट्रीय चेतनाक लेइके दमे गीत पावाल जाहेइक। काहे न, हामर मुलुके सभे बाटे आजादीकर लड़ाइ चले हेलेइक। कुरमालीक कबि टाटकाइ केसे बसि रहता। अराउ आजादीकर ज्योतिके सलगावेक टाइं पेछुबाटे नि रहल आहात।

कुरमाली साहित्य दुइ रूप माहान पावाल जाहेइक–लोकसाहित्य आर शिष्ट साहित्य। मटामटि भाभे कुरमाली शिष्ट साहित्येक शुरूआत कुरमालीक मध्यकाल ले मानाल जाइ पारेइक। तबे एकर विकास 1900 इस्वीक बाद ले मानाल गेलाहेइक। सन् 1930 कर काछा–काछी माहान लगकर मने एकटा नवतन भाभ जागलेन। गोराराक गुलामी ले मुक्त हेवेक हांतिर लोककविराइं आपन भाखा माहान जागरन गीत सिरजे लागला जेसे लगेक मने हुब आओन आर जुवानराक देसेक बाटे टान बाढ़ोन। गोराराक ठीन ले आपन मुलुक के साधीन करथूक। आपन हांथे राइज–पाइट आओक आर आपन मनेक अनुजाइं जिनगानी चाला–अब। एक निआर इटाके सपनकाल कहाल जाइ पारेइक। लगे सपन देखे लागला जे मुलुक साधीन हेले हामर देश सुघड़, मजबूत आर बेस देश बनतेइक।

पेति आमऽले साहित्यकर भिनु–भिनु धरन रहलेइक। आदिकालेक कुरमाली गीते बेसी भागे प्रकृति बरनन पावाल जाहेइक त मध्यकाल माहान सिंगार आर भक्तिकर। मनेक एखनुक आमले भिनु–भिनु रकमेक गीतेक संगे राष्ट्रीय भावनाक गीत बा देशभक्ति गीत पावाल जाहेइक। देशभक्ति गीते मूल रूप माहान मानवतावादी विचार आर राष्ट्रीय एकताक भाभ रहेहेइक। एहे जे देशभक्ति गीत आहेइक इ गीतगिला इ डुल आहेइक। जेसन–कसन कनऽ–कनऽ गीते भारत माताक बंदना करल गेलाहेइक त कनऽ गीते भारतमाताक जयजयकार।

एहे निआर कनऽ गीते भारतेक अतीतकर गौरवगान आहेइक, त कनऽ गीते बीरराके मातृभूमिक रक्षाक हांतिर बलिदान देवेक तेहें हुब बाढ़ावल गेलाहेइक। एसनऽ गीत आहेइक जेटाइं भाइ–चारा आर साम्प्रदायिक एकताकर सन्देश आहेइक।

आजादीक पहिले लगेक मने साध रहेन जे हामराक मुलुक साधीन हेले हामराक सभे रकमेक जाला सिराइ जाती। दमें सुख पावब आर भारत माता के हाइर पिंधाइके नाना निआर साजावबेक। इ भाभेक लेइके एकटा कबिइं कहऽहत–

साधीन हेले जाती सभे जाला।
भारत माइ के पिंधाउबेक माला।।

कनऽ–कनऽगीते द्वितीय विश्वयुद्ध कर बरनन आहेइक–

पालटने देस लेला घेरी
लो सहचरी।
देसे लड़ाइ हेलेइक भारी
लो सहचरी।

जखन हामर देश पराधीन रहेइक तखन हामर कबिक मन कुचटे हेलेइन जे हामर देश केसे साधीन हेती। एकटा गीत माहान नवजुवानराके गोरारा संगे लड़े लाइ हुचकावल गेलाहेइक–

बिहाने दतुन काठी
दुपहरे ठेंगा लाठी।

गोरारा संग लड़ेइत के गोकुल, सहदेव, गणेश संगे बेजाइं जुबान देशेक हांतिर आपन जिऊ देइ देलथिक। तखन कबिइं कहऽहत–

काहाँ गनेश ठेंगा लाठी,
काहाँ तर दतुन काठी
अरे, काहाँ हेरावले जीवन।
पुरूइलाक ठेंगा लाठी
झेइलदाक दतुन काठी
अरे, सत्यमेलाइं हेरावले जीवन।
देसेक लागी करले पन
देसेक लागी देलाहाक जीवन
धन्य तरा शहीद भाइ,
मरि कोऊ रहलेहे हियाइं।

संतकविसृष्टिधरेक गीते राष्ट्रीय चेतनाक भाभ भरल आहेइक। कबिइं हामर मुलुकेक रहेइया के निजेक देशेक बनावल, सिरजल, गढ़ल जिनीस बेबऽहार करके आवाहान करेहेथिन--

सराज कहलेइ सराज नि हेइक
देखावे हेती काम करि
घारेक तेल आर घारेक दाइल
सुखे रहबे चिरकाल।

सन् 1962 ई. माहान चीने हामर देश माहान चढ़ाइ करल रहे। तखन कबिराक मने बेड़े कष्ट हेलेन। मातृ भूमिक रइक्खाक जालाइं हामर मुलुकेक नवजुआनराके चीन संगे लड़ेलाइ, हुचकावे हेलथिन। श्रीकान्त कविकर एकटा गीते देखाः--

दुसमन चीना चोर, आवे भारतऽ भीतर
चाला भीड़ा सभे नवजुआन
रने साजा, करि बाजऽ बाजना।
आवे नि देबेन हियाँ, जाऊत जहाँ रहत ताहाँ
लड़ाइ करि हियाइँ मरब, ताव नि देस छाड़ब,
हियाँ हेकी हामर जनम थाना,
रने साजा, करि बाजऽ बाजना।

एहे नियार स्व. प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्रीकर 'जय जवान, जय किसान' कर नाराटाके जन--जन तड़िक पहुँचावल गेलेइक। श्रीकान्त कबिइं जुआनकर संगे--संगे चासाराकोऊ बेसी करिके आबाद करके खातिर आवहान करेहेथिन--

सुना जतेक चासागन,
चासे--बासे देहाक मन।
देस हेकी, कृषि--प्रधान
जय जवान, जय किसान।

राष्ट्रीय गीत एखन कतेक नियार माहान पावाल जाहेइक। एकर एकटा रूप भारतमाताकर बन्दना हेकेइक। कुरमाली गीतमाहान भारतमाताक बन्दनाक संगे--संगे देशेक हांतिर बलिदान हेवेक प्रेरणा देल गेलाहेइक। डा. मानसिंह कर गीतमाहान एहे भाभ भरल आहेइक--

जय हे भारत माता,
जय हे जनम दाता,
तरे लागी करब जीवन–दान
नि हेइ देबेक देस नाना थान।
बीर भाभेक संगे जाब
कांदा–मूला, फर खाब
आपन सिर देबेइक बलिदान।

एहे भाभेक गीत श्रीकान्तकर एकटा गीतमाहानऊ पावाल जाहेइक। इ गीतटाइं भारत–माताक बन्दनाक संगे–संगे अकर महिमाकर बरनन आहेइक–

जय हे भारत माता, अखण्ड मैदान
जय–जय जनमभूइं, नाहि आरो आन।
तहीं गाछ–बिरिछ, तहीं फूले केरि बागान।
चर–अचर सभ जीवेक केरि बाथान
सोना, रूपा, लोहा आर धातु केरि खान।

माहात्मा गांधीकर राजनीति माहान जे जाइगा आहेन, अहे नियारे साहित्य माहानेक अराक परभाव देखाल जाहेइक। महात्मा गांधीके आजादीक मूल दूत मानाल गेलाहेइक। अराक तेहेइं आर अगुवाइं हामर देश आजाद हेलाहेइक। डा. मान सिंहकर एकटा गीते गांधी बाबाक बड़ाइ करल आहात–

उन्नीस सौ सैंतालीसेक पहिल
गुलाम भारत रहेइक काहिल।
साधीन करलेइक हामराक देश के
धन्य–धन्य गांधी बाबा के।

एहे नियारे कुरमालीक राष्ट्रीय चेतनाक गीतमाहान आरो दसर–दसर नेताराकर चरचा करल गेलाहेइक आर अराक जीवन ले प्रेरणा लेवेक संदेश देल गेलाहेइक।

देखें राणा, लक्ष्मीबाई, गाँधी आर पटेल भाई
काकर नाम लेम, सभे आदाबादी रे।

हामर देश बीरकर देश हेकेइक। हियाँ कतेक बीर जनम लेल आहात आर जनम लेते आहात। एहे भाभेक एकटा गीत देवाल जाहेइक जाकर सिरजेइया कबि मान सिंह हेकत–

पराधीन रहेइक भारत, जखन हामर नि रही ताकत।
वीर तेयार हेला बलिदाने, पाराला सभ दुश्मने।
खुदीराम, तिलक, नेहरू एसन, साजला सभ जनेजन।
देसेक जालाइं लड़ला सांइझे बिहाने, पाराला सभ दुश्मने।

कुरमाली गीति परम्पराक संगे–संगे कुरमाली कविता माहानेक राष्ट्रीय भावना परस्फुट हेलाहेइक। डा. सुरेशचन्द्र कर कविता 'एकताइ बल' माहान सम्प्रदायिक एकता के देखावल गेलाहेइक–

मानुस–मानुस भाइ–भाइ, काहे करब झागड़ा–लड़ाइ
सभ मानुस रहब संग, देसेक एकता बाढ़ाइ के।
मानुस–मानुस लड़ब जदि, देखा एसन सुन्दर आजादी
नि पारब राखे भाइ, हेइ जाती बरबादी।

कवयित्री करूणामयी कर 'खाँटी माइं' कबिता माहान हामर देशेक महिमा आर साम्प्रदायिक एकताकर बरनन देखाल जाहेइक–

भारतेक माटी माइं, तइंए हेकीस खांटी माइं
हिन्दू, मुस्लिम, खिरिस्तान, सभे काकर, तइंए माइं
पेति जाइत, पेति पाइंत, आहियो शान्तिइं सभेकाइ
हामर आहि एक पथ, एक मत, के देखी जात, गटा जगतटाइं।

राष्ट्रीय काव्यकर एक दसर रूप अतीतकर गौरवगान हेकेइक। कुरमाली कबितामाहाने इ भाभ पावाल जाहेइक। राधागोविन्द सिंहकर 'भारतेक जयगान' कबिता माहान भारतकर अतीतेक बरनन आहेइक–

गावा सभ मिलीके, भारतेक जयगान।
एक तन, एक मन, एक परान।
गावा सभ मिली के भारतेक जयगान।
भारतभूमिक समान आहेइक कि कोनो थान।

आजादीकर लड़ाई माहान झारखण्ड पेछुइं नि रहेइक। हियाँऊ बिरसा, शेख भिखारी, गणपत राय, सिद्धो–कान्हू, तिलका मांझी एसन सपूत जनम लेल रहत आर देशक तेहें गोराrा संग लड़ल–भिड़ल रहत। केशव चन्द्र टिडुआर कर 'बिरसा' कबिता माहान राष्ट्रीय भावनाक झलक देखाल जाहेइक–

मरदेग मरदानी, देखाइ के कारदानी
बीर बिरसा दुनिया माहान,
इंगरेजेक राइफल कामान
तरठीन ठेपो आंगुर समान।
एसन सांहास आर मरदानी
दुनियाक लड़ाइये देखे पावऽ नि।
भारत मुलुकेक स्वाधीनताक सपन
आपन मुलुकेक के देखावले तखन।
लड़ेग हुस, ढ़ाढ़स आर दिशा
तोंय पहिल देखावले वीर बिरसा।

एहे निआर प्रिंसिपल नन्द कुमार कर 'संजय नदी', बसन्त कुमार मेहताक 'कारान्तिक बिहाने' आर लखीकान्त मुतरूआर कर 'तोंय कि आर निहि जाबे अहे डहरे' कबिता माहान राष्ट्रीय–भक्तिकर झलक पावाल जाहेइक। खाटऽ करिके कहाल जाइ पारेक जे देश–कालकर अनुजाइं कुरमाली गीत माहान जन भावना के व्यक्त करल गेलाहेइक आर जुगेक अनुजाइं गीत जड़ल–रचल गेलाहेइक।

***

कुरमालीकर चिस : समस्या आर समाधान

कुरमाली एकटा अन्तरप्रान्तीय भाषा हेकेइक। भिनु–भिनु राइज माहान कहाल जाइक। सेइ तेहें एखन कुरमाली भाषा–भाषी, लिखइया–पढ़ेइयाककर जन्ये लिपि कर एकटा दारून समस्या स्कूल–कलेजे पढ़ाई सुरू हेतु परे उठल आहेइक। इ एकटा मान–सान–गुमान कर काथा हेकेइक जे कुरमालीक संगे–संगे आरऽ दसर–दसर भाषा करऽ पढ़ाइ–लिखाइ एम. ए. माहान हेहेइक। मनतुक संथाली छाड़िकुहुन दसर कनऽ भाषा आपन निजेक चिस नेखेन। बाकी सभे दसर भाषाकर लिखाइ देवनागरी लिपिकर दाराइं हेहेइक। एसे त सभे भाषा–भाषीक राय आहेन जे आपन–आपन भाषाकर तेहें चिस सिरजाल जाऊक। केवे–केवे त बनावलऽ आथिन मनतुक बेबहार माहान केवे सफलता नि पावले आहात। जे भाषा बेसि जाइगा माहान पसरल आहेइक अकर तेहें लिपि–समस्या निश्चित रूप माहान हेतेइक। उदाहरन कर रूप माहान हामरा कुरमाली आर संथाली के लेइ परियोक। संथाली कर क्षेत्र बिसाल आहेइक। संताल परगनाइं संथाली देवनागरी चिसकर, पछिम बंगाल माहान बांगलाइं, सिंहभूम आर उड़ीसाइं 'ओलचिकि' आर 'रड़दादेर आंक' एवंग इसाइराइं रोमन चिसकर बेबहार करत। एरा एके भाखा–भाखिक लग हेकत। मनतुक भिनु–भिनु जाइगाइं बसागत करेक कारन भिनु–भिनु चिसकर बेबहार करे हेथिन। जदि एक नियार चिसकर चलन रहे तेलेइक ताहेले पथि पढ़ेक टाइं कनऽ दिकत नि हेइतेलेन। तबे हेइ पारेइक उच्चारनेक लेइके रिचिक–आधेक फरक हेइ पारेइक।

एहे नियार कुरमालीकरऽ चिस समस्या आहेइक। कुरमाली मटामटि भाभे तीन राइज माहान कहाल जाइक–झारखण्ड, उड़ीसा आर पछिम बांगाल। एखन एकटा खंच उठे हेइक जे किना एतना बिसाल (क्षेत्र) जाइगा माहान एक चिसकर समभभ आहेइक। काहे न पहिल से कुरमालीकर कनऽ चिसेक प्रचलन नेखेइक। जदि नवतन चिस गढ़हल चाहे बनावल जाइक त हामरा कहे पारियो जे एखन भाखाकर जेतना विकास हेल आहेइक, उ ठप हेइ जातेइक। एहे नियार आरऽ ढेइर समस्या आवले जातेइक। जेसनः– पथि छापावेक बा टाइप करावेक तेहें नवतन मिसिनकर जगाड़ करे हेतेइक। एहे नियार हामराक पढ़ाइ–लिखाइ अवरूद्ध हेइ जातेइक। कुरमाली भाखा–भाखी भिनु–भिनु राइज माहान बसागत करेक कारन चिसकर विवाद उठे पारेइक आर सभेकाइ आपन–आपन चिस के लागू करके पक्ष माहान हेता। झारखण्ड कर लगे देवनागरी चिसकर, बंगालकर लगे बांगला आर उड़ीसा कर भाखा–भाखिइं उड़ियाइं। जदि राइज सरकारे

आपन–आपन राइज माहान कुरमाली भाखाक पढ़ावेक सरजाम करेइ, तबे चिसकर समस्या किछु तड़िक आपने आप सिराइ जातेइक। एहे नि, जारा परीक्षक हेता अराक आगुइं खाता काटेइत के समस्या आवतेन बा हेतेन।

एखन झारखण्ड कर पेति भााकर लगे आपन–आपन चिस गढ़ेक टाइं झुकाल आहात। एराक विचार एहे जे जखन हामराक निजेक भाषा आहि तखन आपन चिसऽ हेवा चाही। इटाक लेइके कहाल जाइ पारेइक जे मानि ले लिपि (चिस) कर आविष्कार बा गढ़न कराल जाइक ताहेले एतना त मानेइ हेतेइक जे हामरा के फेइर सुरू ले पढ़े–पढ़ावे हेती। जेटाइं बेजाइं समय लागतेइक। दसर काथा जे चिस वैज्ञानिक कसौंटी माहान सटिक हेता न नि हेता, इटा कहाटाऊ मसकेइत। आरो फेइर हामरा जेसन कहियो, उच्चारन करियो तेसने लिखाल जाइ पारेइक न नि, इटा कहा मसकिल। आइज जारा स्कूल कलेजे नि पढ़हत अराक तेहें त पढ़ेलाइ दिक्कत हेइ जातेन। नवतन चिस सिखेलाइ समय देइ पारबेथिक, न नि देइ पारबेथिक, इटा कहा कठिन हेइ पारेइक। जदि नवतन गढ़ल चिस माहान पथि छापावल जाइक तबे अके फेइर अनुवाद करे हेतेइक। एखन भाषा जाहाँ तक पहँचल आहेइक हुआँतड़िक पहुँचेइत के बीस–तीस बछर समय लागतेइक। एहे सभ भाभी–गुनी के कहे पारियो जे हामराक चिस देवनागरी हेवा चाही। देवनागरी चिसकर लेइके मोंय किछु बात राखे खजोहों।

भारत कर सभ ले प्राचीन भाखा संस्कृत हेकेइक। जेटा के लगे देववाणी कहे हेलथिक आर अकर चिस हेकेइक–देवनागरी। देवनागरी लिपि माहान पेति आखड़ कर तेहें सटिक संकेत देल गेलाहेइक। ताकर माने जेसन लिखाल जाइक तेसने पढ़ाल जाइक। पढ़ेइयाके आपन बाटे ले कनऽ जड़ेक दरकार नि हेइक आर न कनऽ आखड़ के छाड़ेक दरकार हेइक। एहे माहान इ लिपिटा के वैज्ञानिक लिपि मानल गेलाहेइक। वैज्ञानिक लिपिकर माने हेलेइक जे जिनिस जेसन आहेइक अहे नियार उच्चारन कराल जाइक। संसारेक कनऽ एसन लिपि नेखेइक जेटाइं जेसन लिखल जाइक आहेटाइ पढ़ाल जाइक। बेयाकरन कर अनुजाइं इ लिपि के बिड़ल गेलाहेइक। ताउवे काहुँ–काहुँ रिचिक–आधेक कमी रहे पारेइक। भारतकर जेतना भाषा आहेइक प्रायः सभ के लिखेक खेमता आवगा देवनागरी लिपि माहानेइ आहेइक। देवनागरी माहान एक आखड़कर उच्चारन एके नियार हेइक। स्वर–वर्ण अलग–अलग आहात आर व्यंजन अलग। देवनागरी लिपिकर पक्ष माहान देशकर ढेइर–ढेइर विद्वानराइं आपन–आपन विचार व्यक्त करल आहात जे देश माहान ज़दि कन्नऽ एक लिपि

हेइ पारेइक, त आबगा देवनागरी। उड़ीसाकर कुरमालीक नामी लेखक गिरीशचन्द्र महन्ताइं कुरमालीक तेहें नागरी लिपि केइ सभले बेस मानल आथिक। हिन्दी कर विद्वान डा. दिनेश्वर प्रसाद झारखण्डी लिपि समस्याकर निराकरनेक तेहें कहलाहात ''जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की समस्या हल करना है तो सबसे पहले इनकी लिपि समस्या का संगत निदान करना होगा। जहाँ तक मैं समझता हूँ। इसका सबसे संगत और स्वीकार्य समाधान यह हो सकता है कि जो भाषाएँ जिस राज्य में बोली जाती है, उसके लिए उस राज्य की भाषा–लिपि स्वीकार कर ली जाए। राष्ट्र–एकता की दृष्टि से एक लिपि के महत्व को स्वीकारते हुए यह कहना होगा कि इसकी स्वीक ति समस्त भारतीय जनता पर निर्भर है। आज–कल कुछ जनजातीय विद्वान अपनी भाषा के लिए लिपि के निर्माण में लगे हैं, इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए। बंगला उपन्यासकार बंकिम बाबू ने अपना मत प्रकट किया था कि भारत में एक लिपि होनी चाहिए और वह केवल देवनागरी ही हो सकती है।'' एहे नियार आरऽ कतेक विद्वानराइं–जेसन न्यायधीस शारदा चरण मित्रा, अनन्त शयनं अयंगार, के. एम. मुन्शी आरऽ–आरऽ लगे देवनागरी लिपिकर पक्ष माहान आपन–आपन विचार राखल आहात। एहे नि, देवनागरी लिपि के स्वीकार करयोक त कनऽ असंगत बात नि हेतेइक। तबे एसन करेक तेहें हामरा आर दसर–दसर चिसेइ लिखेइयाराके आपन–आपन चिसकर मोह–माया छाड़े हेतेन जेटा आसान नहेइक। तबे किछु सुधार करि के हामरा कुरमालीक तेहें देवनागरी लिपि के स्वीकार करा चाही। तबेइ जे धेइ माहान कुरमाली भाषा–साहित्यकर पढ़ाइ–लिखाइ शुरू हेलाहेक उटाइं हामरा सफल हेइ पारब।

***

मातृभाषाक रूप माहान कुरमाली भाषाक अध्ययनकर औचित्य

हामराक देश बहुभाषिक आर बहु सांस्कृतिक देश हेकेइक। सन् 1891 ई. कर मरदमसुमारीक अनुजाइं हामर देशे बा भारतवर्ष माहान 179 भाषा आर 544 बोली आहेइक। झारखण्ड एकटा बहुभाषा–भाषी राइज हेकेइक। हिंयाकर बसकइताक आपन–आपन मातृभाषा आहेन। हिन्दी काकरऽ मातृभाषा ना लागेइक। बरंचऽ इटा एकटा सम्पर्क भाषाक रूप माहान बाढ़ल आर पसरल आहेइक।

एबार हामराके जाने हेती जे मातृभाषा काके कथिक। मातृभाषा अहे हेकेइक जेटा छवाइं आपन मायेक करा ले सिखत आर जेटाक माध्यमे सचत–बुझत आर आपन मनेक भाभ प्रस्फुटित करत। वैज्ञानिकराकर मत आहेन जे प्रारम्भिक शिक्षा बा शुरूकर पढ़ाइ–लिखाइ मातृभाषाक माध्यमे हेवा चाही। शिक्षाक माध्यम बनले अविकसित मातृभाषाक विकसित हेइ जाइक। मातृभाषाक आर एकटा विसेसता आहेइक जे विभिन्नता ले एकता बाटे बाढ़ले जाइक। हाँलाकि हामर राइज माहान मातृभाषाक माध्यमे प्रारम्भिक बा शुरूआती शिक्षा देवेक कनऽ बेवस्था नि रहेइक। मनतुक सरकारे एखन इ बाटे धेयान देल आहेइक।

एसे त भारतीय संविधानकर अनुच्छेद 350ए माहान इ अधिकार देवाल गेलाहेइक जे प्राइमरी स्तर माहान आपन मात भाषाएँ शिक्षा देवेक बेवस्था सभ काके करा चाही। एहे नियार 1963 महान राजभाषा आयोग बनल रहेइक। आयोगे आपन रिपोर्ट माहान शिक्षाक लेइके विस्तृत चरचा हेल रहेइक। सेटाइं कहल गेलाहेइक जे मातृभाषाक रूप माहान कनऽ नि कनऽ भाषाकर अध्ययन प्राथमिक स्तर माहान हेवा चाही। प्राथमिक स्तर कर माने छवाकर शुरू–शुरू चाइर बछर मातृभाषा सिखेक –बुझेकटाइं लागेन आर बाकी तीन बछर दसर राइज भाषा सिखेकटाइं लागावा चाही। आयोगे मत प्रकट करल आहे जे अधिकांश मातृभाषाकर प्रवृत्ति, प्रकृति, संस्कार, शब्द, राजभाषा संग मिलेइक–जुलेइक आर चौदह बछर हेते–हेते छवाइं तीन भाषाकर ज्ञान पावेक खेमऽता हेइ जाइन प्रादेशिक भाषा, हिन्दी आर एंगरेजी। आयोगे इ विचारऽ प्रकट करल आहे जे इलाका कर छवाइं आपन मातृभाषा छाड़ि के हिन्दी बुझे नि पारत तारा के रेडियो, टी. वी., समाचार पत्र, सिनेमाकर,माध्यमें जानेक–बुझेक स्थिति माहान आवा चाही।

मातृभाषा कर लेइके जदि हामरा आरऽ आरऽ विद्वानकर चरचा करियो, त हामरा कहे पारियो जे बेसी ले बेसी विद्वानकर बिचार आहेन जे मातृभाषा कर

बेजाइं महत आहेइक। जेतना स्थायी शिक्षा आहेइक सभ घार लेइ शुरू हेइक। अंग्रेजी माहान एकटा आहना आहेइक – A ll Lasting education begins at home. एहे नियार हिन्दीकर कवि, कहानीकार, नाटककार भारतेन्दु हरिश चन्द्रे लिखत आहात–

निज भाषा उन्नति आहै, सब उन्नति के मूल।
बिन निज भाषा के मिटत न हिय के शूल।।

एहे नि अरा आघुबाटे कहलाहात जे आपन भाषाक गेयान बिना लगे कनऽ बात नि कहे पारत आर जेटा निजेक भाषाक गेयान नेखेन छटऽ ले छटऽ रही जाता। माये छवा के मातृभाषा माहानेइ सिखावथिन–बुझावथिन आर जेटा छवाइं छटोक खने सिखत ऊटा अरा कबऊ नि बिसरत। छवाक मन त काँचा माटिक समान रहे हेन। अके जेसन सांचे ढालबेथिक असने बनताक। वास्तव माहान हामराक ढेइर भाषा पढ़े–लिखे जानल परोऊ सचियो आपन भाषा माहानेइ। आपन भाषाक उन्नति बिना हामराक उन्नति नि हेइ पारेइ। सभे काकर उन्नतिक जालांय पेति घार के उन्नति हेवा चाही। एहे नियार मातृभाषाक लेइके आरऽ किछु विद्वाने कहल आहात। डा. राजेन्द्र अवस्थीक अनुजाइं– "यह देश बहुत बड़ा है। हिन्दी यहाँ कि मुख्य भाषा होते हुए हुए भी सतरह–अठारह ऐसी भाषाएँ, जिनका साहित्य हिन्दी के साहित्य से किसी तरह कम नहीं है। इसी तरह ढेर सारी बोलियाँ हैं,जिनका अपना वैशिष्ट्य है, वे सब जन–मानस की भावना का प्रतिबिंबन करती हैं और एक वृहत्तर भारतीय साहित्य का अंग है।" एहे नियारे डा. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तवे मातृभाषाक लेइके लिखल आहात "मातृभाषा सामाजिक अस्मिता की भाषा होती है जिससे व्यक्ति भाव, विचार संस्कार और अपने जातीय इतिहास एवं परम्परा से जुड़ता है। सामाजिकरण की प्रक्रिया से गुजर कर ही व्यक्ति मातृभाषा के इस दूसरे संदर्भ को अभिव्यक्त करता है।" मातृभाषा लेइके डा. यशपाले लिखल आहात "धर्म–विश्वास कभी भी या जीवन में अनेक बार बदला जा सकता है। मातृभाषा कभी भी बदली नहीं जा सकती। भाषा का सम्बध साम्प्रदायिक विश्वास से नहीं, राष्ट्रीयता और भूमि से होता है।" भाषा, धर्म, संस्कृति आर राष्ट्रीयता इ चाइर तत्त्व एसन हेकेइक जेटाइं मानुस जाइत के आपस माहान एक करेन आर परिस्थिक अनुजाइं छिनगाऊबो करेन। भाषाकर नाता धर्म आर संस्कृति लेइ आहेइक। भाषा आबगा हामराक सुभिधाकरे जिनिस ना लागेइक बरंच हामराक नित दिनकर काम–पाइटेक माध्यम हेकेइक। भाषाक दाराइं हामराक काम सरल, सहज आर आवसान हेइ जाइक। एहेटा लेइ हामराक भाव और विचार कर अदला–बदली हेइक। कनऽ जाइत कर जीवनेक

लेइके जानेक तेहें अराक लोकसाहित्य पढ़ा दरकार हेइ जाइक। वास्तव माहान लोकसाहित्ये अकर आस–पासेक वातावरण आर जन–जीवनकर झागझागिया चितरन रहे हेइक। एहे नि अकर आस–पासेक लगेक, अराक रीति–रिवाज, परब–तिहार, व्रत, उत्सव, परम्पराकर लोकसाहित्येइ कनऽ समुदायकर संस्कृतिक छाप देखाल जाइ पारेइक। मातृभाषाकर असीम सम्भावना आहेइक। जदि हामरा मातृभाषाक लोकसाहित्येक अरासरा–चरचा करियो त हामरा बेहिचक कहे पारियो जे सामान्य जन–जीवनकर हुआँ बरनन रहे हेइक। जेसन–समाजकर रहेक रंग–ढंग, खावन–दावन, पिंधान–अढ़ान, आभरन, सौन्दर्य–प्रसाधन, गृहस्थीकर साना–फाना, आरऽ आरऽ जिनिसकर बरनन रहे हेइक। हामरा कहे पारियो जे कनऽ समाजकर मानव–जीवन कर सम्पूर्ण झांकी लोकसाहित्य माहानेइ देखाल जाइक। जदि हामरा फेड़ भिड़ाइ के कहियो त जनपदीय साहित्य माहान परिवारकर गठन–गढ़न, सभ्यता, आपसी–सम्बंध, आचार–विचार, नेग–जग आदिकर बरनन रहे हेइक। एहे नि, इ छाड़ि कोऊ लोक विश्वासकरऽ उल्लेख रहे हेइक। लोकसाहित्य माहान आर्थिक–जीवन, (कृषि) चास, बेबसाय, शिल्प, कारीगरी, राजनीतिक–जीवन, शासन–पद्धति, दंड–विधान, एहे नियार इतिहास आर अकर स्वरूपकरऽ बाचिक जनपदीय भाषा माहान पावाल जाइक। त हामरा जर देइके कहे पारियो जे कुरमाली भाषाकर पढ़ेक–पढ़ावेक आबगा उचिते न लागेइक बरंच दरकारीयो हेकेइक। जदि हामरा रिचिक आपन घेरा ले बाहराय के एकर महतकर चरचा करियो त निश्चित रूप माहान कहे पारियो जे देशकर, संस्कृतिकर मूल एकता आर राष्ट्रीय एकता के बांचावेक खातिर जनपदीय साहित्यकर पठन–पाठन बेजाइं दरकारी हेकेइक। अहे माहान पेति भाषा के समान अधिकार, बराबरी कर दरजा आर पसरेक–पसरावेक अवसर देवा चाही। भाषा कर सम्बंध धर्म संग नि रहे हेइक। पेति भाषाकर शब्द–भंडार आर वाक्य–रचना एक दसर ले आलेदा–आलेदा रहे हेइक। भाषाकर, विकास समाजकर विकास–काल ले चलते आहेइक। एकर महत कनऽ आमल विशेष माहान नेखेइक।

***



आत्म-कथ्य

नाम : हरदेव नारायण सिंह

पिता : स्व0 अर्जुन सिंह

माता : स्व0 दुर्गा देवी

स्थायी पता : ग्राम–कोंचो, पत्रालय– टुटकी नवाडीह

थाना – सिल्ली, जिला– राँची (झारखण्ड)

वर्तमान पता : लोअर बर्दवान कम्पाउण्ड

डाकघर – लालपुर, राँची – 834001

शिक्षा : एम०ए०, बी०एड्०, एल–एल०बी०, पीएच०डी० (मगध)

वृत्ति : पूर्व रीडर, स्नातकोत्तर जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

कृतियाँ :

1. कुरमाली बोली के मुहावरे और लोकोक्तियाँ (1978)
2. कुरमाली लोककथाओं की कथानक रूढ़ियाँ : एक अनुशीलन (2001)
3. एहे डहरे (कुरमाली लघु निबंध एवं कहानी संग्रह) 2008
4. सृष्टिधरेक गीत (सम्पादित) 2008
5. कुरमाली निबंध 2010
6. कुरमाली, हिन्दी और अंग्रेजी में शोध–पत्रिकाओं एवं विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में सौ से अधिक लेख प्रकाशित।
7. आकाशवाणी के राँची केन्द्र से कुरमाली और हिन्दी में कविता, वार्ताएँ एवं अनेकानेक कहानियाँ प्रसारित।
8. राँची दूरदर्शन से भी सम्बद्धता।